पादप सुरक्षा के विविध आयाम

लेखक
डॉ0 दिनेश मणि

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development
(Department of Higher Education)
Government of India

© भारत सरकार, 2010

© Government of India 2010

संस्करण 2010

मूल्य: रु

प्राप्ति स्थल

1. बिक्री एकक
   वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
   पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्
   नई दिल्ली - 110066
   फोन न: 26105211

2. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार
   सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110054

प्रकाशक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्
नई दिल्ली - 110066

1559 HRD/10—1B

पादप सुरक्षा के विविध आयाम

लेखक

डॉ. दिनेश मणि
उपाचार्य, रसायनशास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

सत्यमेव जयते

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

1559 HRD/10—1A

समन्वय तथा संपादन

प्रमुख संपादन

प्रो. के. बिजय कुमार

संपादन

अशोक एन. सेलवटकर

वैज्ञानिक अधिकारी

पुनरीक्षक

डॉ. दिनेश कुमार

वरिष्ठ वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान संभाग

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, दिल्ली

प्रकाशन

डॉ. पी.एन शुक्ल

सहायक निदेशक

श्री आलोक वाही

कलाकार

आमुख

भारत सरकार ने विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा माध्यम के रूप में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विस्तार के लिए तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय (संप्रति-मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के अधीन सन् 1961 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने अनेक पारिभाषिक कोशों, चयनिकाओं, पाठमालाओं तथा विश्वविद्यालय स्तरीय हिंदी पुस्तकों का निर्माण किया है। अनेक पाठ्य पुस्तकों, शब्द-संग्रह, परिभाषा-कोश, पत्रिकाएं, चयनिकाएं, पाठमालाएं आदि प्रकाशित हो चुकी हैं।

पाठमालाओं के निर्माण में इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि उनकी विषय सामग्री उपयोगी तथा अद्यतन हो और भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण, बोधगम्य और आकर्षक हो ताकि अध्यापक भी हिंदी माध्यम में अपने-अपने विषय पढ़ाने में सक्षम हो सकें।

प्रस्तुत पाठमाला "पादप सुरक्षा के विविध आयाम" इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायनशास्त्र विभाग के उपाचार्य डॉ. दिनेश मणि द्वारा लिखी गई है जो दस अध्यायों में विन्यस्त है। लेखक ने पादप सुरक्षा के विविध आयामों पर गहनता से लेखनी चलाई है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत पाठमाला में समन्वित पीड़क, रोग एवं खरपतवार प्रबंधन पर विशेष रूप से चर्चा की गई है। साथ ही बीज शोधन, अन्न भंडारण एवं चूहा-नियंत्रण, पीड़क विष एवं उनके उपचार तथा पादप सुरक्षा उपकरणों के बारे में भी आवश्यक जानकारी दी गई है। इसका पुनरीक्षण डॉ. दिनेश कुमार, वरिष्ठ वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान प्रभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने किया है। समन्वयन के लिए श्री सेलवटकर वै. अ. प्रशंसा के पात्र हैं।

पाठमाला की भाषा सरल, बोधगम्य और प्रवाहपूर्ण है। लेखक ने इसमें हिंदी की मानक तकनीकी शब्दावली का प्रयोग किया है और पुस्तक के अंत में उपयोगी सारणियाँ, संदर्भ तथा तकनीकी हिंदी शब्दावली भी दी है।

मुझे विश्वास है कि यह पाठमाला, स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों के लिए और जन सामान्य के लिए भी बहुत लाभप्रद सिद्ध होगी।

जनवरी, 2010
नई दिल्ली

(प्रो. के. बिजय कुमार)
अध्यक्ष

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली-निर्माण के सिद्धांत

अंतरराष्ट्रीय शब्दों को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेजी रूपों में ही अपनाना चाहिए और हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण करना चाहिए। अंतरराष्ट्रीय शब्दावली के अंतर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिए जा सकते हैं

(क) तत्वों और यौगिको के नाम, जैसे हाइड्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड आदि;

(ख) तौल और माप की इकाइयाँ तथा भौतिक परिमाण की इकाइयाँ, जैसे डाइन, कैलॉरी, ऐम्पियर आदि;

(ग) ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाए गए है, जैसे मार्क्सवाद (कार्ल मार्क्स), ब्रेल (ब्रेल), बॉयकाट (कैप्टन बॉयकाट), गिलोटिन (डॉ, गिलोटिन), गेरीमैंडर (मि. गेरी), ऐम्पियर (मि. ऐम्पियर), फारेनाहाइट तापक्रम (मि. फारेनहाइट) आदि;

(घ) वनस्पति-विज्ञान, प्राणि-विज्ञान, भूविज्ञान आदि की द्विपदी नामावली;

(ड.) स्थिरांक, जैसे g, π आदि;

(च) ऐसे अन्य शब्द जिनका आमतौर पर सारे संसार में व्यवहार हो रहा है, जैसे रेडियो, पेट्रोल, रेडार, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि।

(छ) गणित और विज्ञान की अन्य शाखाओं के संख्यांक, प्रतीक, चिह्न और सूत्र, जैसे साइन, कोसाइन, टेन्जेन्ट, लॉग आदि (गणितीय संक्रियाओं में प्रयुक्त अक्षर रोमन या ग्रीक वर्णमाला के होने चाहिए)।

प्रतीक, रोम लिपि में अंतरराष्ट्रीय रूप में ही रखे जाएँगे परंतु संक्षिप्त रूप देवनागरी और मानक रूपों से भी, विशेषत: साधारण तौल और माप में लिखे जा सकते हैं, जैसे सेन्टीमीटर का प्रतीक cm हिंदी में भी ऐसे ही प्रयुक्त होगा परंतु देवनागरी में संक्षिप्त रूप से.मी. भी हो सकता है। यह सिद्धांत बाल-साहित्य और लोकप्रिय पुस्तकों में अपनाया जाएगा, परंतु विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मानक पुस्तकों में केवल अंतरराष्ट्रीय प्रतीक, जैसे cm ही प्रयुक्त करना चाहिए।

ज्यामितीय आकृतियों में भारतीय लिपियों के अक्षर प्रयुक्त किए जा सकते हैं, जैसे क, ख, ग, या अ, ब, स परंतु त्रिकोणीमितीय संबंधी में केवल रोमन अथवा ग्रीक अक्षर ही प्रयुक्त करने चाहिए, जैसे लाइन A कॉस B आदि।

4. संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाले शब्दों का सामान्यत; अनुवाद किया जाना चाहिए।

5. हिंदी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधार-विरोधी प्रवृत्यिों से बचना चाहिए।

6. सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथसंभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो:
   (क) अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों, और
   (ख) संस्कृत धातुओं पर आधारित हों।

7. ऐसी देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग के पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे telegraph/telegram के लिए तार, continent के लिए महाद्वीप, post के लिए डाक आदि इसी रूप में व्यवहार में लाए जाने चाहिए।

8. अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी आदि भाषाओं के ऐसे विदेशी शब्द जो भारतीय भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे टिकट, सिगनल, पेंशन, पुलिस, ब्यूरो, रेस्तरां, डीलक्स आदि इसी रूप में अपनाए जाने चाहिए।

9. **अंतरराष्ट्रीय शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण :** अंग्रेजी शब्दों का लिप्यंतरण इतना जटिल नहीं होना चाहिए कि उसके कारण वर्तमान देवनागरी वर्णों में नए चिह्न व प्रतीक शामिल करने की आवश्यकता पड़े। शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण अंग्रेजी उच्चारण के अधिकाधिक अनुरूप होना चाहिए और उनमें ऐसे परिवर्तन किए जाएं जो भारत के शिक्षित वर्ग में प्रचलित हों।

10. **लिंग :** हिंदी में अपनाए गए अंतरराष्ट्रीय शब्दों को, अन्यथा कारण न होने पर, पुल्लिंग रूप में ही प्रयुक्त करना चाहिए।

11. **संकर शब्द :** पारिभाषिक शब्दावली में संकर शब्द, जैसे guaranteed के लिए 'गारंटित', classical के लिए 'क्लासिकी', codifier के लिए 'कोडकार' आदि के रूप सामान्य और प्राकृतिक भाषाशास्त्रीय प्रक्रिया के अनुसार बनाए गए हैं और ऐसे शब्दरूपों को पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकताओं, यथा सुबोधता, उपयोगिता और संक्षिप्तता का ध्यान रखते हुए व्यवहार में लाना चाहिए।

12. **पारिभाषिक शब्दों में संधि और समास :** कठिन संधियों का यथासंभव कम से कम प्रयोग करना चाहिए और संयुक्त शब्दों के लिए दो शब्दों के बीच हाइफन लगा देना चाहिए। इससे नई शब्द-रचनाओं को सरलता और शीघ्रता से समझने में सहायता मिलेगी। जहाँ तक संस्कृत पर आधारित 'आदिवृद्धि' का संबंध है, 'व्यावहारिक', 'लाक्षणिक' आदि प्रचलित संस्कृत तत्सम शब्दों में आदिवृद्धि का प्रयोग ही अपेक्षित है। परंतु नवनिर्मित शब्दों में इससे

PRINCIPLES FOR EVOLUTION OF TERMINOLOGY APPROVED BY THE STANDING COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY

1. 'International terms' should be adopted in their current English forms, as for as possible, and transliterated in Hindi and other languages according to their genius. The following should be taken as examples of international terms:

   a) Names of elements and compounds, e.g. Hydrogen, Carbon dioxide, etc.,

   b) Units of weights, measures and physical quantities, e.g. dyne, calorie, ampere, etc.,

   c) terms based on proper names e.g. marxism (Karl Marx), braille (Braille), boycott (Capt. Boycott), guillotine (Dr. Guillotion), gerrymander (Mr. Gerry), ampere (Mr. Ampere), fahrenheit scale (Mr. Fahrenheit), etc.,

   d) Binomial nomenctature in such sciences as Botany, Zoology, Geology, etc.,

   e) Constants, e.g., π g, etc.,

   g) Numerals, symbols, signs and formulae used in mathematics and other sciences e g., sin. cos, tan, log etc., (Letters used in mathematical operation should be Roman or Greek alphabets).

2. The symbols will remain in international form written in Roman script, but abbreviations may be written in Dev Nagari and standardised form, specially for common weights and measures, e.g. the symbol 'cm' for centimetre will be used as such in Hindi, but the abbreviaiton in Dev nagari may be से.मी. This will apply to books for children and other popular works only, but in standard works of science and technology, the international symbols only, like cm., should be used.

3. Letters of Indian scripts may be used in geometrical figures e.g., क, ख, ग or अ, ब, स, but only letters of Roman and Greek alphabets should be used in trigonometrical relations e.g., sin A, cos B etc.

4. Conceptual terms should generally be translated.

1559 HRD/10—2A

5. In the selection of Hindi equivalents simplicity, precision of meaning and easy intelligibility should be borne in mind. Obscurantism and purism may be avoided.

6. The aim should be to achieve maximum possible identity in all Indian languages by selecting terms:

   a) common to as many of the regional langauges as possible, and

   b) based onSanskrit roots.

7. Indigenous terms, which have come into vogue in our languages for certain technical words of common use, such as तार for telegraph/ telegram, महाद्वीप for contient, डाक for post etc., should be retained.

8. Such loan words for English, Portugese, French, etc., as have gained wide currency in Indian languages should be retained e.g., ticket, signal, pension, police, bureau, restaurant, delux etc.

9. Transliteration of International terms into Devanagari Script– The transliteration of English terms should not be made so complex as to necessitate the introduction of new signs and symbols in the present Devanagari characters. The Devanagari rendering of English terms should aim at maximum approximation to the standard English pronunciaiton with such modifications as prevalent amongst the educated circle in India.

10. **Gender :** The International terms adopted in Hindi should be used in the masculine gender, unless there are compelling reasons to the contrary.

11. **Hybrid formation :** Hybrid forms in technical terminologies e.g., गारंटिड for guaranteed, क्लाकिसी for 'classical', कोडकार for 'codifier' etc., are normal and natural linguistic phenomena and such form may be adopted in practice keeping in view the requirements for technical terminology, viz., simplicity, utility and precision.

12. **Sandhi and Samasa in technical terms :** Complex forms of Sandhi may be avoided and in cases of compound words, hyphen may be placed in between the two terms, becauses this would enable the users to have an easier and quicker grasp of the word structure of the new terms. As regards आदिवृद्धि in Sanskrit-based words, it would be desirable to use आदिवृद्धि in prevalent Sanskrit tatasama words e.g., व्यावहारिक, लाक्षणिक etc. but may be avoided in newly coined words.

1559 HRD/10—2B

अध्याय - 1

विषय-प्रवेश

पादप सुरक्षा का कार्य आधुनिक/वैज्ञानिक कृषि का एक अभिन्न अंग है। पादप सुरक्षा से तात्पर्य प्रयोग में आने वाली फसलों की हानिप्रद पीड़कों (पेस्ट) से रक्षा करना है । वस्तुतः फसल उत्पादन शृंखलाबद्ध कार्यक्रमों के उचित समन्वय पर निर्भर करता है- जैसे अच्छा बीज, उर्वरक का संतुलित प्रयोग, उन्नत कृषि विधियों को अपनाना तथा सिंचाई की सुनिश्चित व्यवस्था आदि। फसल उत्पादन में इन सभी कार्यक्रमों का पूरक संबंध होता है और वे एक दूसरे को प्रभावित करने के साथ ही उत्पादन को भी सुनिश्चित करते हैं । फसलों में अधिक उपज देने वाली किस्मों के लिए ये बातें विशेष रूप से लागू होती हैं क्योंकि जहाँ एक ओर अधिक उर्वरक एवं जल ग्रहण करने के कारण उनमें उच्च उत्पादन की क्षमता है, वहीं दूसरी ओर उनमें शीघ्रता से कीट, रोग, खरपतवार आदि से प्रभावित हो जाने की कमी भी पाई जाती है।

ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि वर्तमान में पृथ्वी के कुल धरातल के 10 प्रतिशत भाग पर कृषि उपयोगी फसलें उगाई जाती हैं, 20 प्रतिशत चरागाह और 30 प्रतिशत भाग पर जंगल हैं तथा शेष भाग पानी, पहाडों, रेगिस्तानों तथा बर्फीले प्रदेशों के अंतर्गत आता है। संसार में 2 लाख जातियों के बीजोत्पादन वाले पौधे हैं जिनमें से 10,000 प्रकार के पौधों की आवश्यकता मनुष्यों को एक या दूसरे रूप में होती है किंतु इनमें से 1000 जातियों के पौधे आर्थिक दृष्टि से महत्व के होने पर भी केवल 15 जातियों के पौधे तथा 9 जातियों के प्राणियों से मनुष्य के भोजन की अधिकांश पूर्ति हो जाती है।

फसलोत्पादन की विकसित तकनीक के कारण कुछ स्थितियों में कीटों की समस्याएं घटने के बजाय बढ़ी हैं। कुछ कीट जो कि फसल पर कभी पीड़क नहीं थे, वे अब नये पीड़क के रूप में उभरकर सामने आए हैं। उदाहरणार्थ धान की व्हर्ल मैगट, मिर्च पर सेव के हरे ऐपिह का पदार्पण तथा मिर्च का टार्सोनोमाइट। कुछ कीट जो किसी समय फसलों पर लघु पीड़क थे वे कृषि

प्रणाली के बदलने से अनुकूल परिस्थितियां पाकर प्रमुख पीड़क के रूप में उभरे हैं, उदाहरणार्थ- धान का भूरा माहू, गन्ने का शल्क कीट, कपास का गुलाबी गोला वेधक सूंडी ज्वार की तथा मक्खी तथा गाल मिज। जंगलों को काटकर खेती योग्य बनाने पर उन पर पलने वाले कीटों में से व्हाइट ग्रब गन्ना, मूंगफली, बाजरा, तम्बाकू का घातक पीड़क बन गया है जिससे राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, तथा आंध्रप्रदेश में फसलों को व्यापक क्षति होने के समाचार हैं। कुछ प्रकार के कीड़े विभिन्न फसलों का विपुल उत्पादन देने वाली संकरित जातियों के बोने से भी समस्या के रूप में उभरे हैं, उदाहरणार्थ- ज्वार का गाल मिज, ज्वार, मक्का, बाजरा के भुट्टों के कीट, धान का जैसिड तथा गंगई मक्खी। लैन्टाना तथा केक्टस नागफनी के पौधे, अनाज की पंखी, आलू का कंद शलभ तथा काडलींग मौथ की विनाशकारी शक्ति की कल्पना न होने के कारण भारत में लाए गए और नए वातावरण में विस्थापित होकर ये लाखों, करोड़ों रुपए मूल्य की क्षति प्रतिवर्ष कर रहे हैं। इसी प्रकार कुछ प्राणी उसमें स्थायी निवास वाले देश से दूसरे देशों से ले जाए गए, जहां से उनके प्राकृतिक शत्रुओं के अभाव तथा नई जगह के अनुकूल वातावरण में विस्थापित होकर पीड़क के रूप में उभरे हैं, उदाहरणार्थ: भारत से खरगोश अपने लुभावने रूप तथा भोजन, दूध, घास की पर्याप्त उपलब्धता होने के कारण आस्ट्रेलिया ले जाए गए जहाँ वे विस्थापित होकर अब समस्या बन गए हैं। इसी प्रकार वेस्टइंडीज में गन्ने के खेतों में सांपों की समस्या के निवारण हेतु भारत से नेवले ले जाए गए। वहां सांप की समस्या तो हल हो गई किन्तु सांपों के अभाव में नेवले मुर्गियों तथा उनके चूजों को नष्ट कर रहें हैं जिससे एक अलग ही समस्या उपस्थित हो गई है। कुछ प्रकार के कीटों, जैसे गन्ने का वृंत-वेधक, का बिहार से उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा हरयाणा में अभिगमन तथा इसी प्रकार गुरुदासपुर वेधक तथा शल्क कीट, जड़ सूत्रकृमि तथा नींबू प्रजातियों का विस्तार। वैधानिक नियंत्रण संगरोध नियमों के अंतर्गत कार्यवाही न करने कारण कीट बिना रोक-टोक के ले जाने के कारण हुआ है। कुछ कीटनाशियों का सही तरीके से अनुपयुक्त समय पर या अपर्याप्त मात्राओं या अत्यधिक मात्राओं में प्रयोग करने से कीटों का नियंत्रण होने के स्थान पर उनकी संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है। धान का भूरा माहु, हिस्पा, गन्ने का शल्क कीट तथा माइट, ज्वार का माइट, अरहर की फली मक्खी, मिर्च का ऐफिड तथा मूंगफली का पत्ती-लपेटक ऐसे ही कुछ उदाहरण हैं।

विश्व खाद्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व में प्रति वर्ष कीट, रोग, खरपतवार, व्याधियों और अन्य कारकों से 27,000 करोड़ रुपए मूल्य की 30 प्रतिशत सामग्री खेतों, खलिहानों तथा संग्रहण में ही नष्ट हो जाती है। यदि इतनी सामग्री को नष्ट होने से बचा लिया जाए तो इससे 40 करोड़ व्यक्तियों को एक वर्ष तक भोजन उपलब्ध कराया जा सकता है।

यह देखा गया है कि अधिक उपज देने वाली किस्में ज्यादा उर्वरक और पानी मिलने से अधिक हरी तथा नर्म होने के कारण कीटों को ज्यादा आकर्षित करती हैं। इसलिए कीटों का जनन इन पर अधिक होता है। अल्पावधि की होने के कारण इन किस्मों से साल में दो या तीन फसलें ली जा सकती हैं जिससे कीटों को पूरे वर्ष भोजन मिलता रहता है और उनका जनन निरंतर चलता रहता है । एक ही फसल या किस्म को अधिक और उनके लिए पर्यावरण प्रतिरोध कम हो जाता है, जिससे वे अधिक संवर्धन करते हैं।

इस प्रकार अधिक उत्पादन के साथ-साथ पादप सुरक्षा की गंभीर समस्याओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है । उर्वरक, सिंचाई, श्रम आदि के सहारे जितना ही उत्पादन स्तर ऊंचा उठता जाता है, उतने ही विभिन्न प्रकार के फसल-शत्रु सक्रिय हो जाते हैं और श्रम व पूँजी के प्रभाव को घटा देते हैं। इस कारण अधिक उत्पादन के लिए केवल उत्पादक तत्वों- बीज, उर्वरक, सिंचाई आदि की व्यवस्था ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि साथ ही हानिकारक तत्वों व फसल शत्रुओं पर भी नियंत्रण करना आवश्यक है।

विश्व में कीटों की कोई 12 लाख जातियां पाई जाती हैं जिनमें से भारत में 40,000 जातियों के कीटों के मिलने के संबंध में जानकारी उपलब्ध है। 1200 जातियों के कीट आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण पौधों के पीड़क हैं। जंगली वृक्षों पर पलने वाले कीटों की संख्या इसके अतिरिक्त है। इन 1200 जातियों के कीटों में से 5000 जातियों के कीट एक या दूसरी फसलों पर गंभीर समस्या के रूप मे उभरे हैं। यद्यपि 250 जातियों के कीट कृषि की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं किंतु इनमें से 75 जातियों के कीटों को घातक पीड़कों के रूप में मान्यता दी गई है क्योंकि वे वर्ष-प्रति-वर्ष फसलों को अत्यधिक हानि पहुचाते हैं। इन 75 पीड़कों में से लगभग दो दर्जन प्रकार के कीट जैसे- गन्ने का अंगोला वेधक,

प्ररोह वेधक, दीमक, पायरिला, कपास की चित्तीदार तथा गुलाबी सूंडी, श्वेत मक्खी, जैसिड, धान की गंगई मक्खी, भूरा माहू, जैसिड, गंधी बग, बाली काटने वाली इल्ली, ज्वार तथा मक्का का तना वेधक, प्ररोह मक्खी, चने की इल्ली, कटुआ इल्ली, व्हाइट ग्रब सपेंट्र लट मूंग-उड़द का कंबल कीड़ा, अरहर की फली मक्खी इत्यादि अत्यंत महत्वपूर्ण पीड़क हैं। विगत कुछ वर्षा से कीटों के महामारी के रूप मे उभरने की संख्या में वृदि हुई है। चने की इल्ली एक देशव्यापी समस्या बन चुकी है। तम्बाकू की इल्ली भी कई क्षेत्रों में महामारी के रूप में बार-बार उभर रही है।

पौधों में रोग, रोगजनक कारकों से होता है। रोगजनक ऐसा जैविक अथवा अजैविक कारक हैं जो पौधे अथवा उसके किसी भाग के जीवन-संबंधी प्रक्रमों में बाधा उत्पन्न करके उसे क्षति पहुंचाता है। जीवीय रोगजनकों में माइकोप्लाज्मा एवं रिक्टिसिया सदृश जीव, पादप रोगजनक जीवाणु, कवक, शैवाल परजीवी एवं रोगजनक बीज या पुष्पी पादप सूत्रकृमि, कीट, या विषाणु आते हैं । जबकि अजीवीय रोगजनक के अंतर्गत विषैले वायुप्रदूषक, अम्ल वर्षा एवं बरफ, मृदा में विषैले पदार्थ असंतुलन एवं न्यूनताएं, तापमान की चरम सीमाएं तथा जल की चरम सीमाएं सम्मिलित हैं।

संसार के विभिन्न देशों में लगभग 50,000 से भी अधिक पादप-विधियां पाई जाती हैं तथा उनमें से 5000 रोग भारत में पाए जाते हैं। इनमें से 1000 प्रकार के रोग आर्थिक महत्व की फसलों को क्षति पहुंचाते हैं। कवकों से उत्पन्न रोगों की संख्या लगभग 800 है तथा जीवाणु एवं सूत्रकृमियों इत्यादि में से प्रत्येक द्वारा 50, 50 के लगभग रोग पौधों पर उत्पन्न किए जाते हैं। कोई भी रोग हो स्थानीय हो सकता है, अर्थात् इस रोग द्वारा पौधे के किसी एक विशेष भाग अथवा अंग पर ही प्रभाव पड़ता है जबकि दूसरा सर्वांगी रोग हो सकता है, जिसका प्रभाव संपूर्ण पौधे पर होता है। जिन रोगों का फैलाव एवं संतनन मृदा द्वारा होता है, वह मृदोढ़ रोग और जिन रोगों का फैलाव बीज द्वारा होता है, उन्हें बीजोढ़ रोग कहते हैं । रोग से प्रभावित पौधों पर जो रोग लक्षण प्रकट होते हैं उनके आधार पर रोंगों का किट्ट, कंड, म्लानि, अंगमारी, मूलविगलन, फलविगलन, केंकर, आसिता आदि नामों से वर्गीकरण किया जाता है।

यद्यपि हमारे देश में पादप-रोगों द्वारा होने वाली हानि का सही रूप से मूल्यांकन नहीं किया गया है तथापि आजकल की कीमतों को देखते हुए प्रतिवर्ष फसलों में सभी रोगों द्वारा हानि की औसतन कीमत 1,500 से 1,700 करोड़ रुपए से कम नहीं होगी। पादप-रोगों द्वारा होने वाली हानि का मूल्यांकन करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयां होने के कारण उसे कार्यरूप में नहीं लाया जा सका है। उदाहरण के लिए कुछ कंड रोगों के कारण उपज पर सीधा प्रभाव पड़ता है और इस प्रकार हुई क्षति कंडयुक्त बालियों/भुट्टों के समानुपाती होती है। एक अनुमान के अनुसार भारतवर्ष में गेहूँ के छिदरा कंड रोग से लगभग 5 करोड़ रुपए की हानि फसल में हो जाती है । पंजाब में इस रोग द्वारा लगभग 3 लाख टन अनाज नष्ट हो जाता है। लगभग सभी दाने वाली फसलों में कंठ रोग उत्पन्न होते हैं और इनके द्वारा 2 से 5 प्रतिशत तक हानि हो सकती है।

पादप रोगों का एक दूसरा समूह म्लानि रोग है। यह रोग कपास, अरहर, सनई, चना, मटर, अलसी आदि फसलों में उत्पन्न होता है। एक ही क्षेत्र में अरहर की लगातार फसल लेने से इस रोग द्वारा लगभग 50 प्रतिशत पौधों की मृत्यु हो जाती है। पौधे या बीजांकुर अंगमारी एवं पौध आर्द्र पतन से बीजों का अंकुरण कम हो जाता है। मूल विगलन, क्रैंकर, स्केब, पर्णचित्ती, अंगमारी से पौधों की कार्यिकी में बाधा उत्पन्न होती है और इन रोगों के प्रभाव से पौधों की उपज तथा गुणों में कमी आ जाती है।

विनाशकारी रोगों के कारण प्रतिवर्ष अत्यधिक हानि अर्थात् प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से फसलों की उपज कम हो जाती है। इन रोगों के मुख्य उदाहरण उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों तथा बिहार के कुछ क्षेत्रों में गन्ने का लाल विगलन रोग, समस्त भारत में गन्ने का कंड, मध्य एवं दक्षिणी भारत में आम का चूर्णिल आसिता, सुपारी का महाली अथवा कोलिरोगा रोग। काफी एवं चाय का किट्ट, नारियल तथा भूरे पर्ण चित्ती रोग, पटसन का तना विगलन, केले का गुच्छ शीर्ष रोग आदि से बहुत अधिक हानि होती है।

पादप रोग हमारी फसलों की उपज कम करके आर्थिक हानि पहुंचाने के अतिरिक्त भी हमें अन्य दूसरे रूपों में प्रभावित करते हैं। भंडारित अनाज पर जब विभिन्न कवक आक्रमण करते हैं तो उनसे कुछ विषैले पदार्थ उत्पन्न होते हैं जो

मनुष्यों एवं पशुओं में उन्माद, लकवा, आमाशय-कष्ट इत्यादि रोगों का कारण बनते हैं।

उपर्युक्त पादप रोगों में बाजरे का हरित बाल रोग, ग्लानि कंडवा, किट्ट, गन्ने का लाल विलगन,सब्जियों का मूलग्रंथि रोग, आलू के अगेती, पछेती, अंगमारी, अरहर का बांझ या बंध्यता रोग चूर्णिल आसिता मूंगफली का टिक्का रोग, आम का पुष्प विकृति रोग, नींबू प्रजाति का केकर, धान का सहसामारी कुछ प्रमुख रोग हैं जिनके लगने से फसलों को प्रतिवर्ष व्यापक क्षति होती है। हाल ही के वर्षों में सरसों तथा राई में सफेद किट्ट तथा अंगमारी बीमारियां समस्या के रूप में उभरकर सामने आई हैं । इसी प्रकार रोग-ग्रसित बीजों के एक राज्य से दूसरे राज्य में ले जाने से गेहूँ का बंट रोग पंजाब से तथा गेहूं रोग उत्तर प्रदेश से अन्य राज्यों में फैल गया है। विदेशों से भारत में आयात किए गए कुछ फसलों के बीजों से विशेषकर चने की एस्कोकाइटा अंगमारी रोग, सोयाबीन का जीवाणु अंगमारी तथा लाईचुंग नेटिव-। धान की जाति से धान की कई बीमारियां भारत में जड़ जमा चुकी हैं जिनसे बहुत हानि हो रही है।

भारत में पाए जाने वाले 6,000 किस्म के पौधों में से 750 जाति के पौधे खरपतवारों की श्रेणी में आते हैं। ये वे पौधे होते हैं जो फसलों के पौधों के साथ-साथ उग आते हैं जो अनचाहे होते हैं और प्राय: उस फसल की बढ़वार व उपज के मार्ग में बाधक भी होते हैं। ये खरपतवार एक साथ एक ही जगह इतनी संख्या मे एकत्रित नहीं पाये जाते हैं। इनकी संख्या व किस्में भूमि का प्रकार, सिंचित या असिंचित दशा तथा जलवायु के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। इन खरपतवारों के कारण फसल की पैदावार 10 से 70 प्रतिशत तक और कभी-कभी तो पूरी फसल ही नष्ट हो जाती है। यह पौधे अवांछनीय, अनुपयोगी तथा जल्दी फैलने वाले, एवं स्थायी तो होते ही हैं साथ ही साथ फसलों के पौधों के प्रतियोगी, हानिकारक तथा कभी-कभी जहरीले व कृषि कार्यों में बाधा डालने वाले, श्रम तथा कृषि पर होने वाले खर्चों को बढ़ाने वाले और उपज को घटाने वाले होते हैं। अत: इनकी किस्मों तथा परिमाण के अनुसार प्रत्येक फसल प्रभावित होती है। परीक्षणों द्वारा यह पाया गया है कि खरपतवार छोटे आकार

वाले फसलीय पौधे जैसे मटर, चना, मसूर, रामतिल, सावां, कोदों तथा कुटकी इत्यादि फसलों के लिए अधिक हानिकारक सिद्ध हुए हैं। इतना ही नहीं, खरपतवारों के कारण उद्यानी फसलों, सब्जियों एवं फूलों वाले पौधों पर भी इनका हानिकारक प्रभाव पड़ता है। अनिष्टकारक खरपतवारों के कारण न केवल पौधे वरन मनुष्य तथा पशु भी प्रभावित हो जाते हैं। गाजर घास, झड़बेरी तथा कँवच नामक खरपतवार इसी वर्ग में आते हैं। खरपतवारों के कारण फसलोत्पादन में होने वाली कमी, कीटों तथा रोंगों व अन्य कारकों से काफी अधिक होती है पर अंतर इतना है कि यह कमी, सबसे बाद में जब फसल को काटकर तथा सफाई आदि करके भंडारण करने या उपयोग के लिए खलिहान से लाते हैं तब ही मालूम पड़ती है।

सारणी: 1.1: पीड़कों द्वारा फसल का अनुमानित नुकसान

फसल	प्रतिशत
चावल	8.6
गेहूँ	11.4
ज्वार	10.0
दालें	7.0
तिलहन	25.0
कपास	22.0
गन्ना	15.0

सारणी- 1.2 फसलों में कीटनाशियों का प्रयोग

फसल	कीटनाशी (प्रतिशत)
कपास	54
धान	17
सब्जी एवं फल	13
खाद्यान्न एवं दालें, तिलहन	2
गन्ना	3
बागानी फसलें	18
अन्य	3

स्रोत: त्रिवदी टी.पी. (2000) समेकित नाशीजीव प्रबंधन खेती, फरवरी, 2000

सारणी- 1.3 कीट नाशियों का विभिन्न राज्यों एवं फसलों में प्रयोग

राज्य	प्रयोग (प्रतिशत)
आन्ध्र प्रदेश	33.7
कर्नाटक	16.7
गुजरात	15.2
पंजाब	11.2
महाराष्ट्र	5.1
अन्य	18.5

स्रोत: त्रिवदी टी.पी. (2000) समेकित नाशीजीव प्रबंधन खेती, फरवरी, 2000

कीट समस्याओं में वृद्धि का एक कारण गैर-पारंपरिक क्षेत्रों में नई फसल का उत्पादन शुरू करना भी है। अधिकांश उन्नत किस्मों में कीट प्रतिरोध शक्ति बहुत कम होती है क्योंकि इनका जनन, सिर्फ उच्च उत्पादन को ध्यान में रखकर ही किया गया है जिसके कारण ये पारंपरिक किस्मों की तुलना में कीटों से ज्यादा

प्रभावित होती हैं। जिन किस्मों में कीट प्रतिरोध शक्ति है भी, उनके दुर्बल आनुवंशिक आधार होने से कीटो के नए बायोटाइप जीव प्ररूप पैदा हो गए हैं। जिनमें प्रतिरोधी किस्मों को भी क्षति पहुँचाने की क्षमता होती है।

यह भी देखा गया है कि जैविक नियंत्रण में लगे परजीवी व परजीव्याभों पर रसायनों के प्रतिकूल प्रभाव से प्राकृतिक संतुलन बिगड़कर हानिकारक कीटों के पक्ष में हो गया है। प्राकृतिक संतुलन बिगड़ने से मुख्य लक्षित तथा गौण कीट दोनों में जानपदिक रोग फैलता है। जैविक नियंत्रक जीवों की अनुपस्थिति में रसायनों का प्रयोग ज्यादा करना पड़ता है जिससे कीटों में कीटनाशी रसायनों के प्रति प्रतिरोध उत्पन्न हो जाता है। जैविक नियंत्रक जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव, और गौण कीटों में जानपदिक रोग फैलना तथा कीटों में कीटनाशी रसायन प्रतिरोध एक दूसरे से संबंधित क्रियाएं हैं। परस्पर प्रतिस्पर्धा का कम होना तथा रसायनों के प्रयोग से फसल की गुणवत्ता में सुधार भी कीटों के जानपादिक रोग फैलाने में योगदान देते हैं। कीटनाशियों के संदर्भ में कीटप्रतिरोध अपने आप में एक बहुत बड़ी समस्या बन गई है। इसके परिणामस्वरूप प्रभावकारी कीटनाशियों की संख्या दिनोदिन कम होती जा रही है तथा रसायनों से कीट-नियंत्रण कम प्रभावी होता जा रहा है।

ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि किसी फसल शत्रु या पीड़क (Pest) के नियंत्रण के लिए केवल एक विधि ही संपूर्ण नहीं है। अत: आजकल समन्वित एकीकृत पीड़क प्रबंधक की नवीन अवधारणा विकसित हुई है। इसके अंतर्गत अनेक विधियों जैसे भौतिक, यांत्रिक, कृषीय विधियां, रासायनिक विधियां, जैविक विधियां इत्यादि का समन्वय करके पीड़कों का प्रबंधन किया जाता है। एकीकृत/समन्वित पीड़क प्रबंधन में वातावरण और पारिस्थितिकीय दशाओं का भी ध्यान रखा जाता है।

अध्याय-2

पादप सुरक्षा: आवश्यकता और महत्व

पादप सुरक्षा संबंधी समस्याएँ अधिकांशत: नवीन कृषि पद्धति जन्य हैं और इस कारण उनका निराकरण बहुत कुछ उपयुक्त कृषि पद्धति को सावधानी व सतर्कता से अपनाने पर ही निर्भर करता है। संक्षेप में, स्वस्थ व रोगरोधी बीज का प्रयोग, वैज्ञानिक फसल-चक्र, संतुलित उर्वरक का प्रयोग, उपयुक्त कृषि विधियां तथा पादप सुरक्षा के निरोधात्मक उपायों को व्यापक रूप से अपनाना आदि इस समस्या के निराकरण के प्रमुख सहायक तत्व हैं।

पादप सुरक्षा का सीधा अर्थ है- फसल के विभिन्न शत्रुओं से पौधों की रक्षा करना। अतएव फसलों के विभिन्न शत्रुओं, उनके द्वारा हानि की मात्रा और उनके नियंत्रण के सामान्य उपायों की जानकारी आवश्यक है।

फसलों को हानिकारक कीटों, रोगकारक फफूँदी व जीवाणुओं विषाणुओं सूत्रकृमि, अष्टपदी, खरपतवारों, चूहों, जंगली जानवरों, परोपजीवी पौधों आदि से हानि हुआ करती है। ये सभी फसल के शत्रु हैं। कभी-कभी विपरीत वातावरण जैसे लू, पाला आदि अथवा सूक्ष्म तत्वों के अभाव से भी फसल को हानि से बचाना पड़ता है। ये अपने स्वभाव के अनुसार पौधों के निभिन्न भागों को विभिन्न अवस्थाओं में हानि पहुंचाते हैं और खेत-खलिहान एवं गोदाम तक नुकसान किया करते हैं।

हानिप्रद जीवों से हमारे देश में फसलों की कुल उपज का लगभग 15-30 प्रतिशत अन्न प्रतिवर्ष नष्ट हो जाता है। विश्व की तुलना में भारतवर्ष में हानिप्रद जीवों से अनुमानित नुकसान का विवरण सारणी 2:1 में दिया गया है-

सारणी 2:1 हानिप्रद जीवों से प्रभावित एवं अनुमानित नुकसान (प्रतिशत)

फसल	रोग	कीट	खरपतवार	कटाई के बाद नुकसान
विश्व	10	12	10	09
एशिया	11	21	11	20
भारत	26	20	33	30

स्रोत: पेस्टीसाइड्स वर्ल्ड 3(1): 24 (1998)

कीट व्याधि लगने के कारण

फसलों पर कीट एवं व्याधि के प्रकोप के लिए निम्नलिखित कारण प्रमुख हैं -

1. सघन कृषि

आज की नवीन कृषि पद्धति में प्रति इकाई क्षेत्र में बीज की मात्रा बढ़ाकर पौधों की अधिक संख्या रखने पर बल दिया जाता है। सघन फसल कीटों व रोंगों के बढ़ने, पनपने व फैलने में सहायक होने के साथ-साथ उनकी वृद्धि के लिए उपयुक्त वातावरण भी प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त सघनता पौधों की कीट रोग सहन करने की क्षमता को भी कम करती है।

2. अधिक उर्वरक व सिंचाई

नवीन कृषि पद्धति की दूसरी विशेषता है- फसलों में अधिक उर्वरक व सिंचाई का प्रयोग विशेषकर अधिक उपजदायी फसलों में। इससे फसल की सघनता व कोमलता में वृद्धि होती है जो पौधों की निकटवर्ती नमी व ऊष्णता को बढ़ाकर कीट रोग संवर्धन हेतु उपयुक्त वातावरण पैदा करते हैं।

3. बहु फसली योजना

सघन कृषि में उसी खेत में वर्ष में दो से अधिक फसलों के उगाने पर बल दिया जाता है जिससे खेत की मिट्टी, कड़ी धूप व सूर्य प्रकाश के पर्याप्त प्रभाव

से वंचित रह जाती है और भूमि में पाए जाने वाले कीट एवं रोगों के प्रभावों का नष्ट होना संभव नहीं हो पाता है। ऐसी दशा में खेत की नमी, कीटों की विभिन्न अवस्थाओं कवक के बीजाणुओं, जीवाणुओं, सूत्र कृमि, खरपतवार आदि को शुष्क वातावरण से बचाकर उन्हें जीवित रखने में सहायक होती है। सघन बहुफसली खेती की दशा में पूर्व व्याधिग्रस्त भागों को खेत से पूर्णतया निकालना भी संभव नहीं होता है और इस प्रकार ऐसे रोगकारक तत्व एक वर्ष से दूसरे वर्ष तक चला करते हैं।

4. उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग तथा सूक्ष्म तत्वों का अभाव

बहुत से कृषक परंपरागत ढंग से असंतुलित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करते हैं। परिणामस्वरूप पौधे किसी न किसी विकार के शिकार हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ ऐसे सूक्ष्म तत्वों की मात्रा, जो भूमि में केवल निम्न या सामान्य स्तर के उत्पादन हेतु ही पर्याप्त हैं, बार-बार अधिक उपज लेने से फसल के लिए अपर्याप्त हो जाती है अथवा किन्हीं अन्य कारणों से पर्याप्त मात्रा में पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाती है। ऐसी दशा में भी रोग के लक्षण स्पष्ट होने लगते हैं।

5. अन्य कारण

बार-बार सजातीय फसलों व समान प्रकार की फसलों को बोना, उपयुक्त फसल-चक्र को न अपनाना, केवल रासायनिक उर्वरकों का ही अधिक प्रयोग और जीवांश खादों की अल्प मात्रा आदि भी पादप-सुरक्षा को जटिल बनाने में सहायक हो जाते हैं।

पीड़कों का संबंध बदलती हुई कृषि पद्धति तथा पर्यावरण से सीधे जुड़ा हुआ है। कई नई समस्याएं इस क्षेत्र में आ रही हैं। मुक्त व्यापार के कारण नई समस्याओं का जन्म एवं प्रवेश तथा कीट प्रतिरोधी प्रजातियों का पैदा होना एक विषम समस्या है। भारत सरकार ने कई कीटनाशियों का प्रयोग कृषि के क्षेत्र में बंद कर दिया है तथा कीटनाशियों पर दी जाने वाली रियायत खत्म करके इसे पीड़क कार्यक्रम में डाला गया है। इस संपूर्ण पद्धति के विकास का ऐतिहासिक विवरण सारणी 2:2 में दिया गया है-

सारणी 2:2 पीड़क नियंत्रण से संबंधित ऐतिहासिक विवरण

काल (वर्ष)		विषय
400,000,000	बी.सी.	पहला धरातल पौधा
350,000,000	बी.सी.	पहला कीट
8000	"	कृषि का प्रारंभ
4700	"	चीन में रेशम कीट का पालना
2500	"	पहला कीटनाशी
1500	"	पहला कीटों का लेख
950	"	सस्य नियंत्रण
300	एडी	जैविक नियंत्रण
1732		खरपतवार नियंत्रण
1800		कीट नियंत्रण पर पहली पुस्तक
1880		पहला स्प्रेयर
1819		बोर्डो मिश्रण, पेरिस ग्रीन
1839		डी. डी. टी.
1946		डी.डी.टी. प्रतिरोधक क्षमता
1959		समेकित पीड़क प्रबंध
1960		सेक्स फ्रीरोमोन
1962		रशैल कारसन की पुस्तक, साइलेन्ट स्प्रिंग
1981		भारत में समेकित पीड़क प्रबंध
1985		राष्ट्रीय नीति आई.पी.एम.पर
1992		रियोडि जेनेरियो में आई.पी.एम. पर चर्चा

स्रोत: त्रिवेदी टी. पी. (2000) समेकित नाशीजीव प्रबंधन, खेती, फरवरी 2000

हानिप्रद जीवों के नियंत्रण के लिए अनेक साधन उपलब्ध हैं। फिर भी किसानों ने रासायनिक पीड़कनाशियों को ही अपनाया ताकि इस रसायन के इस्तेमाल से तत्काल नियंत्रण, हर साल करोड़ों रुपये के फसल-उत्पादन को हानिप्रद जीवों से रक्षा और कीटों द्वारा फैलने वाली बीमारियों से बचा जा सके। इस तरह मानव जाति के भरण-पोषण, कीटों, रोगों और खरपतवारों से रक्षा के लिए रासायनिक पीड़कनाशी का उपयोग अनिवार्य हो गया है। पंजाब के किसानों ने इस नियंत्रण के जरिए एक रुपया खर्च करके 7 से 26 रुपये के उत्पादों की बचत की है जिसका विवरण सारणी 2:3 में दिया गया है।

रासायनिक पीड़कनाशियों का अधिक मात्रा में और अंधाधुंध इस्तेमाल से विभिन्न प्रकार के खतरे, जैसे स्वास्थ्य संकट, पारिस्थितिकी असंतुलन, हानिप्रदजीवों में प्रतिरोधिता, कीटों एवं बीमारियों का पुरूत्थान नए और पुराने जीवों का आपतन, वातावरण प्रदूषण आदि बढ़ गया है। यहाँ तक कि खाद्य सामाग्रियों में रह जाने वाले पीड़कनाशियों के तत्व भोजन के जरिए हमारे शरीर में प्रवेश कर वसा कोशिकाओं में जमा हो जाता है जिससे केंसर जैसे रोग और आनुवंशिक विकार पैदा होते हैं। इसका इस्तेमाल करने वाला किसान पेट और आँत की बीमारियों से सदैव पीड़ित रहता है और कभी-कभी आंखों की रोशनी से वंचित हो जाता है।

अंतरराष्ट्रीय स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व में प्रतिवर्ष करीब 30 लाख आदमी रासायनिक पीड़कनाशी के इस्तेमाल से प्रभावित होते हैं जिनमें करीब 20,000 लोंगों की मौत हो जाती है। रासायनिक पीड़कनाशी के रासायनिक तत्व के अवशेष, प्रत्येक खाद्य-सामग्री मिट्टी और पानी में पाए गए हैं। यहां तक कि मां का दूध भी इससे अछूता नहीं रहा। इन रासायनिक अवशेषों के चलते भारत करीब 1,000 करोड़ रुपए की विदेशी मुद्रा प्रतिवर्ष खाद्य सामग्री के निर्यात में गंवाता है।

हानिप्रदजीवों की रोकथाम में रासायनिक पीड़कनाशियों का स्थान पहला है। एशिया में चीन सबसे ज्यादा रासायनिक पीड़कनाशियों का इस्तेमाल व उत्पादन करता है जिसका हिस्सा करीब 51.3 प्रतिशत है। भारत का स्थान दूसरा है और वह करीब उत्पादन में 13.9 प्रतिशत हिस्से का हकदार है। देखिए सारणी 2:4

सारणी- 2:3 हानिप्रदजीवों के आक्रमण से वर्जनीय नुकसान एवं रासायनिक पीड़कनाशियों से प्रभावित पंजाब के किसान -

फसल	वर्जनीय नुकसान प्रतिशत	लागत : लाभ
कपास	40-90	1:7
धान	21-51	1:7
सरसों	33-75	1:12
सूरजमुखी	36-51	1:8
मूंगफली	29-42	1:26
मक्का	20-25	1:3
दलहन	40-88	1:4
गन्ना	08-23	1:13
सब्जियां	30-60	1:7
फल	20-35	1:4

स्रोत: पेस्टीसाइड्स वर्ल्ड 3 (1): 2:4 (1998)

सारणी 2:4 विभिन्न वर्ग के रासायनिक पीड़कनाशियों की विश्व व भारत में प्रतिशत खपत -

रासायनिक पीड़कनाशी वर्ग	विश्व	एशिया	भारत
कीटनाशी	30	76	77
खरपतवारनाशी	44	13	12
फफूंदनाशी	20	08	08
अन्य	06	03	03

अध्याय-3

पौधों के रोगजनक तत्व

सामान्यत: जब कोई पौधा और उसका कोई भी अंग सामान्य प्रक्रिया या स्वास्थ्य से भिन्न लक्षण प्रदर्शित करता है या अपनी सामान्य क्रियाओं को संपन्न करने में असमर्थ होता है तो उसे बीमार होने की संज्ञा दी जाती है। ये असामान्य लक्षण रोगों के आक्रमण, कीट-पतंगों के प्रकोप, पोषक तत्व के अभाव या अन्य किसी भौतिक कारण जैसे धूप, शीत, वायु, प्रकाश, जल, ताप और भूमि की अम्लता या क्षारीयता से होते हैं। इन लक्षणों को सही-सही जानना और इनके अनुसार उपचार करना पादप-संरक्षण कार्य की प्रमुख आवश्यकता है।

हमारे देश की जलवायु मुख्यत: ऊष्ण या उपोष्ण है जो विभिन्न प्रकार के फसल शत्रुओं के संवर्धन में सहायक है। इस कारण इन पर लगतार दृष्टि रखने की आवश्यकता पड़ती है। कीट विशेषज्ञों का अनुमान है कि इस पृथ्वी पर कीटों की संख्या सबसे अधिक है और प्रत्येक चार प्राणियों में तीन कीट हैं। इनकी कुल ज्ञात जातियां लगभग 6.40 लाख हैं। इनकी कई गुना जातियाँ अज्ञात हैं। परंतु सभी कीट हानिकारक नहीं होते हैं। ऐसा अनुमान है कि प्रति हजार पीछे केवल एक ही कीट हानिकारक होता है और शेष कीट लाभदायक, किसान के मित्र अथवा उदासीन है। हमारे देश में लगभग कीटों की चार सौ जातियाँ हैं हानिकारक हैं जिनमें से लगभग 250 कीट प्रमुख हैं। उदासीन कीटों की बहुत सी जातियाँ ऐसी हैं जो परिस्थिति के अनुसार संभवत: हानिकारक बन सकती हैं। इसी प्रकार लगभग दो सौ प्रकार के कवक रोग, 30 जीवाणु रोग, 70 प्रकार के विषाणु, 20 प्रकार के सूत्रकृमि, 100 प्रकार के अष्टापदी, आधे दर्जन चूहों की जातियाँ, 25 प्रकार के खरपतवार, 5 प्रकार के परोपजीवी पौधे फसलों के लिए अधिक हानिकारक हैं। इनके अतिरिक्त कुछ पक्षी, जंगली जानवर, घोंघा, जोंक आदि भी कृषि को हानि पहुँचाते हैं। फसल के कीट व रोग के संबंध में सबसे

उल्लेखनीय बात यह है कि ज्यों ही किसी फसल की किस्म, कृषि पद्धति, बोने के समय आदि में परिवर्तन हो जाया करता है, एक नए किस्म का कीट या रोग भी उत्पन्न हो जाता है। कभी कोई साधारण कीट या रोग गंभीर बन जाता है अथवा कोई एक भक्षी कीट, बहुभक्षी बन जाता है, या कोई मौसमी कीट वार्षिक बन जाता है। अन्य कारणों के अतिरिक्त इसका एक मुख्य कारण यह है कि कवक, जीवाणुओं आदि में परिस्थितिवश शीघ्रता से परिवर्तन हुआ करता है। कीट परिस्थितियों के अनुसार अपनी आदतों को बदल देता है । कवक, जीवाणु, सूत्रकृमि या विषाणु की नई जातियाँ भी शीघ्रता से उत्पन्न हो जाती हैं और नए रोग के रूप में सामने आती हैं।

पौधों के रोग

पादप सुरक्षा में हानिकारक कीटों की अपेक्षा पौधों के रोगों की समस्या अधिक जटिल है क्योंकि कीटों के विपरीत, रोगों का प्रकोप व प्रसार पौधे के अंदर अधिक होता है, क्षतिग्रस्त भाग पुनः स्वस्थ नहीं हो सकता है और रोगों के लक्षण प्रकट होने से पूर्व, पौधों के शरीर में रोगकारक तत्व भली-भांति स्थापित साधनों द्वारा फैलते हैं और जिनकी नियंत्रण विधियों में भी भिन्नता पाई जाती है। अतएव पौधों के रोगों के सामान्य लक्षणों का निदान और उनके नियंत्रण के सिद्धांत समझना अत्यंत आवश्यक है।

रोग का अर्थ

पौधे के सामान्य स्वास्थ्य की विपरीत दशा को रोग कहा जाता है। इस प्रकार भी कह सकते हैं कि यदि कोई पौधा स्वस्थ नहीं है तो वह अस्वस्थ है। इनके बीच की अन्य कोई अवस्था नहीं हो सकती है। प्रत्येक रोग या अस्वस्थता का कोई कारक होता है जो पौधे की सामान्य जीवन-प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न कर दिया करता है जिसके कारण पौधे में अस्थायी या स्थायी अवरोध परिवर्तन हो जाया करता है अथवा पौधा या उसका कोई अंग सूख जाता है, या उनमें अवांछित वृद्धि अथवा न्यूनता उत्पन्न हो जाती है। संक्षेप में जैविक या वातावरण संबंधी कारकों द्वारा पौधे की सामान्य जीवन-प्रक्रिया में, अस्थायी या स्थायी अवरोध की दशा को रोग कहते हैं। कवक, जीवाणु, सूत्रकृमि और रोग के

जैविक तथा खाद्य तत्वों का अभाव, प्रतिकूल, मौसम आदि वातावरण संबंधी कारक हैं।

रोग के लक्षण

रोग या पौधे की अस्वस्थता के प्रमाण को लक्षण कहते हैं । पौधों में रोग के लक्षण उस रोग के स्थापित हो जाने के पश्चात् प्रकट होते हैं और लक्षण प्रकट होने के पूर्व, रोगकारक तत्व पौधे के शरीर में भली-भाँति व्याप्त हो जाते हैं। साधारणतया किसी रोगकारक तत्व को पौधे के शरीर में प्रवेश होकर स्थापित होने और उसके प्रथम लक्षण प्रकट होने में लगभग एक सप्ताह का समय लग जाता है। विभिन्न प्रकार के रोगों के लक्षणों में भिन्नता होते हुए भी रोंगों के सामान्य लक्षणों में कुछ समानता पाई जाती है।

रोगों के लक्षण दो प्रकार के होते हैं:

I. प्रथम ऐसे लक्षण जिनमें रोगकारक तत्व या उनकी रचना पौधे के अंग के ऊपर दिखलाई पड़ती है यथा:

   1) चूर्णिल आसिता (चूणी मिल्ड्यू)- रोक कारक, कवक, सफेद, मटमैले या भूरे चूर्ण के रूप में पत्तियों, फलों, या तनों पर जमा होती है।

   2) मृदुरोमिल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू)- इनमें पत्तियों की ऊपरी सतह पर पीले, सफेद या भूरे रंग के धब्बे पाए जाते हैं और निचली सतह पर सफेद या मटमैली रूई के समान कवक उगती है।

   3) गेरूई - पौधों की त्वचा में से नारंगी, पीले व भूरे या काले फफोले निकलते हैं।

   4) कंडुआ - प्रायः दोनों में या कभी कभी अन्य भागों में काला चूर्ण पाया जाता है।

   5) स्केब (पपड़ी) - सतह पर खुरदरी पपड़ी पाई जाती है जैसे आलू का स्केब रोग।

   6) कठ कठक - प्रस्तुत कवक-तंतुओं का समूह होता है, जैसे बाजारे का

अरगट।

7) गोंद बहना - नींबू का गमोसिस जिसमें रोगग्रस्त भागों में द्रवस्राव होता है ।

8) बालियों में गोल पिंड - जैसे गेहूँ का सूत्रकृमि रोग (रोहूँ)।

II. द्वितीय ऐसे लक्षण जो रोगग्रस्त पौधे में कतिपय परिवर्तनों द्वारा देखे जा सकते हैं, यथा-:

1) पत्तियों का रंगहीन या पीला होना- उकठा, जड़सड़न, मृदु ऐमिल आसिता, (डाउनी मिल्ड्यू) आदि।

2) घुंडी गाल बनना- बैंगन आदि की जड़ों से सूत्रकृमि द्वारा गाठें बनना आदि।

3) झाड़ूदार होना- जैसे गोभी का व्हिपटेल रोग।

4) पत्तियों का मुड़ना- पपीता, आलू, टमाटर का कोढ़ रोग।

5) पत्तियों का चितवर्ण होना- लोबिया, मूँग, सोयाबीन का विषाणु रोग।

6) पत्तियों या फलों पर धब्बा पाया जाना जैसे धब्बा वाला भाग मर जाता है।

7) पत्तयों पर धारी पड़ना- जिनके अंदर के कोष मर जाते हैं जैसे जौ का धारी रोग, धान का जीवाणुधारी रोग आदि।

8) झुलसा- पत्तियों, फूलों अथवा कोमल टहनियों का एकाएक मुरझा कर काला या भूरा हो जाना-आलू का झुलसा।

9) कैंकर (खर्रा)- छाल में उभरे हुए मृत धब्बों का पाया जाना- नींबू का खर्रा रोग।

10) पौध गलन- भूमि के पास तनों का सड़ना तथा पौधे का गिरना।

11) सड़न- गूदेदार भागों का गीला या सूखा सड़ना।

12) पौधे का मुरझाना।

13) शीर्षारंभी क्षय (डाईबैक)- तनों या शाखों का ऊपर से नीचे की ओर सूखना।

14) झुलसा (स्कॉल्ड)- फलों का उच्च ताप के कारण झुलसना।

15) फूल या फलों का गिरना।

16) पत्तियों का छोटा होना- बैंगन का विषाणु रोग।

17) फलों का झकड़ा होना- तिल के फूलों का झकड़ा रोग।

18) मस्से का किणक (वार्ट)- छोटे मस्से या अर्बुद (ट्यूमर) का बनना-आलू का वार्ट रोग

रोग के प्रकार

पौधों में कवक, जीवाणु तथा कुछ तत्वों के अभाव के कारण अधिक रोग लगते हैं। नियंत्रण हेतु प्रमुख उपाय नीचे दिए जा रहे हैं :

1. कवक रोग - लक्षण के अनुसार ये रोग निम्नांकित प्रकार के हैं -

(क) सड़न रोग - जड़ या तना सड़ जाता है, जैसे आलू का पछेता झुलसा, नर्सरी में गोभी आदि के पौधों का आर्द्र गलन, पपीता का तना सड़न। इनके लिए बोने के पूर्व बीज साधन आवश्यक है और नर्सरी में तथा फसल पर दो तीन बार कवकनाशियों का छिड़काव करना चाहिए।

(ख) उकठा रोग - जैसे बैंगन व अरहर का उकठा, गन्ने का उकठा व चने का उकठा रोग। 3 से 5 वर्ष का फसल-चक्र अपनाना चाहिए तथा वर्षा में पानी के निकास का उचित प्रबंध करना चाहिए।

(ग) पत्तियों पर धब्बा व झुलसा रोग - इसमें गेहुँ का झुलसा व गेरूई, आलू, बैंगन, बंडा, सरसों, गोभी, पात गोभी का झुलसा, मिर्च की टहनियों का सूखना, भिंडी, सेम, उड़द, सोयाबीन की पत्तियों का भूरा

धब्बा, मूँगफली का टिक्का रोग, धान का झोंका व झुलसा प्रमुख हैं।

(घ) कंडुआ रोग - गेहूँ, जौ, ज्वार, बाजरा के दानों में काला चूर्ण भर जाता है। इसके लिए खेत के रोगी पौधों को तुरंत उखाड़ कर जला दें। रोग मुक्त फसल का बीज बोएँ तथा बोने के पूर्व बीज-शोधन करें।

2. **जीवाणु रोग** - इनमें से धान का जीवाणु, झुलसा व जीवाणु स्ट्रीक, नींबू का खर्रा रोग, आलू व गोभी का तना सड़न प्रमुख रोग हैं। इन रोगों के लिए बीज-शोधन आवश्यक है (नींबू का खर्रा छोड़ कर)

3. **विषाणु रोग** - इनमें फसलों के रोग हैं जो प्राय: माहू, कपास की सफेद मक्खी या फुदका द्वारा फैलता है। इनके लक्षण विभिन्न फसलों पर भिन्न होते हैं, जैसे पत्तियों का पीला व सफेद होना, चितवर्ण, पत्तियों का मुड़ना, पत्तियों का छोटा या खुरदरा होना, जैसे आलू, टमाटर, भिंडी, पपीता लोबिया, कद्दू, सेम, मूँग, उड़द आदि का कोढ़ रोग व धान का टुँगरू रोग।

4. सूक्ष्म तत्वों की न्यूनता से होने वाले रोग

कवक, जीवाणु, विषाणु, सूत्रकृमि आदि के अतिरिक्त कुछ ऐसे अन्य कारक भी होते है जो पौधे के शरीर को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं, जैसे सूक्ष्म तत्वों का अभाव या अधिकता, लू, पाला, रासायनिक क्रियाएं अथवा विष प्रभाव आदि। इन कारणों से भी पौधों में रोग के लक्षण प्रकट होते हैं। इनका सम्बंध पौधे के निकटवर्ती सूक्ष्म अथवा सामान्य वायुमंडलीय वातावरण से होने के कारण उन्हें वातावरण सम्बंधी रोग भी कहा जाता है। इनके प्रभाव से पौधों की सामान्य जीवन-प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न हो जाता है जिसका कारण कोई परोपजीवी तत्व नहीं होता है।

यहाँ पर ऐसे कुछ रोगों का विवरण इस प्रकार है -

i) **धान का खैरा रोग** - यह भूमि में जस्ता की कमी अथवा आवश्यक मात्रा में फसल को भूमि से जस्ता प्राप्त न होने के कारण लगता है। रोग का प्रकोप कोमल अवस्था में विशेषकर नर्सरी व रोपाई के दो सप्ताह के अंदर अधिक

होता है। पौधे की बाढ़वार रुक जाती है, पत्तियों पर कत्थई रंग के धब्बे बन जाते हैं और जड़ें अविकसित व भूरे रंग की हो जाती हैं। खेत में जिंक सल्फेट के मिलाने अथवा फसल पर उसके छिड़काव से रोग का निराकरण किया जा सकता है।

ii) **गेहूँ में जस्ता का अभाव** - गेहूँ की उच्च उत्पादन वाली जातियों में भी जस्ता के अभाव के लक्षण पाये जाते हैं। पौधे की वृद्धि रुक जाती है। सर्वप्रथम पुरानी पत्तियों पर रोग के लक्षण दिखालाई पड़ती है। मध्य सिरा के दोनों ओर फीके रंग की धारियां बन जाती है जो आधार से आरंभ होकर नोंक की ओर बढ़ती है। बोने के पूर्व खेत की मिट्टी में जिंक सल्फेट के मिलाने से इसकी रोकथाम हो सकती है।

iii) **मक्का में जस्ता की कमी** - छोटे पौधों की अधखिली व नई पत्तियाँ हल्की पीली अथवा सफेद हो जाती हैं, व पौधें की बाढ़वार रुक जाती है। पुराने पौधों की पत्तियों के मध्यभाग में फीके रंग की धारियाँ पड़ जाती हैं जो बाद में सूख कर सफेद हो जाती हैं।

iv) **आलू का ब्लैकहार्ट रोग** - इस रोग के कारण आलू का मध्य भाग खोखला होकर काला हो जाता है। इसका कारण शीत गृहों में ऑक्सीजन का अभाव अथवा ऊँचा तापक्रम होता है। खेत में अत्यधिक नमी के कारण भी यह रोग लगता है। आलू की कुछ जातियों व बड़े आलुओं में यह रोग अधिक लगता है।

v) **टमाटर के फलों का फटना** - यह रोग टमाटर की फसल में अत्यधित सिंचाई व बोरोन की कमी के कारण होता है। कभी-कभी टमाटर का गूदा खोखला हो जाता है और फल अनियमित आकार का व हल्का हो जाता है। यह रोग भी अनियमित सिंचाई से होता है। कभी-कभी टमाटर का फल नीचे से सड़ने लगता है। इसका कारण अत्यधिक नमी, कैल्सियम या फासफोरस का अभाव होता है।

कड़ी धूप के कारण टमाटर के फलों के खुले हुए भाग पर धब्बे पड़ जाते हैं और फल ठीक से पकता नहीं है।

iv) **गोभी के रोग** - मॉलीब्डेनम के आभाव में गोभी में ''ह्विपटेल'' नामक

रोग लगता है। पत्रदल संकुचित हो जाता है और केवल मध्यशिरा की ही वृद्धि होती है। बोरोन की कमी से फूलगोभी का फूल कठोर और भूरे रंग का हो जाता है। पत्तियाँ मोटी होकर नीचे की ओर मुड़ जाती हैं।

vii) **आम का कोयलियारोग** - यह आम के फलों का रोग है जो बोरोन की कमी अथवा ईंट-भट्ठों से निकली हुई कुछ जहरीली गैस के कारण होता है। फलों पर भूरे-काले धब्बे पड़ जाते हैं जिसके फलों की वृद्धि रुक जाती है और वे गिर जाते हैं। इसके लिए बोरैक्स (सुहागा) के 0.6 प्रतिशत घोल का छिड़काव वृक्षों पर करना चाहिए ।

viii) **नींबू के रोग** - नींबू के पौधों में जस्ता, मैग्नीशियम और बोरोन की अधिक कमी पाई जाती है। जस्ते की कमी से पत्तियाँ छोटी हो जाती हैं और उनके नसों का मध्य भाग पीला हो जाता है। इसे ''क्लोरोसिस'' या ''मार्टिल लीफ'' रोग कहते हैं। मैग्नीशियम की कमी से पत्तियों का रंग तांबे के समान हो जाता है और बोरोन की कमी से बढ़ने वाली कलियाँ मर जाती हैं।

रोग फैलने का माध्यम

पौधों के अंगों में रोगकारक तत्वों के स्थापित होने को रोग का संक्रमण कहा जाता है। रोगकारक तत्व भूमि, भूमि में मिले रोगी पौधों के अवशेषों, बीज अथवा एकांतर पौधों पर पाए जाते हैं। प्रति वर्ष रोगों का आरंभ इन्हीं सूत्रों द्वारा होता है। इन्हें संक्रमण प्रारंभिक माध्यम कहते हैं। इन्हीं कारणों द्वारा रोग फसलों में लगते हैं। उसके बाद रोगकारक तत्व रोगी फसल से स्वस्थ फसल तक रोग कारक अन्य साधनों जैसे हवा, सिंचाई व वर्षा का पानी, कीट, संक्रमण, कृषियंत्र आदि द्वारा फैलते हैं। जिन फसलों में कोई वानस्पतिक भाग बीज के रूप में प्रयोग किया जाता है उनमें रोग इनके द्वारा भी फैलते हैं जैसे आलू, गन्ना, अदरक, हल्दी, लहसुन आदि। इसी प्रकार गूटी, कलम, चश्मा आदि भी फल वृक्षों में रोग फैलने के माध्यम हुआ करते है। इन सभी रोगों को संक्रमण का द्वितीय साधन कहा जाता है।

सारणी: 3.1- कुछ प्रमुख रोगों के फैलने के माध्यम

रोग का नाम	रोगकारक तत्व	फैलने का माध्यम
1. धान का झोंका	कवक	बीज, भूमि, रोगी फसल के अवशेष एकांतर फसलें, हवा
2. धान का झुलसा	कवक	बीज, भूमि, रोगी फसल के अवशेष एकांतर फसलें, हवा
3. धान का पदगलन	कवक	बीज व भूमि
4. धान का जीवाणु झुलसा	जीवाणु	बीज, वर्षा व हवा
5. धान का धारी रोग	जीवाणु	बीज, वर्षा व हवा
6. धान का खैरा	जिंक का अभाव	भूमि
7. धान का टुँगरू	विषाणु	हरा फुदका
8. गेहूँ की गेरुई	कवक	हवा व एकांतर पौधा
9. गेहूँ का झुलसा	कवक	हवा व एकांतर पौधा
10.गेहूँ का उभरा कंडुआ	कवक	बीज, रोगी फसल के अवशेष
11. गेहूँ का ध्वज कंड	कवक	बीज
12. गेहूँ पहाड़ी कंडुआ	कवक	बीज
13. गेहूँ का सेहूँ	सूत्र कृमि	भूमि व बीज मिश्रित सेहूँ
14. जौ का बंद कंडुआ	कवक	बीज
15. बाजरा का मृदु रोमिल आसिता	कवक	भूमि, हवा
16. बाजरा का कंडुआ	कवक	भूमि, हवा व बीज

17. बाजरा का अरगट	कवक	भूमि, हवा व बीज मिश्रित
18. ज्वार का कंडुआ	कवक	बीज
19. मक्के का तुलासिता	कवक	भूमि व बीज, फसल के अवशेष
20. मक्के का झुलसा	कवक	भूमि व बीज, फसल के अवशेष
21. मक्के का तना सड़न	कवक व जीवाणु	भूमि व बीज, फसल के अवशेष
22. गन्ने का लाल सड़न	कवक	भूमि, रोगग्रस्त टुकड़ा, पेड़ी
23. गन्ने का कंडुआ	कवक	हवा, वर्षा व सिंचाई का पानी
24. मूँगफली का टिक्का	कवक	हवा, वर्षा व सिंचाई का पानी
25. अरहर का उकठा	कवक	रोगी पौधे की जड़ (भूमि)
26. अरहर का बंझा	विषाणु	अष्टपदी
27. कपास का उकठा	कवक	भूमि, व फसल के अवशेष
28. आलू का अगेता झुलसा	कवक	भूमि, हवा
29. आलू का पिछेता झुलसा	कवक	बीज, हवा
30. आलू का ब्लैकस्कर्म	कवक	बीज व भूमि
31. आलू का मृदु विगलन व बभ्रु विगलन	जीवाणु	भूमि व बीज
32. आलू का विषाणु रोग	विषाणु	बीज, माहूँ, संक्रमण
33. सरसों का झुलसा	कवक	बीज, भूमि, हवा
34. अलसी की गेरूई	कवक	एकांतर पौधा व हवा
35. अलसी का उकठा	कवक	भूमि
36. मटर का चूर्ण रोग	कवक	रोगी अवशेष
37. चने का उकठा	कवक	भूमि
38. सब्जियों का पौध गलन	कवक	भूमि
39. पपीतं का तना सड़न	कवक	भूमि
40. नींबू का खर्रा	जीवाणु	चश्मा, वर्षा का पानी, रोगी पौधों का भाग

रोग नियंत्रण के उपाय

पौधों में रोग की उपस्थिति उसके लक्षणों द्वारा ज्ञात होती है और लक्षण रोग लगने के कई दिनों बाद प्रकट होते हैं। सामान्यतया कृषकगण लक्षण प्रकट होने के बाद ही रोग का उपचार करते हैं। उस समय तक रोग पौधे के संपूर्ण शरीर में भली-भांति से स्थापित होकर फैल जाता है और अधिकांश दशाओं में उपचार व्यर्थ हो जाता है। वास्तव में पौधों में रोग का उपचार एक कठिन कार्य है क्योंकि अधिकांश रोग पौधे के भीतर बढ़ते और फैलते हैं और उसके नियंत्रण हेतु रसायनों का छिड़काव ऊपर से किया जाता है जो पौधे के भीतर उपस्थित रोगकारक तत्वों तक प्रवेश नहीं कर पाते हैं। इसी कारण वे भली-भांति नष्ट नहीं हो पाते हैं। मनुष्यों व पशुओं के विपरीत पौधों की चिकित्सा पद्धति में यह एक प्रमुख अंतर है। पौधों में कीटों का नियंत्रण उनके तीव्र प्रकोप के पश्चात् भी संभव है, क्योंकि वे पौधों के शरीर के बाहर होते हैं, परंतु रोगों में ऐसी बात नहीं है। इसी कारण रोग नियंत्रण के लिए निरोधक उपाय ही अधिक प्रभावकारी सिद्ध हुए हैं। रोग नियंत्रण के दो प्रधान अंग हैं- 1. पोषक फसल और 2. रोग कारक तत्व। इन दोनों को ध्यान में रख कर निम्नांकित उपाय करने चाहिए -

1. **रोगकारक तत्वों को नष्ट करना** - इसके अंतर्गत वे समस्त उपाय आते

हैं जिनके द्वारा रोगकारक तत्वों का प्रभाव फसल पर न्यूनतम हो सके जैसे रोगमुक्त बीज बोना, बीज का शोधन, रोगिंग (अपावांछन) खेत से रोगी फसल के ठूठों को निकालना या जलाना, स्वच्छ कृषि अवरोधक रासायनिक उपचार आदि।

2. **फसल को सशक्त (रोग-रोधी) बनाना** - ऐसे उपायों को अपनाना जिनसे फसल में रोग सहने की क्षमता में वृद्धि हो जाए, जैसे रोग-रोधी अथवा रोग को अधिक सहन करने वाली जातियाँ बोना।

3. **वातावरण परिवर्तन** - जिससे वह फसल के लिए अधिक अनुकूल और रोगकारक तत्वों के लिए प्रतिकूल बन जाए जैसे-

   i) **फसल-चक्र** - लंबे फसल-चक्र के अपनाने से अरहर, कपास, मटर, चना आदि में उकठा रोग कम लगता है क्योंकि दूसरी फसल बोने से उकठा के रोगकारक कवक की संख्या घट जाती है।

   ii) **मिश्रित फसल** - अरहर, ज्वार तथा कपास मेथी की मिश्रित फसल से अरहर व कपास का उकठा रोग कम हो जाता है।

   iii) **गर्मियों की जुताई** - अनेक रोग कारक, जीवाणु तथा सूत्रकृमि कड़ी धूप से नष्ट हो जाते हैं।

   iv) **बोने के समय में परिवर्तन** - देर में बोने से चना व मटर में उकठा कम लगता है। इसी प्रकार बसंत में बोई गई संकट मक्का में डाउनी मिल्ड्यू का रोग नहीं लगता।

   v) **अन्य** - उचित दूरी व गहराई पर बोना तथा उचित जल-निकास।

   vi) खेत में नीम की खली अथवा लकड़ी का बुरादा डालने से हानिकारक सूत्रकृमियों पर नियंत्रण किया जा सकता है।

   vii) जैविक खादों के प्रयोग से मिट्टी में लाभदायक जीवाणुओं की वृद्धि हो जाती है, जो हानिकारक कवक व जीवाणु की संख्या को कम करने तथा उनके द्वारा फैलने वाले कतिपय रोगों को कम करने में सहायक होते हैं।

रोग नियंत्रण के सिद्धांत -

1. यथासंभव रोगरोधी किस्मों को बोना।

2. बोने के लिए रोग-मुक्त बीजों का प्रयोग करना।

3. बोने के पूर्व बीज का रासायनिक उपचार करना।

4. खेत में रोगी पौधों व उनके ठूठों को उखाड़ कर नष्ट करना।

5. खरपतवारों को नष्ट करना।

6. उर्वरकों का संतुलित मात्रा में प्रयोग करना।

7. उन्नत कृषि पद्धतियों को अपनाना।

8. वैज्ञानिक फसल-चक्र अपनाना।

9. पर्याप्त पानी देना। चूर्णिल आसिता या बुकनी रोग (चूर्णी मिल्ड्यू) के बीजाणु खुश्की में खूब पनपते हैं। खेत की भली-भाँति सिंचाई कर देने से रोग की रोकथाम हो जाती है। जनवरी फरवरी में गेहूँ की फसल में सिंचाई कम करना चाहिए क्योंकि अधिक नमी और कम तापक्रम होने पर गेरूई रोग फैलता है।

10. मिट्टी का निर्जलीकरण : रासायनिक विधि से - फार्मलीन 2.50 लीटर को 250 लीटर पानी में घोलकर पीली मिट्टी में एक वर्गफुट डाला जाता है या 15 भाग फार्मलीन 86 भाग लकड़ी के पिसे हुए कोयले में मिलाते हैं। इस मिश्रण के 50 ग्राम को प्रति वर्ग फुट क्यारी की मिट्टी में अच्छी तरह मिलाकर मिट्टी को टाट, या पालीथीन शीट से ढक देते हैं। 8 से 10 दिन बाद बीज बोने से बहुत सी फसलों के बीजांकुर के रोग (1) फल विगलन रोग, (2) मूल विगलन रूट-रॉट, (3) आर्द्र पतन का नियंत्रण हो जाता है। इन रोगों से - पान, धान, मिर्च, टमाटर, बैंगन, गोभी आदि फसल प्रभावित होती है।

फसल को स्वस्थ रखने, उससे अधिकतम उपज लेने अथवा उनकी ऊपज को उचित अवस्था में रखने के उद्देश्य से फसल के विभिन्न शत्रुओं को किसी क्षेत्र में प्रवेश करने, प्रकट होने या फैलने से रोकना अथवा उसकी संख्या या तीव्रता को कम करना नियंत्रण कहलाता है। फसल, फसल-शत्रु एवं वातावरण में एक त्रिकोणात्मक संबंध होता है। वातावरण का प्रभाव फसल व उसके शत्रुओं दोनों पर पड़ता है। वातावरण फसल के प्रतिकूल होता है तो वह शीघ्रता से व्याधिग्रस्त हो जाती है। इसी प्रकार जब वातावरण फसल के अनुकूल होता है तो उस पर कीट रोग आदि का प्रभाव कम हो जाता है। कभी-कभी वातावरण दोनों के अनुकूल होता है। सामान्य वायुमंडलीय वातावरण की अपेक्षा पौधे के निकटवर्ती वातावरण का प्रभाव पौधों पर अधिक पड़ता है, जैसे खेत में नमी की मात्रा, छाया व प्रकाश, पौधों के बीच की दूरी, खरपतवारों की मात्रा व किस्म, खेती में खाद्यान्नों का स्तर, आदि। इस वातावरण को फसल के अनुकूल बनाकर फसल व्याधियों का नियंत्रण सुगमता से किया जा सकता है। इसी प्रकार से स्वस्थ बीज बोने, बीज-शोधन करने और फसल को अन्य प्रकार से स्वस्थ व सुदृढ़ रखने से भी कीट-रोग आदि का प्रभाव कम किया जाता है। वातावरण को फसल के अनुकूल बनाना और उसे स्वस्थ व सुदृढ़ रखना निरोधात्मक उपाय कहा जाता है। इसके विपरीत फसल शत्रुओं के प्रकट या आक्रमण होने पर उनका नियंत्रण करना उन्मूलक उपाय है। आलू के पिछैता झुलसा से बचाव के लिए स्वस्थ व रोग मुक्त बीज बोना, रोग लगने के पूर्व फसल पर छिड़काव करना आदि निरोधात्मक उपाय है। रोग लगने के बाद फसल पर उपचार उन्मूलक उपाय हैं।

नियंत्रण के उपाय

नियंत्रण चाहे निरोधात्मक हो या उन्मूलक, व्यावहारिक रूप में उसका उद्देश्य फसल-शत्रु को शत-प्रतिशत समाप्त करना नहीं होता है। यह न तो संभव ही है और न वांछनीय। अत: निम्नांकित बातों को ध्यान में रखकर नियंत्रण उपायों को अपनाने की आवश्यकता है-

1. नियंत्रण निरोधात्मक होना चाहिए, क्योंकि यह विधि अधिक सरल, सस्ती व प्रभावकारी होती है।

2. नियंत्रण लाभदायक होना चाहिए। नियंत्रण विधि पर व्यय की तुलना में उसके फलस्वरूप लाभ अधिक होना चाहिए।

3. नियंत्रण प्रभावकारी हो। नियंत्रण विधि को प्रभावकारी या सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसे निश्चित समय पर व्यापक रूप में प्रयोग पें लाया जाए और यदि आवश्यकता हो तो पुन: दोहराया जाए।

4. नियंत्रण अन्य कृषि कार्यों से समन्वित हो। ऐसा करने से व्यय कम पड़ता है।

5. प्रभावी नियंत्रण के लिए विभिन्न हानिकारक तत्वों के संबंध में भी आवश्यक जानकारी होनी चाहिए, अर्थात् कीट रोग आदि के निदान, उसके प्रकोप के संभावित समय, उनकी जीवन अवस्थाएँ व आदतें, मौसम का उनसे संबंध और प्रकोप की परिस्थितियों आदि की जानकारी से उनका नियंत्रण सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

रोगकारक तत्व

जिन कारकों या तत्वों द्वारा पौधों में अस्वस्थता उत्पन्न होती है उन्हें रोगकारक तत्व या रोग का कारण कह सकते हैं। इन तत्वों या कारकों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :

1. **जैविक कारक** - जब पौधों में रोग किसी प्राणी या वनस्पति से उत्पन्न होता है तो उसे जैविक कारक कहा जाता है, जैसे हानिकारक कवक, जीवाणु, शैवाल, परोपजीवी पौधे, सूत्रकृमि आदि।

2. **अजैविक कारक** - जब रोग का कारण किसी जीवधारी के अतिरिक्त अन्य होता है जिनके अभाव या अधिकता से पौधा अस्वस्थ हो जाया करता है, जैसे खाद्यांशों व सूक्ष्म तत्वों, सूर्य के प्रकाश, पानी, ताप, वायु, आदि का अभाव अथवा अधिकता। भूमि के रासायनिक स्तर अथवा विषैली वस्तुओं के प्रभाव से भी पौधा रोगग्रस्त हो जोता है। अजैविक कारण वस्तुत: वातावरण से संबद्ध होने के कारण पौधों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है। ऐसे कारकों को वातावरण संबंधी कारण भी कहा जाता है।

3. **विषाणु** - पौधों के विषाणु रोग एक प्रकार के न्यूक्लियोप्रोटीन के कारण फैलते हैं। विषाणु जीवधारी हैं या जीवहीन- इस प्रश्न पर वैज्ञानिकों में मतभेद है। अतएव विषाणुओं को अभी अलग श्रेणी में रखा जाता है।

रोगों के जैविक कारण

1. **कवक**- कवक एक प्रकार की वनस्पति है जिसमें अन्य वनस्पतियों के विपरीत स्पष्ट जड़, तना, पत्तियों आदि का अभाव होता है और हरियाली नहीं पाई जाती है। यह एक पतले हरियाली-विहीन तंतु या तंतुजाल के रूप में पाई जाती है और कुछ जातियों को छोड़कर कवक की अधिकांश जातियों के तंतु, बहुकोषीय तथा खंडीय होते हैं। इनमें प्रजनन विशेष प्रकाश के बीजाणुओं द्वारा हुआ करता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कवक जड़, तना व हरियाली-विहीन एक ऐसी वनस्पति है जिसमें प्रजनन विशेष प्रकार के बीजाणुओं द्वारा होता है। इनमें हरियाली का अभाव होने के कारण कवक को अपने जीवन-निर्वाह के लिए अन्य जीवों अर्थात् प्राणियों व वनस्पतियों द्वारा निर्मित भोजन पर निर्भर रहना पड़ता है। फलस्वरूप सभी कवक स्वभाव में पराश्रयी होते हैं और इसीलिए रोग का कारण बन जाते हैं क्योंकि वे अपने भोजन के लिए पोषक पौधों पर आक्रमण करते हैं और पौधे द्वारा निर्मित भोजन को ग्रहण कर अभिवृद्धि करने लगते हैं जिससे पौधा कमजोर हो जाता है। इसके अतिरिक्त कवक कुछ ऐसे रसायन उत्पन्न करते हैं या उसके आक्रमण से ऐसी रासायनिक क्रिया प्रारंभ हो जाती है जो पौधे के लिए विषैली होती है। परंतु सभी प्रकार के कवक पौधों में रोग नहीं उत्पन्न करते। इस दृष्टि से कवक को दो मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। पहला परजीवी (पैरासाइट) और दूसरा मृतजीवी (सैप्रोफाइट)। अधिकांश रोग इसी परजीवी वर्ग के कवक के कारण होते हैं जो स्वयं विभिन्न स्तर के होते हैं अर्थात् सभी परजीवी कवक में रोग उत्पन्न करने की क्षमता व स्तर समान नहीं होता। इनकी कुछ जातियाँ केवल जीवित पौधों पर ही आश्रित होती हैं और अपना भोजन पौधों के केवल जीवित कोषों से ग्रहण कर सकती हैं। ये अपना संपूर्ण जीवन केवल जीवित पौधों पर ही व्यतीत करते हैं। इन्हें अनिवार्य परजीवी कहते हैं जो पौधों में अनेक भयंकर रोग जैसे गेरूई, चूर्णिल आसिता (चूणी मिल्ड्यू)

कंडुआ आदि उत्पन्न करती हैं। कुछ परजीवी कवक ऐसे भी होते हैं जो पोषक फसल के कटने के बाद वे उनकी जड़ों, सूखे तनों, गिरी हुई पत्तियों आदि अवशेषों पर पनपते हैं और पुनः फसल बोने पर आक्रमण करते हैं। पौधों का उकठा, जड़ व तना-सड़न, पत्तियों का झुलसा आदि रोग प्रायः इसी प्रकार के कवक द्वारा फैलता है।

मृतजीवी - इसी प्रकार का कवक पौधों के मृतक भागों पर ही आश्रित रहते हैं और मिट्टी, सड़ी पत्तियों व पौधों के अवशेषों, जीवांश की खाद आदि में बहुतायत से पाए जाते हैं और उन्हें सड़ाने में सहायक होते हैं। ये अत्यंत ही उपयोगी होते हैं और हानिकारक कवक व सूत्रकृमि की संख्या घटाने में सहायक भी होते हैं। परंतु कुछ ऐसे मृतजीवी कवक भी हैं जो विशेष परिस्थिति में रोगकारक या परजीवी हो जाते हैं जैसे सब्जियों का पौधा-गलन, पपीते का तना-सड़न, फल-सड़न आदि रोगों से संबंधित कवक।

रोगकारक कवक के संबंध में दूसरी बात स्मरण रखने योग्य यह है कि प्रत्येक फसल के विभिन्न रोगों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के कवक और उनकी उप-जातियों व किस्में उत्तरदायी होती हैं क्योंकि कवक में अत्यधिक विशेषीकरण पाया जाता है। जैसे की कोई नया बीज या नई किस्म निकाली जाती है, उस पर आक्रमण करने के लिए कवक भी कोई नई उपजाति उत्पन्न कर देती है। उदाहरण के लिए वैज्ञानिकों का मत है कि अब तक गेहूँ में गेरूई रोग उत्पन्न करने वाली कवक की एक हजार किस्में हो चुकी हैं।

अन्य उल्लेखनीय बात यह है कि बहुत सी कवक ऐसे कठ कवक तैयार करते हैं जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कई वर्षों तक जीवित रहते हैं और अनुकूल परिस्थिति मिलने पर वे उगकर नए बीजाणु उत्पन्न करते हैं जो फसलों में रोग फैलाते हैं।

2. **जीवाणु**- कवक की भाँति जीवाणु भी हरियाली-विहीन वनस्पति है, परंतु जीवाणु ज्ञात जीवधारियों में सबसे सूक्ष्म, तंतु-विहीन और एककोषीय होते हैं। उनमें प्रजनन विभाजन द्वारा होता है, अर्थात् प्रत्येक जीवाणु दो भागों में स्वतः विभक्त होकर स्वतंत्र जीवाणु की भांति इसी प्रकार पुनः बढ़ता रहता

है। इसी कारण अनुकूल परिस्थिति में जीवाणुओं की संख्या अत्यंत तीव्रता से बढ़ती है। कवक की भाँति जीवाणु भी परजीवी या मृतजीवी अथवा दोनों होते हैं। अनुमान है कि जीवाणु की लगभग 200 जातियाँ पौधों में 75 जीवाणु रोग उत्पन्न करती हैं जिनमें से 40 रोग प्रमुख हैं।

जीवाणु में भी शीघ्रता से परिवर्तन हो जाता है और उनकी नई उपजातियाँ नए किस्म का रोग उत्पन्न करती हैं। किसी कवक के जीवाणु अथवा संक्रामक तंतु जब पौधे के अंगों पर पड़ते हैं तो ये अपने चूषकों की सहायता से कोषों में प्रवेश करते हैं, परंतु जीवाणु इस प्रकार से संक्रमण करने में असमर्थ होते हैं क्योंकि इनमें चूषकों का विकास नहीं होता है। अतएव पौधों के भागों में जीवाणु का प्रवेश पत्तियों के खुले स्टोमेटा, पौधों के शरीर के क्षतों अथवा कीटों या कवक के माध्यम से हुआ करता है।

जीवाणुजन्य पौधों के रोगों के प्राय: निम्नांकित लक्षण होते हैं -

(क) *स्थानीय धब्बा* - पत्तियों और कभी-कभी अन्य भागों पर धब्बे बनते हैं जैसे धान का जीवाणु झुलसा, पान की पत्तियों का धब्बा रोग।

(ख) *उकठा* - इसमें लवाहिनी कोषों को जीवाणु अवरुद्ध कर देते हैं, जिससे पौधा मुर्झाने के बाद सूखता है, जैसे आलू का उकठा व भूरी सड़न, गोभी की काली सड़न, कद्दू वर्ग का उकठा।

(ग) *कैंकर* - पत्तियों, तनों एवं अन्य भागों पर कार्क के समान उभरे फफोलों का बनना, जैसे नींबू व टमाटर का खर्रा।

घ) *गीली सड़न* - गूदेदार भागों का प्रकिण्व (एन्जाइम) तथा विषैले पदार्थों के उत्पन्न हो जाने से सड़ना।

ड.) *इल्ला या घुंडी बनना* - जैसे गुलाब का ट्यूमर, सेब की किरीट पिटिका (क्राउनगाल) रोग।

च) *पपड़ी* - पौधों की त्वचा पर शुष्क खुरदरी व उभरी हुई पपड़ी का बनना। कुल 7 श्रेणियों के जीवाणु पौधों में रोगों के लिए उत्तरदायी स्ट्राप्टामाइसस और बैक्टीरियम। लाभदायक बैक्टीरिया खाद के सड़ाने,

भूमि में अनेक रासायनिक क्रियाओं और हवा से नाइट्रोजन संग्रह में सहायक होते हैं।

3. **परजीवी पौधे** - अमरबेल, बांदा, ओरोबैंकी, और स्ट्रीगा चार प्रमुख पलने वाले पौधे हैं जो अपने भोजन के लिए अन्य पौधों पर आश्रित होते हैं। इनमें से प्रथम दो तने के और अंतिम दो जड़ों के परजीवी हैं। इनमें भी अमरबेल व ओरोबैंकी हरियाली-विहीन होने के कारण पूर्ण परजीवी है जबकि शेष दो हरियाली युक्त होने के कारण अपूर्ण परजीवी हैं। ये सभी अपनी चूषक जड़ों द्वारा पौधों के अंगों से भोजन ग्रहण करते हैं। अमरबेल द्वारा पौधों में विषाणु रोग भी फैलता है।

4. **सूत्रकृमि या नेमेटोड़** गोलकृमि (राउंडवर्म) से मिलते-जुलते सूक्ष्म प्राणी हैं जो भूमि व जल में स्वाभाविक रूप से पाए जाते हैं। ये आकार में आधे से दो मि. मी. लंबे होते हैं और भूमि में लाखों की संख्या में पाए जाते हैं। इनमें से अधिकांश लाभदायक हैं जो खाद के सड़ाने और भूमि के हानिकारक कवक व जीवाणुओं आदि की संख्या घटाने में सहायक हैं, परंतु इनकी एक बड़ी संख्या पौधों के लिए हानिकारक भी है जिन्हें वनस्पति-भक्षी सूत्रकृमि कहा जाता है। अनुमान है कि संसार भर में हानिकारक सूत्रकृमि की 1500 जातियाँ हैं जिनमें से लगभग 30 जातियाँ हमारे देश की विभिन्न फसलों को पर्याप्त क्षति पहुंचाती हैं। इनके द्वारा हानि के लक्षण रोग के समान होने के कारण इनका अध्ययन रोगों के अंतर्गत किया जाता है।

हानिकारक सूत्रकृमि दो प्रकार के होते हैं - (1) आंतरिक भक्षक जो पौधों के कोषों में प्रवेश करके खाते हैं, और (2) बाह्य भक्षक जो बाहर से हानि करते हैं। सभी आंतरिक भक्षक व कुछ बाह्य भक्षक स्थायी होते हैं और शेष सूत्रकृमि चलायमान होते हैं जो मिट्टी में चलते हुए जड़ों को हानि करते हैं।

सूत्रकृमि की शरीर रचना व वृद्धि - नर बेलनाकार और मादाएं बेलनाकार, थैलानुमा अथवा नाशपाती के समान होती हैं। शरीर के अग्र भाग में एक तेज चूषक नलिका होती है जिसकी सहायता से वे पौधों का रस चूसते हैं। इनमें रक्त, स्नायु व श्वास-प्रणाली का अभाव होता है और उनके कार्यों की पूर्ति एक प्रकार

के तरल पदार्थ द्वारा होती है। इनकी त्वचा पर अन्य वस्तुओं का प्रभाव शीघ्रता से नहीं पड़ता है।

अन्य प्राणियों की भांति इनमें भी लैंगिक प्रजनन होता है। मादा का शरीर अंडों से भरा होता है जिससे प्रथम अवस्था का लार्वा बनता है। इस थैले के फटने से द्वितीय अवस्था के लार्वा बाहर निकल कर जड़ों पर आक्रमण करते हैं। कई बार निर्मोक के बाद के लार्वा प्रौढ़ में परिवर्तित हो जाते हैं। अनुकूल परिस्थिति में एक पीढ़ी का समय लगभग दो सप्ताह का होता है, परन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों में यह समय 8-10 सप्ताह तक हो सकता है। सिस्टनेमेटोड की मादा का शरीर अंडों से भर जाने पर फूलकर कठोर हो जाता है, जिससे फूटकर लार्वा बनने में बहुत समय लगता है।

सूत्रकृमि की जातियाँ - वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सूत्रकृमि की अनेक जातियाँ होती हैं। उनके द्वारा की गई हानि के लक्षणों के अनुसार उनकी तीन जातियाँ प्रमुख हैं- (1) बीजपिटिका सूत्रकृमि (सीडगाल नेमेटोड) - इस प्रकार के नेमेटोड्स गेहूँ की वालियों में दानों के स्थान पर कठोर गोल पिंड (गेहूँ) बनाते हैं जिसमें द्वितीय अवस्था वाले लार्वा भरे होते हैं (2) सिस्टनेमेटोड्स - इस प्रकार के नेमेटोड्स गेहूँ पिंड बनाते हैं (3) मूल सूत्रकृमि (रूटनाटनेमेटोड) - इस प्रकार के सूत्रकृमि बैगन, टमाटर, भिंडी, ककड़ी, नींबू, जूट, मूँगफली, पपीता, मिर्च आदि पौधों की जड़ों में गाँठे बनाते हैं जिसके कारण पौधा कमजोर व पीला होकर धीरे-धीरे मर जाता है।

सूत्रकृमि द्वारा हानि का ढंग - वनस्पति-भक्षी सूत्रकृमि अनिवार्यत: परजीवी होते हैं। ये अपनी चूषक नलिकाओं द्वारा जड़ों का रस चूसते हैं और उनमें घाव पैदा कर देते हैं जिनके कारण जड़ों द्वारा जल व भोजन ग्रहण करने में बाधा उत्पन्न होती है। साथ ही साथ वे अपनी लार द्वारा पौधों के लिए एक विषैला द्रव भी निकालते हैं। कुछ प्रकार के सूत्रकृमि पौधों में विषाणु, जीवाणु अथवा कवक के रोग भी फैलाने में सहायता करते हैं। अनुमान लगाया गया है कि विश्वभर में सूत्रकृमि द्वारा कृषि को 5 से 35 प्रतिशत तक हानि होती है। भारत में गेहूँ, जौ, मक्का, ज्वार, बाजरा, आलू, धान, दाल वाली फसलों, गन्ना, सब्जियां व फलवृक्षों पर इनका आक्रमण पाया जाता है।

सूत्रकृमि द्वारा हानि के लक्षण - अन्य प्रकार के रोगों के विपरीत सूत्रकृमि द्वारा उत्पन्न रोगों के लक्षण, अधिकांश दशाओं में स्पष्ट नहीं होते हैं। प्राय: उनके लक्षणों को नमी या उर्वरक का अभाव समझा जाता है। सामान्यतया इनके प्रकोप से फसलों की जड़ों में गाठें बन जाती हैं, उदाहरणार्थ - बैंगन, टमाटर, भिंडी, ककड़ी, पपीता, मिर्च आदि पौधों की जड़ों की गाँठें जिससे पौधे की वृद्धि रुक जाती है।

गेहूँ व जौ की बालियाँ टेढ़ी व फैली होती हैं जिनमें दानों के स्थान पर लार्वा के गोल पिंड पाए जाते हैं।

पौधों की बढ़वार रुकना, पत्तियों का पीला होना, पौधों का मुरझाना, पत्तियों पर धब्बों का बनना, पत्तियों का ऐंठना और तीव्र प्रकोप की दशा में पौधे का सूखना आदि इस रोग के सामान्य लक्षण हैं। जड़ों पर आक्रमण करने वाले सूत्रकृमि की स्थिति में प्राय: उपर्युक्त लक्षण प्रकट होते हैं।

नियंत्रण के उपाय - सूत्रकृमि का नियंत्रण एक दुष्कर कार्य है। इसलिए उनके नियंत्रण के लिए कुछ बातों का विशेष रूप से यहाँ उल्लेख किया जाता है-

1) सूत्रकृमि अनिवार्यत: परजीवी होते हैं, फसल के अभाव में उनकी संख्या कम हो जाती है।

2) वे परिस्थितियों द्वारा शीघ्रता से प्रभावित होते हैं और प्रतिकूल परिस्थितियों में उनकी संख्या शीघ्रता से घट जाती है। उदाहरण के लिए 28 से. से अधिक ताप, कड़ी मिट्टी, गर्मियों की जुताई और भूमि में पर्याप्त वायु संचार आदि उनके लिए अनुकूल नहीं है।

3) सूत्रकृमि का रोग भूमि-जन्य है और सूत्रकृमि भूमि व मिट्टी के माध्यम से ही वृद्धि करते हैं।

4) रासायनिक नियंत्रण अधिक मँहगा और प्रयोग में कठिन है, परंतु विभिन्न कृषि क्रियाओं एवं सावधानियों द्वारा इनकी रोकथाम की जा सकती है। उनकी रोकथाम की प्रचलित विधियों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है

रासायनिक उपचार - नेमागॉन, डी.डी.शेल, नेमाफॉस, ई.डी.बी. आदि रसायनों द्वारा भूमि का धूमरण किया जाता है जिसकी लागत प्रति हेक्टर 500-1200 रु. तक होती है। इनके प्रयोग के लिए विशेष उपकरण व सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। तरल रसायनों को मृदा अंत: क्षेपित्र (सॉयल इंजेक्टर) की सहायता से खेत की मिट्टी में 30 से.मी. की दूरी व 20 से.मी. की गहराई पर पहुँच जाता है। रसायनों के दानों को मिट्टी में निर्धारित ढंग से मिलाते हैं।

कृषीय विधियों द्वारा रोकथाम - कृषीय विधियों द्वारा सूत्रकृमि का नियंत्रण अधिक सुगम व सस्ता है जिन्हें अपनाकर उनकी संख्या में 50-80 प्रतिशत की कमी की जा सकती है। जैसे-

क) सूत्रकृमि रहित बीज बोना।

ख) खेत से रोगग्रस्त (गेहूँ में) बालियों को निकालकर जला देना।

ग) गर्मियों में जुताई। ऐसा करने से सूत्रकृमि व उनके लार्वा कड़ी धूप से मर जाते हैं।

घ) फसलों की अदला-बदली करना। पोषक फसल के अभाव में उस पर पनपने वाले सूत्रकृमि आहार न मिलने के कारण स्वत: नष्ट हो जाते हैं।

ड.) खेत में जीवांश का स्तर ऊँचा रखना। कुछ विद्वानों का मत है कि जीवांश के सड़ने की क्रिया में कुछ ऐसे कार्बनिक अम्ल तैयार होते हैं जो सूत्रकृमि की वृद्धि को रोक देते हैं। इसके अतिरिक्त खाद, पॉस सड़ाने वाले जीवाणु व कवक, जो इस अवसर पर अधिक संख्या में पाए जाते हैं, हानिकारक सूत्रकृमि को भी नष्ट कर दिया करते हैं।

च) लकड़ी का बुरादा या नीम की खली। पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय द्वारा किए गए प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि 25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से लकड़ी के बुरादे अथवा नीम खली को खेत की मिट्टी में मिलाने से टमाटर, बैंगन, आलू, भिंडी आदि फसलों में सूत्रकृमि का प्रकोप नगण्य रहा और पैदावार में भी वृद्धि हुई है।

विषाणु

विषाणु मनुष्य के अति प्राचीन शत्रु हैं। अति प्राचीन काल से ये मनुष्य पशु एवं फसल के अनेक भयंकर रोगों के कारण बने हुए हैं। मनुष्यों में चेचक, खसरा, इन्फ्लुएन्जा, पशुओं में एन्थ्रैक्स, खुरपका और पौधों में अनेक विषाणु रोग इन्हीं कारणों से होते हैं जो प्राचीनतम होने के साथ ही साथ बहुत कुछ रहस्यमय भी हैं। आज भी इनकी गणना जीवधारियों के भयंकर रोगों में की जाती है। इनका कोई समुचित उपचार नहीं ज्ञात हो पाया है। इनका आक्रमण केवल बड़े जीवधारियों तक ही सीमित नहीं है बल्कि वे अति सूक्ष्म जीवाणु को भी रोगग्रस्त करते हैं। हमारे देश में शायद ही कोई फसल है जिस पर इस भयंकर रोग का प्रकोप न पाया जाता हो। यह आलू, टमाटर, सेम, भिंडी, उर्द, मूँग, लोबिया, सोयाबीन, कद्दू, मिर्च, मूँगफली, पपीता, नींबू आदि के पौधों का सामान्य रोग है। धान, केला, बैंगन, अरहर, कपास, गन्ना आदि फसलों पर भी यह बहुत आक्रमण करता है। इस रोग के कारण संतरे व मौसमी के बागों के लिए काफी खतरा उत्पन्न हो गया है।

विषाणु का शाब्दिक अर्थ ''विष'' है परंतु वैज्ञानिक दृष्टि से विषाणु अत्यंत ही सूक्ष्म संक्रामक तत्व-न्यूकिलियो प्रोटीन है जो अपने पोषण हेतु पूर्ण रूप से किसी वनस्पति अथवा जीवधारी निर्भर पर होता है। विषाणु अनिवार्यत: परजीवी तत्व होता है। कुछ एक को छोड़कर समस्त विषाणु पोषक पौधे की मृत्यु हो जाने से स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं। यद्यपि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि विषाणु जीवित तत्व हैं, परंतु उनकी अनेक क्रियाएं जीवधारियों के समान होती है जैसे वे ताप, प्रकाश, एक्सरे आदि बाह्य वातावरणों द्वारा प्रभावित होते हैं और उनमें शीघ्रता से वृद्धि एवं संवर्धन होता है। परंतु अन्य जीवधारियों के विपरीत विषाणु कृत्रिम माध्यमों द्वारा उत्पन्न नहीं किए जा सकते हैं। चाहे जो भी हो, इतना तो निर्विवाद है कि विषाणु संक्रामक तत्व है जिनका प्रभाव दैहिक होता है अर्थात् वह पौधे के संपूर्ण भागों में व्याप्त होकर उसेक पूर्णतया अस्वस्थ बना देता है।

विषाणु रोगों के लक्षण – पौधों पर विषाणु रोग के विभिन्न लक्षण पैदा होते हैं, जो विषाणु की किस्म, पौधे की जाति व किस्म, मौसम, नमी व ताप, आदि पर निर्भर हैं। साधारणतया निम्न प्रकार के लक्षण पाए जाते हैं।

1. *चित्तवर्ण*– इस प्रकार के लक्षण प्रायः पत्तियों पर पाए जाते है। पत्तियों पर सामान्य हरे चकत्तों के साथ हल्के हरे या श्वेत-पीले मिश्रित चकत्ते पाये जाते है जिससे पत्तियाँ पित्तवर्ण रूप प्रदर्शित करती हैं।

2. *पीलापन* – इसमें पूरी पत्ती पीली या फीके रंग की हो जाती है।

3. *ऊतकक्षय या सूखना (नेक्रोसिस)* – संक्रमित भाग मर कर सूख जाता है।

4. *विविध लक्षण* – नसों का पीलापन (भिंडी), पत्तियों का रंग उड़ना (कद्दू) पत्तियों का गुच्छेदार होना (मूँगफली), नंचीटाप (केला), पत्तियों का छोटा हो जाना (बैंगन), पत्तियों पर अंगूठीनुमा धब्बा (सोयाबीन), पत्तियों का मुड़ना (टमाटर, पपीता), पत्तियों का ऐंठना (आलू) फलों का विकृत होना (कद्दू), बंध्यापन (अरहर), बौनापन (धान) आदि।

विषाणु रोगों के फैलने का ढंग

तम्बाकू के पित्तवर्ण रोग के अतिरिक्त लगभग सभी विषाणु केवल जीवित पौधे पर ही आश्रित होते हैं। इसी कारण पौधे की शीघ्र मृत्यु नहीं होती है।, यद्यपि उसकी वृद्धि उत्पादन क्षमता मारी जाती है। फलस्वरूप अनेक विषाणु, रोगी पौधों से स्वस्थ पौधे तक अनेक साधनों द्वारा फैलते है जो निम्नांक्ति है।

1. **बीज** – लगभग 60 विषाणु रोग बीज द्वारा फैलते हैं जिनमें आलू की पत्तियों का ऐंइा रोग, लोबिया, कद्दू, सेम, तरबूज का पित्तवर्ण, सोयाबीन विषाणु तथा मूँग का पीला विषाणु प्रमुख है।

2. **कीट** – इनमें मॉहू, कपास की श्वेत मक्खी, जैसिह, रसाव (थ्रिप्स) व अष्टपदी की कुछ जातियाँ प्रमुख हैं जो रोगी पौधों का रस चूसने के बाद जब स्वस्थ पौधों का रस चूसती हैं तो रोग के विषाणु स्वस्थ पौधों में प्रवेश

करके उन्हें रोगी बना देते है माँहू की विभिन्न जातियां लगभग 75 प्रकार के रोग फैलाती हैं जिनमें केला का चित्तवर्ण, गुच्छित चूड (बंवीटाप), बैंगन, मिर्च का पित्तवर्ण, नींबू की टीटिजा, पपीता का चित्तवर्ण, आलू का ऐंठा या चित्तवर्ण, गन्ने का पित्तवर्ण आदि प्रमुख हैं।

कपास की श्वेत मक्खी द्वारा मूँग, अरहर, भिंडी, सोयाबीन का पीतकिर्मीर (मौजेक) मिर्च, पपीता व टमाटर का पर्ण कुंचन (लीफकर्ल), आर्ल का ऊतकक्षय (निक्रोसिस) और गन्ने का किर्मीर रोग फैलता है। जैसिड द्वारा बैंगन कालीटिल लीफ व मोजेक तथा धान का टंगरू, रसाव (थ्रिप्स) द्वारा तंबाकू का ऊतक क्षय व टमाटर का चित्तीदार म्लानि अष्टपदी द्वारा अरहर का बंझा रोग फैलाता है।

3. **परजीवी पौधे** – अमरबेल द्वारा टमाटर का चित्तीदार म्लानि व चुकंदर का पर्ण कुंचन फैलता है।

4. **भूमि** – भूमि के कवक व सूत्रकृमि द्वारा तंबाकू का ऊतकक्षय गेहूँ का स्ट्रीक, टमाटर का चित्तवर्ण आदि रोग फैलते हैं।

5. **कोषरस** – कुछ प्रकार के विषाणु रोग पौधों के कोषरस से फैलते हैं। रोगी पौधे का कोषरस किसी प्रकार स्वस्थ पौधो में प्रवेश कर जाता है जिससे रोग का प्रसार होता है। यह क्रिया प्रायः निकटवर्ती पत्तियों या टहनियों की पारस्परिक रगड़ से होती है जैसे मक्का का किर्मीर, पपीता का पर्ण कुंचन, तिल के फूलों का झकड़ा रोग और टमाटर का ऊतक क्षय।

6. **अन्य** – जिन पौधों में वानस्पतिक प्रसारण की विधियाँ अपनाई जाती हैं, उनमें प्रसारण-सामग्री द्वारा भी रोग फैलता है, जैसे- नींबू का ट्रीटीजा विषाणु, केला का मोजेक व गुच्छिल चूड, आलू में पूर्ण रोग व मोजेक, प्याज का एलोड्वारप, जो बीज नहीं बल्कि प्याज की गांठों द्वारा फैलता है।

7. **खरपतवार** – ये भी विषाणु रोग फैलाने में सहायक होते है।

रासायनिक उपायों द्वारा ही विषाणु रोग का नियंत्रण संभव नहीं है। इसी कारण इनके नियंत्रण हेतु निरोधक उपायों को अपनाना चाहिए।

फसलों के हानिकारक कीट

फसल के शत्रुओं में कीटों का प्रमुख स्थान है। वैसे कीटों की थोड़ी संख्या भी हानिकारक होती है। सभी हानिकारक कीट न तो समान स्थिति के होते है और न उनके द्वारा होने वाली हानि के ढंगों में ही समानता पाई जाती है। आर्थिक दृष्टि से हानिकारक कीट उदासीन, गौण तथा प्रमुख तीन प्रकार के होते हैं। उदासीन कीट परिस्थितिवश हानिकारक कीट बन सकते हैं।

गौण कीट वे हैं जिनके द्वारा फसल की हानि 5 प्रतिशत से कम होती है। जिन कीटों द्वारा 5 प्रतिशत या उससे अधिक हानि होती है उन्हें प्रमुख कीट कहते हैं। परंतु सफल कीट नियंत्रण के लिए केवल इतना ही जानना पर्याप्त नहीं है, बल्कि कीटों के स्वभाव, प्रजनन-विधि, सामान्य शरीर रचना आदि से भी परिचित होना चाहिए, जिसका संक्षिप्त विवरण यहां दिया जा रहा है।

कीट की पहचान – कीटों से मिलते-जुलते अन्य अनेक प्राणी होते हैं जिन्हें हम साधारण बोलचाल में कीट ही कहा करते हैं, परंतु शुद्ध कीट की कुछ विशेषताएं हैं, जैसे -

1. कीटों की तीन जोड़ी टांगें होती है जो वक्ष पर स्थित होती है।
2. कीट का शरीर 3 खंडों में विभक्त रहता है जैसे सिर, वक्ष तथा उदर।
3. यदि पंख मौजूद होते हैं तो उनकी संख्या दो जोड़ी होती है जो वक्ष पर स्थित होते हैं।

कीटों की शरीर रचना – कीट के सिर वाले भाग पर मुख व आंखे व श्रृंगिका (ऐन्टना) पाए जाते हैं। वक्ष पर पंख व टांगें स्थित होती हैं। उदर वाले भाग के दोनों पार्श्व में श्वसन-छिद्र तथा पीछे की ओर जननांग होते हैं। कीट के शरीर में रीढ़ व हड्डियाँ नहीं होती और उनकी त्वचा एक विशेष प्रकार के पदार्थ से बनी होती है जिसे काइटिन कहते हैं।

कीटों के शरीर की आंतरिक रचना साधारण परंतु पूर्ण होती है। सिर के अंदर मस्तिष्क स्थित होता है, उनके उदर के ऊपरी भाग में हृदय होता है। शरीर पीले हरे रंग के रक्त से भरा होता है। शरीर के दोनों पार्श्वों में श्वसन-छिद्र होते हैं, जिनके द्वारा कीट हवा से ऑक्सीजन प्राप्त करता है और श्वास-नलिकाओं द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में भेजता है। स्नायु प्रणाली के अंतर्गत मस्तिष्क, स्नायुग्रंथियां तथा स्नायु तंतु पाए जाते हैं जो शरीर के प्रत्येक अंग के संचार को नियंत्रित करते हैं। कीटों का पाचन तंत्र मुख से प्रारंभ होकर गुहा तक फैला होता है जिसमें आहार नलिका, मेदा, आँतें और पाचक रस-ग्रंथिया होती हैं।

कीटों में रूपांतरण -अधिकांश कीट अंडे होते हैं अथवा अंडज होते हैं। परंतु कुछ कीट अपने उदर से अंडे की बजाय सीधे शिशु उत्पन्न करते हैं जिन्हें जरायुज कहा जाता है। कभी-कभी कोई कीट अंडज व जारायुज दोनों होता है। अंडों के फूटने से शिशु (लार्वा या अर्भक) के रूप में निकलता है जो कई बार निर्मोक करने के बाद प्यूपा की अवस्था में प्रवेश कर जाता है जिससे प्रौढ़ निकलता है। परंतु कीटों की कुछ जातियों के अर्भक प्यूपा नहीं बनाते और कई निर्मोक के पश्चात् प्रौढ़ में बदल जाते हैं। इस प्रकार अंडे से प्रौढ़ बनने तक कीट के जीवन में जो परिवर्तन होते हैं उसे रूपांतरण कहते हैं।

रूपांतरण की दृष्टि से कीट निम्नलिखित प्रकार के होते है।

1) *रूपांतरण रहित कीट* – जैसे रजतमीन। इनमे अंडे से निकलने के बाद शिशु सभी प्रकार से प्रौढ़ के समान होता है। केवल आकार छोटा होता है।

2) *साधारण रूपांतरण वाले कीट* – इनके कीट-जीवन में अंडा अर्भक व प्रौढ़ की अवस्थाएं पाई जाती हैं। अर्भक स्वभाव, रंग, शरीर-रचना आदि में प्रौढ़ के समान होता है परंतु आकार में छोटा होता है और उसमें पंख तथा जननांग अविकसित होते हैं। अर्भक में अविकसित पंख बाह्य कलिका के रूप में पाए जाते हैं। अर्भक कई बार निर्मोक करने के बाद प्रौढ़ में परिवर्तित होता है। उसी परिवर्तन के साथ-साथ पंख कलिका भी बढ़ती जाती है जो प्रौढ़ में पूर्ण विकसित पंख में बदल जाती है। इन कीटों को बाह्य पंखी कीट भी कहा जाता है।

3) *पूर्ण रूपांतरण वाले कीट* – इन कीटों के जीवन में अंडा, लार्वा, प्यूपा व प्रौढ़ चार अवस्थाएं पाई जाती हैं। लार्वा अवस्था प्रौढ़ से रूप आकार, शरीर रचना व स्वभाव से बिल्कुल भिन्न होती है। लार्वा तेजी से खाता हुआ कई बार निर्मोक करने के पश्चात् प्यूपा अवस्था में परिवर्तित हो जाता है। कीट की प्रसुप्त अवस्था प्यूपा होती है जिसमें लार्वा बिना कुछ खाए प्रौढ़ अवस्था में परिवर्तित होने की क्रिया को पूर्ण करता है। प्रौढ़ के पंख व जननांग, प्यूपा के अंदर ही विकसित होते हैं। इसी कारण ऐसे कीटों को अंत:पंखी'' कीट भी कहते हैं।

कीटों का वर्गीकरण – आर्थिक दृष्टिकोण से बाह्य पंखी व पंखीय कीट अधिक महत्व के हैं। इन्हें बहुत से वर्गों में विभक्त किया जाता है। कृषि महत्व के कुछ वर्गों के उदाहरण इस प्रकार हैं।

साधारण रूपांतरण वाले या बहिर्पंखीय कीट

1. **आर्थोप्टेरा (टिड्डा वर्ग)** – टिड्डा, टिड्डी झींगुर आदि। अपूर्ण रूपांतरण प्रौढ़ के दो जोड़ी सीधे पंख, निम्फ, व प्रौढ़ हानिकारक अवस्थाएं हैं जिनके काटने चबाने वाले मुखांग होते हैं। लिंगीय प्रजनन होता है और मादाएं भूमि में अंडे देती हैं। पिछली जोड़ी टांगें बड़ी और मोटी होती हैं जो उछलने में सहायता करती हैं।

2. **आईसोप्टेरा (दीमक जाति)** – अपूर्ण रूपांतरण व लिंगीय प्रजनन होता है। अधिकांश कीट पंखहीन होते हैं परंतु पंखधारी कीटों में दोनों जोड़ी पंख समान प्रकार के होते हैं जो आसानी से गिर जाते हैं। पंखधारी कीटों के अतिरिक्त अन्य कीट सदैव प्रकाश से दूर रहते हैं। ये सामाजिक कीट हैं जिनमें बहुरूपता पाई जाती है जैसे राजा, रानी, सिपाही, कमेरे आदि। प्राय: भूमि में बॉबी बनाकर रहते है। प्रौढ़ व अर्भक हानिकारक अवस्थाएं हैं जिनके काटने-चबाने वाले मुखांग होते हैं।

3. **समपंखी (होमोप्टेरा)** – माहू, फुदका (जैसिड), आम की लस्सी, पाडरिला, गन्ने की श्वेत, मक्खी, चूर्णी मत्कुण (मिली बग) कॉक्सिड, नींबू

का सिल्ला, लाख कीट आदि। इनमें पंखदार या पंखहीन दोनो प्रकार के कीट हो सकते हैं जैसे माहू की कुछ अवस्थाएं कॉक्सिड व मिली बग की मादाएं पंखहीन होती हैं। यदि पंख होते है तो दोनों अगली जोड़ी पंख समान बनावट के होते हैं। इन कीटों में साधारण रूपांतरण होता है और निम्फ तथा प्रौढ़ दोनो हानिकारक अवस्था होती हैं। जिनके चूषक मुखांग होते हैं। (चूर्णी मत्कुण व कॉक्सिड के नर को छोड़कर)। इस वर्ग के कीटों में अनेक विशेषताएं पाई जाती हैं जिनका उल्लेख इस प्रकार है।

क) कुछ कीट अपने मुख से जहरीली लार निकालते हैं जैसे जैसिड, पाईरिला आदि।

ख) कुछ के द्वारा पौधों में विषाणु रोग फैलता है जैसे माहू, श्वेत मक्खी व जैसिड की कुछ जातियां।

ग) कुछ कीट मधुस्राव करते है जैसे माहू, चूर्णी मत्कुण, श्वेत मक्खी, आम की लस्सी आदि।

घ) कुछ कीटों के बदन में मोम ग्रंथियां पाई जाती हैं जैसे चूर्णी मत्कुण, काक्सिड व लाख आदि।

ड) कुछ कीटों में लिंगीय व अनिषेक दोनों प्रकार का प्रजनन होता है और वे अंडज व जरायुज दोनों होते हैं जैसे माहू। इस प्रकार इस वर्ग के कीट पौधों का रस चूसने के साथ ही साथ अपनी जहरीली लार व मधुस्राव द्वारा विषाणु रोग को फैलाकर पौधों को हानि पहुंचाते हैं।

4. समपंखी – धान के गंधी, कपास का लाल कीट, सरसों का बैग्राडा (सुंदर-झागा), कपास का डस्की बग, खटमल आदि साधारण रूपांतरण, प्रौढ़ व निम्फ, जिनके चूषक मुखांग होते हैं। अगली जोड़ी पंख का आधा भाग मोटा और शेष भाग झिल्लीदार होता है। बदन प्राय: रंगदार चपटा और दुर्गंधयुक्त होता है।

5. थाइसैनोप्टेरा (थ्रिप्स) – इनमें प्याज, लहसुन, मिर्ची, कपास, टमाटर, आलू आदि के थ्रिप्स प्रमुख हैं। ये सूक्ष्म मुलायम बदन वाले अत्यंत चुस्त कीट

हैं जो पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते हैं। इनके पंख लंबे पतले व कटावदार होते हैं। इनकी कुछ जातियों में निम्फ के बाद एक प्यूपा की अवस्था भी पाई जाती है।

पूर्ण रूपांतरण वाले या अंत:पंखी कीट

1. **कोलियोप्टेरा (भृंग जाति)** – इस वर्ग के कीट छोटे व बड़े विभिन्न प्रकार के होते हैं। प्रौढ़ सदैव पंखदार होता है जिसके बाहरी पंख चिकने व कठोर होते हैं, जो शरीर को एक आवरण की भांति ढके रहते हैं। इनमें लिंगीय प्रजनन होता है और मादा अंडज होती है। प्रौढ़ व लार्वा (ग्रेव) हानिकारक अवस्थाएं होती हैं जिनके काटने-बचाने वाले मुखांग होते हैं। कुल कीटों की संख्या का दो तिहाई कीट इसी वर्ग में पाया जाता है जिनमें हानिकारक व लाभदायक दोनों प्रकार के कीट सम्मिलित हैं। कद्दू का लाल कीट, गेहूँ का गुझिया, कपास की पत्तियों का गुझिया, धान के जड़ की सूंड़ी, धान का हिस्सा पिस्सूभृंग (फ्लीबीटल) (झाझा) विलिस्टर बीटल, वृक्षों के तनाछेदक, सिंघड़ा, बिटल, अनाजों के घुन, दालों का ढोरा, शकरकंद की गुझिया, कुरमुला आदि मुख्य हानिकारक कीट इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं।

2. **लिपिडीप्टेरा (शल्क कीट)** – इसके अंतर्गत पतंगे व तितलियां सम्मिलित हैं। इनके पंखों पर एक प्रकार का चूर्ण पाया जाता है। इस वर्ग के सभी कीटों में लिंगीय प्रजनन होता है और मादाएं अंडज होती हैं। कुछ कीटों को छोड़कर जैसे संतरे का रस चूषक पतिंगा, अन्य कीटों के प्रौढ़ (पतिंगा) हानिकारक नहीं होते हैं। हानि लार्वा द्वारा होती है जिनके काटने-चबाने वाले मुंखांग होते हैं।

   इस वर्ग के प्रमुख हानिकारक कीट हैं - नींबू की तितली, नींबू का पूर्ण सुरंगक (लीफ माइनर) आलू का पतिंगा, बैंगन का तना व फल छेदक, धान का तना छेदक, गन्ने का शिखा, चोटी, तना व जड़ बेधक, कपास का पत्ती लपेटक व गुलाबी कीट, मक्का का तना छेदक, पत्ती लपेटकर, कमला व बिहार-भुड़िली चने कटुवा व फली छेदक, अनाज का पतिंगा आदि। लार्वा

को सूंड़ी कहा जाता है जिनके तीन जोड़ी वक्षीय व पांच जोड़ी उदरीय टांगें होती हैं।

3. **हिम्नोप्टेरा (बर्र व ततैया प्रजाति)** – जैसे चींटा, चींटियां, आम का माटा, बर्र, ततैया मधुमक्खी आदि। इनके दोनों जोड़ी पंख झिल्लीदार होते हैं और अगली जोड़ी पंख पिछले पंखों की अपेक्षा आकार में बड़े होते हैं। शरीर के तीनों खंड स्पष्ट होते हैं। लैंगिक प्रजनन और रूपांतरण पाया जाता है। मादाएं अंडज होती हैं। अधिकांश कीट सामाजिक होते हैं। इस वर्ग के अधिकांश कीट लाभदायक हैं जो भक्षक या परजीवी के रूप में अन्य कीटों पर निर्वाह करते हैं। कुछ कीटों की मादा अपने अंडरोपकों द्वारा डंक भी मारती है जैसे बर्र, ततैया, मिट्टी की ततैया तथा मधुमक्खियाँ। इनके लार्वा प्राय: पदहीन मैगट होते हैं जिनके काटने-चबाने वाले मुखांग होते हैं। इस वर्ग के प्रमुख हानिकारक कीट हैं- सरसों की मक्खी और आम का माटा।

4. **डिप्टेरा (मक्षिकाएं)** जैसे घरेलू मक्खी, मच्छर, डॉस आदि ये मनुष्यों एवं पशुओं को और पल मक्खी व मक्का तथा ज्वार की शूट फ्लाई फसलों को हानि पहुंचाती हैं। इन कीटों के केवल एक जोड़ी झिल्लीदार पंख होते हैं और दूसरी जोड़ी पंख अविकसित होने के कारण केवल ठूठ के रूप में पाए जाते हैं। प्रौढ़ फसल को हानि नहीं पहुंचाते हैं। फल मक्खी व शूट फ्लाई का पदहीन लार्वा (मैगट) क्रमश: फलों व मक्का की शिखाओं में छेद करके खाता है।

5. **अष्टपदी** – अष्टपदी यद्यपि शुद्ध कीट नहीं हैं परंतु कीटों से मिलते-जुलते हैं और उन्हीं की भांति फसलों को हानि पहुंचाने के कारण महत्वपूर्ण हैं। प्रौढ़ अष्टपदी अत्यंत सूक्ष्म प्राय: बिंदु के आकार लगभग 1/80 इंच लंबे पंखहीन होते है। इनके चार जोड़ी टांगें होती हैं। इनका रंग हल्का लाल कत्थई य हल्का पीला होता है। ये प्राय: पत्तियों की निचली सतह पर और कभी-कभी दोनों सतहों पर बारीक जाला बुनकर उसके भीतर समूहों में रेंगते रहते हैं और उसी में अंडे देते हैं। अंडे से प्रारंभ में 3 जोड़ी पैरों वाला निम्फ निकलता है जो कई बार निर्मोक करने के पश्चात् अष्टपदीय प्रौढ़ में

परिवर्तित हो जाता है। अष्टपदी, पत्तियों का रस चूसते हैं जिससे पौधा कमजोर हो जाता है, पत्तियां रंगहीन हो जाती हैं और कभी-कभी मुड़ जाती हैं।

कीट तथा वातावरण

कीट और उसके वातावरण का अत्यन्त घनिष्ठ संबंध होता है। किसी स्थान पर उपलब्ध भोजन की मात्रा व किस्म, मौसम और अन्य प्राणियों की संख्या आदि मिलाकर कीटों का वातावरण बनाते हैं और कीटों के जीवन, वृद्धि प्रजनन और उनकी संख्या पर प्रभाव डालते हैं।

भोजन सामग्री – भोजन संबंधी आवश्यकताओं के अनुसार कीटों की तीन श्रेणियां होती हैं, प्राणिभक्षी, सर्वभक्षी और वनस्पति-भक्षी। वनस्पति-भक्षी कीट फसलों पर पनपते हैं। वे भी दो प्रकार के होते हैं- एक भक्षी और बहुभक्षी। एकभक्षी कीट केवल एक ही किस्म की फसल पर निर्वाह करते हैं जैसे बैंगन का शिखाछेदक, पातगोभी की तितली, कपास की गुलाबी सूंड़ी, मैंगोहॉपर आदि। बहुभक्षी कीटों में टिड्डियां, टिड्डे, सैनिक कीट, कमला कीट, बिहार भुड़ली कटुआ आदि प्रमुख हैं जो विभिन्न फसलों व खर-पतवारों को अपना आहार बनाते हैं।

भोजन की मात्रा व किस्म के अनुसार कीटों की संख्या बढ़ती-घटती रहती है। अच्छी फसल या अधिक वनस्पति उगने पर कीटों को अधिक मात्रा में भोजन सरलता से मिलने लगता है और उनकी संख्या तेजी से बढ़ जाती है। जब उनके भोजन का अभाव हो जाता है अथवा उनकी संख्या इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उपलब्ध भोजन उनके भरण-पोषण के लिए अपर्याप्त हो जाता है तो ऐसी परिस्थिति में बहुत से कीट मर जाते हैं, उनका प्रजनन रुक जाता है, अथवा वे अन्य स्थानों को चले जाते हैं जैसा कि टिड्डियों में होता है। साल में लगातार या विस्तृत क्षेत्र में एक ही किस्म की फसल उगाने से उन पर पनपने वाले कीटों के बढ़ने की अधिक संभावना रहती है।

मौसम – ताप, नमी, वर्षा, सूर्यप्रकाश, हवा की गति आदि भी कीट-जीवन

को पर्याप्त रूप से प्रभावित करते हैं। अन्य प्राणियों से विपरीत कीटों का रक्त ठंडा होता है जिसके कारण वे वायुमंडलीय ताप के उतार-चढ़ाव के प्रति अनुकूलन नहीं कर पाते हैं। इसी प्रकार ठंडक या गर्मी अधिक बढ़ने से उनकी अधिकांश संख्या नष्ट हो जाया करती है और बची-खुची शेष संख्या प्रसुप्तावस्था में समय व्यतीत करती है। कीटों के शरीर में 80-90% पानी का अंश पाया जाता है जिसे वे भोजन के माध्यम से अथवा वायुमंडल से नमी सोखकर ग्रहण करते हैं। बदन में पानी की मात्रा कम होने पर कीट की मृत्यु हो जाती है। शुष्क वातावरण में वे अपने शरीर में पानी का यह स्तर बनाए रखने में असमर्थ होते हैं। ऐसी परिस्थिति में वे अधिकतर मर जाते हैं और थोड़े से बचे-खुचे कीट प्रसुप्तावस्था में छिपे रहते हैं। ताप व नमी का प्रभाव अलग-अलग न होकर संयुक्त रूप से कीटों पर पड़ता है। सामान्यतया 10-14 से. का ताप, 60-90% की अपेक्षित नमी कीटों के लिए अनिष्टकारी नहीं है। इस क्रम में भी भिन्न-भिन्न प्रकार की कीटों के लिए, ताप व नमी संबंधी आवश्यकताएं अलग-अलग हुआ करती हैं। लेकिन निम्न ताप पर कम नमी और उच्च ताप पर उच्च नमी का होना सभी कीटों के लिए उपयुक्त है।

अन्य प्राणियों से संबंध – अधिकांश कीट एकाकी रूप में स्वतंत्र रूप से अपना जीवन व्यतीत करते है। टिड्डियों की संख्या बढ़ने से वे सामूहिक या दल का रूप धारण कर लेती हैं। कुछ कीट सामाजिक होते हैं और एक कुटुंब बना कर रहते हैं जैसे दीमक, चींटा, ततैया, मधुमक्खियां आदि। इनके कुटुंब में विभिन्न प्रकार के सदस्य पाए जाते हैं जो श्रम-विभाजन के आधार पर अपने कार्यों को करते हुए पारस्परिक सहयोग करते हैं। कुछ कीट दूसरे कीट या फफूंदी से सहयोग करके जीवन निर्वाह के अभ्यस्त होते हैं जैसे माहू व चींटा तथा दीमक व फफूंदी में सहयोग। लेकिन अधिकतर कीटों के शत्रु कीट होते हैं जो एक दूसरे को नष्ट किया करते हैं। इसके अतिरिक्त मेंढक, सांप, चिड़िया और कीट-रोगों द्वारा भी पर्याप्त संख्या में कीटों का विनाश हुआ करता है। शत्रु कीट दो प्रकार के होते हैं, भक्षक व परजीवी। भक्षक कीट दूसरे कीटों को खा जाते हैं। माहू का भक्षक लेडीवर्ड बीटल व सिरापेड फ्लाई, नींबू के कॉटनी कुशन का भक्षक रोडोलिया कार्डिनलिस, मच्छर के लार्वा का भक्षक ड्रैगन फ्लाई चीटों का भक्षक ऐन्टलायन आदि प्रमुख हैं। परजीवी कीट दूसरे कीटों, उनके

अंडों व लार्वा पर अपने अंडे रख देते हैं और इस प्रकार परजीवी का लार्वा पोषक कीट पर पनप कर उसे नष्ट कर देता है। ट्राइकोग्रामा माइन्यूटम व क्यूबन फ्लाई गन्ना वेधकों पर, अफेलाइनस माली, जली सोफिस पर बैकन गेलेकाई, आलू की सूंडी पर, एपीपाइराप्स, पायरिला पर, और एपेन्टलिस पातगोभी के तितली पर परजीवी होते हैं। कीट शत्रुओं के भी शत्रु होते हैं। कीट जगत का यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है जो अन्य कारणों के साथ-साथ कीटों की संख्या में संतुलन बनाए रखने में सहायक होता है।

खरपतवार

फसलों पर लगने वाले कीटों एवं रोगों के संबंध में बहुत कुछ जानकारी उपलब्ध है, किंतु खरपतवारों, उनसे होने वाली क्षति एवं खरपतवारनाशी के संबंध में पर्याप्त जानकारी किसानों को न होने से वे इनके नियंत्रण के लिए दुविधा में पड़ जाते हैं। वस्तु-स्थिति यह है कि कीटों व रोगों की तुलना में खरपतवारों से फसलों को अधिक हानि उठानी पड़ती है। हाथों से उखाड़कर या निराई-गुड़ाई से खरपतवारों को नष्ट करना आज की बढ़ती हुई मजदूरी की दरों को देखते हुए असंभव सा हो गया है।

सच कहा जाय तो सभ्यता के साथ जब से मनुष्य ने फसल उत्पादन प्रारंभ किया तब से उसके साथ अवांछनीय पौधों की समस्या रही है। फसलों के साथ-साथ अवांछनीय पौधे भी खेतों पर अपने आप उग आते हैं जो पैदावार पर प्रतिकूल असर डालते हैं। ज्यादातर अवांछनीय पौधे सीधे-सीधे मानव के उपयोग में नहीं आते हैं। वैसे कुछ अवांछनीय पौधे तो फसलों से अलग निकाल कर पशुओं को खिलाए जाते हैं। कुछेक अन्य आयुर्विज्ञान की दृष्टि से लाभप्रद पाए गए हैं। इस प्रकार मानव सभ्यता के प्रारंभ से ही खरपतवारों की समस्या रही है।

प्रकृति ने अनेक प्रकार की वनस्पतियों को भिन्न प्रकार की परिस्थितियों एवं जलवायु में पनपने एवं बढ़ने का अवसर दिया है। कृषि में मुख्य फसल के अलावा उसमें बढ़ने व उगने वाले अवांछनीय पौधों को खरपतवार की संज्ञा दी गई है। खरपतवारों का इतिहास कृषि के विकास से ही जुड़ा है। फसलों को

नुकसान पहुंचाने वाले कीट रोग, पशु-पक्षी तथा खरपतवार किसानों के लिए सफल खेती में बाधक बने हुए है। इन सब में खरपतवारों से कृषि को अपेक्षाकृत अधिक क्षति पहुंचती है। पहले कृषकों का ध्यान इनकी ओर कम जाता था क्योंकि कीट-व्याधियों से होने वाली हानि स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाती थी, जबकि खरपतवारों से होने वाली क्षति उनती स्पष्ट नहीं थी। अब किसान इस बात से भली भांति परिचित हो गया है कि अगर खरपतवार समय पर नष्ट नहीं किए गए तो फसलों की उपज में भारी नुकसान हो सकता है। टिकाऊ खेती के लिए व खाद्यान्न व अन्य फसलों की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए तथा प्रति इकाई क्षेत्र, समय एवं साधन से अधिक उत्पादन के लिए फसलों को होने वाले नुकसान से बचाना अति आवश्यक है। अत: कृषि उत्पादन में खरतपवारों का नियंत्रण एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। खरपतवारों द्वारा उत्पादन में कमी होने के साथ ही साथ उत्पादन व्यय में वृद्धि और अनाज की किस्म में गिरावट आ जाती है। अधिक अन्न उत्पादन के विभिन्न कार्यक्रमों के साथ-साथ खरपतवारों की भी समस्या बढ़ती जा रही है। अतएव उनके नियंत्रण के संबंध में जानकारी भी आवश्यक हो गई है।

खरपतवार ऐसे अवांछित पौधे होते हैं जो कृषि-योग्य क्षेत्रों में स्वत: उगा करते हैं, लगभग स्थायी होते है और तेजी से वृद्धि करते हैं। इनके कारण कृषि-व्यय में वृद्धि और उत्पादन में कमी हो जाती है।

खरपतपवारों के प्रकार

1. *एकवर्षीय*– एक ही मौसम में वानस्पतिक वृद्धि और बीज उत्पादन को पूरा करने वाले मौसमी खरपतवार जैसे बथुआ, सेंवई, लहसुआ, कृष्णनील आदि।
2. *द्विवर्षीय* – इनमें वानस्पतिक वृद्धि और बीजोत्पादन कार्य को पूरा करने में दो मौसम लगते हैं, जैसे जंगली, गोभी, जंगली गाजर, करमी साग आदि।
3. *बहुवर्षीय* – ऐसे खरपतवार दो मौसमों से अधिक जीवित रहते हैं। इनमें प्रजनन-बीज के अतिरिक्त भूमिगत तनों द्वारा अधिक होता है। उनका ऊपरी भाग वर्ष भर हरा रहता है अथवा किसी मौसम में सूख जाता है और दूसरे मौसम में पुन: हरा हो जाता है। बरू, मोथा कुस, कांस आदि इसके उदाहरण है।

सारणी 3.2 स्थिति के आधार पर खरपतवारों का वर्गीकरण

आधार	क्षेत्र/जलवायु		
	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
जीवन-चक्र	एक वर्षीय सांवा, मक्का, चौलाई, बथुआ, कृष्णनील	द्विवर्षीय जंगली गजार	बहुवर्षीय मोथा, हिरन-खुरी, कांस, वनचरी, झरबेरी
जलवायु	जलमग्न-जलकुंभी हाइड्रिला वेलिसिनेरिया	रेगिस्तान-जवांसा, करील वाइसुरी नागफनी, झखेरी बबूल	कृषि क्षेत्र सांवा, बथुवा मोथा, कृष्णनील जंगली चौलाई
सापेक्षता	निरपेक्ष मुख्य खरपतवार जो फसलों के लिए हमेशा हानिकारक होते हैं	सापेक्ष मुख्य फसल में अन्य फसलो के पौधे जैसे गेहूँ में जौ, चने में मटर	अवांछित खड़ी फसल में मुख्य जाति के साथ भिन्न जाति के पौधे

स्रोत: सुमन, बनवारी लाल एवं सुमन, मंजु (1992) खरपतवार नियंत्रण की आधुनिक विधियां, ग्रामशिल्प, अंक 1992

खरपतवारों द्वारा हानियाँ

खरपतवारों द्वारा फसलों को होने वाली हानियां इस प्रकार हैं-

1. भोजन, जल व सूर्य प्रकाश के लिए वे फसलों से प्रतिस्पर्धा करते हैं।
2. खरपतवारों को खेत व सिंचाई की नालियों से निकालने में खेती के व्यय में वृद्धि हो जाती है।
3. अनाजों में खरपतवारों के बीजों के मिलावट से अनाज का मूल्य घट जाता है।

4. बहुत से खरपतवार शत्रु/कीटों व फसलों के रोगों का प्रेषण करते हैं।
5. उर्वर भूमि को कृषि-अयोग्य बना देते हैं, जैसे कांस, कुस, लैन्टेना आदि।
6. कुछ प्रकार के खरपतवार अथवा उनके बीज, मनुष्यों व पशुओं के लिए विषैले होते हैं, जैसे धतूरा व भरभंडा का बीज।
7. खरपतवारों के कारण विभिन्न फसलों में उत्पादन का ह्रास होता है।

खाद्यान्नों, दलहनी, तिलहनी, नगदी, सब्जियों वाली, मसाले वाली तथा फलों वाली फसलों पर विभिन्न प्रकार के कीड़ों, रोगों तथा खरपतवारों का प्रकोप होता है। उन कारकों की पहचान, उनसे होने वाली क्षति का प्रकार एवं अनुमान तथा उनके निवारण की जानकारी होना बहुत आवश्यक है। बाजार में अनेक प्रकार की कीटनाशी, कवकनाशी तथा खरपतवारनाशी विभिन्न संरूपणों में उपलब्ध है जिनमें से उपयुक्त कीटनाशी, कवकनाशी या खरपतवारनाशी का तथा संरूपणों का प्रभावशीलता की दृष्टि से चुनाव करके उसका उपयुक्त समय पर उचित सांद्रता में पीड़क के प्रभावी नियंत्रण हेतु प्रयोग करने की जानकारी होना बहुत आवश्यक है। पीड़कों (कीट, रोग, खरपतवार) के नियंत्रण की विधियां जैसी कृषिगत, यांत्रिक, भौतिक, रासायनिक, जैविक तथा वैधानिक नियंत्रण के संबंध में जानकारी होनी चाहिए। पीड़कनाशी एवं उसके संरूपण के साथ-साथ उसको भुरकने या छिड़कने वाले उपयुक्त उपकरण का चुनाव प्रभावी पौध संरक्षण के लिए आवश्यक है। पीड़कनाशी का वांछित सांद्रता वाला घोल कैसे बनाया जाय तथा कीटनाशियों, कवकनाशियों तथा खरपतवारनाशी की एक दूसरे के साथ संगतता की जानकारी होना बहुत जरूरी है। पीड़कनाशियों के प्रयोग में सावधानियां तथा पौध संरक्षण के उपकरणों की देखभाल तथा उनमें खराबी हो जाने पर उनकी मरम्मत के संबंध में जानकारी होना आवश्यक है। कीट नियंत्रण की प्रचलित विधियों के अतिरिक्त कुछ आधुनिक उपायों को खोजा जाता है। इन सभी उपर्युक्त बातों की जानकारी किसानों, विस्तार कर्मचारियों तथा कृषि से जुड़े हुए व्यक्तियों को होनी चाहिए जिससे कीट, रोग एवं खरपतवारों का समन्वित प्रयोग कर लागत खर्च को कम करके समाकलित पीड़कों के नियंत्रण-तंत्र को अपनाकर फसलोत्पादन बढ़ाया जा सके।

खरपतवारों की प्रमुख विशेषताएं

1) सामान्य फसलें प्रतिकूल परिस्थितियों में अंकुरित नहीं हो पातीं जबकि खरपतवार प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अंकुरण की क्षमता रखते हैं। फलस्वरूप फसलों की पैदावार घट जाती है।

2) खरपतवारों के बीज विशेष आकार एवं आकृति के होते हैं और विभिन्न प्रकार के साधनों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंच जाते हैं जैसे कांटेदार बीज, (गोसुरी), कंटीली, रेशेदार बीज (आक/मदार) हल्के एवं चिकने बीज (चौलाई नूविया और चिलबिल) जो हवा में उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंच जाते हैं। गोल बीज (सत्यानाशी) जो लुढ़क कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंच जाते हैं।

3) ज्यादातर खरपतवार पशुओं के चारे के लिए अरुचिकर होते है इसीलिए पशु उन्हें नहीं खाते हैं जैसे ककरोंध, भांगरा, कंटीली, भटकटइया महकुआ। ये पौधे बढ़कर आसपास के क्षेत्रो में फैल जाते हैं।

4. खरपतवार के बीजों में वृद्धि तेजी से होती है। अधिकतर खरपतवार 60-90 दिन की अवधि में अपना जीवन-चक्र पूरा कर लेते हैं तथा फसली पौधो से पहले पक कर बीज उत्पादन करने लगते हैं। खरपतवारों की तेज वृद्धि के कारण मुख्य फसल की बढ़वार रुक जाती है।

5) खरपतवारों के बीजों में लगभग शत-प्रतिशत अंकुरण-क्षमता होती है तथा इनमें लंबे समय तक अंकुरण-क्षमता बनी रहती है। बथुआ तथा नूनियां के बीज 10 से 40 वर्ष तक अंकुरण की क्षमता रखते हैं। सत्यानशी के बीज 70 से 90 वर्ष तक अंकुरण की क्षमता रखते है।

6) खरपतवार के बीज छोटे आकार के होते हैं और इनकी संख्या भी अत्यधिक होती है। कभी-कभी एक पौधा लाखों में बीज पैदा करता है जैसे चौलाई, मकोप आदि। अधिकांश खरपतवार हजारों में बीज पैदा करते हैं।

7) बहुत से खरपतवार ऐसे हैं जो बीज उत्पादन रोक देने पर अपने भूमिगत तनों

तथा जड़ों से नए पौधे बनाकर तैयार कर देते हैं। ये जड़ें तथा तने जुताई-गुड़ाई में छोटे-छोटे टुकडों में कटकर इधर-उधर फैल जाते हैं तथा नया पौधा बनकर तैयार हो जाता है जैसे नरकुल, कांस, वरूल, मौथा तथा दूब घास।

सारणी 3.3 विभिन्न फसलों में फसल-खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रांतिक समय एवं खरपतवारों द्वारा उपज में कमी।

फसल	खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रांतिक समय (बुवाई बाद दिन)	उपज में कमी (प्रतिशत में)
क) खाद्यान्न फसलें		
धान (सीधी बुवाई)	15-45	47-86
धान (रोपाई)	20-40	15-38
मक्का	30-45	40-60
ज्वार	30-45	6-40
बाजरा	30-45	15-58
गेहूँ	30-45	26-38
ख) दलहनी फसलें		
अरहर	15-60	20-40
मूंग	15-30	30-50
उड़द	15-30	30-50
लोबिया	15-30	30-50
चना	30-60	15-25
मटर	30-45	20-30
मसूर	30-60	20-30

ग) तिलहनी फसलें		
सोयाबीन	15-45	40-60
मूंगफली	40-60	40-50
सूरजमुखी	30-45	33-50
अरंडी	30-60	30-34
कुसुम	15-45	35-60
तिल	15-45	17-41
सरसों	15-40	15-30
अलसी	20-40	30-40
घ) अन्य फसलें		
गन्ना	15-60	20-30
आलू	20-40	30-60
कपास	15-60	40-50
जूट	30-45	50-80

स्रोत: खेती, जनवरी, 1998

सारणी- 3.4 विभिन्न फसलों में पाये जाने वाले प्रमुख खरपतवार

फसल	प्रमुख खरपतवार
धान	सांवक (इकाइनोक्लोआ कोलोमन), कोंदो (एल्यूसिन इंडिका), कनकौआ (कौमेलिना बेन्धालेंन्सिस), जंगली जूट (कोरक्रोस एक्टैंगुलम), सफेद मुर्ग, मौथा (साइपेरस, प्रजाति) आदि।
बाजरा,ज्वार	दूबघास (झाइनोडान डेक्टीला), मकोय
मक्का	सांठी, हजारदाना, जंगली, जूट, कनकौआ आदि
खरीफ की दलहन फसले	महबुआ, हजारदाना, दुद्धी, सांवक, मौथा आदि

गेहूं	बथुआ, खरतूआ, हिरनखुरी, जंगली जई, गेहूं का मामा (फैलेरिस माइनर) आदि।
रबी तिलहन	प्याजी, जंगली मटर, जंगली गोभी, बथुआ, हिरनखुरी, खरतुआ आदि।
कपास	गोखरू, लटजीरा, भंगरा, बनरा, दूबधास, मौथा, सांवक आदि।
गन्ना	मकड़ा बंधास, लेहसुआ, अगेब आदि।

स्रोत: मिश्र, जे.एस (2004) खरीफ फसलों में खरपतवार नियंत्रण, खाद पत्रिका, जून 2004

सारणी- 3.5 विभिन्नि खरीफ फसलों में खरपतवारों द्वारा क्षति व फसल खरपतवार प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवस्था

फसल	उपज में क्षति (प्रतिशत)	क्रांति अवस्था (बुवाई के बाद दिन)
धान्य फसलें		
धान (सीधी बुवाई)	15-90	20-45
धान (पैडलिंग के बाद)	15-40	30-45
मक्का	40-60	15-45
ज्वार	15-40	15-45
बाजरा	15-60	30-45
दलहनी फसलें		
अरहर	20-40	15-60
उड़द	30-50	15-30
मूंग	25-50	15-30
तिलहनी फसलें		
मूंगफली	40-50	46-60

सूरजमुखी	30-50	30-45
तिल	15-40	15-45
सोयाबीन	40-60	20-45
व्यापारिक फसलें		
कपास	40-50	15-60
गन्ना	20-30	30-120
सब्जियां		
टमाटर	40-70	30-45
बैंगन	50-60	45-60
भिंडी	40-50	15-30
तोरी/घीया	50-60	40-60

स्रोत: मिश्र, जे.एस. (2004) खरीफ फसलों में खरपतवार नियंत्रण, खाद पत्रिका, जून, 2004

खरपतवारों के नियंत्रण की विधियां

खरपतवारों के नियंत्रण का मूल उद्देश्य फसल के प्रति उनकी प्रतिस्पर्धा को घटाकर उनके हानिकारक प्रभावों को कम करना होता है। किसी क्षेत्र से खरपतवारों को समूल नष्ट करना अथवा उसे खरपतवार-रहित करना कठिन और खर्चीला कार्य है। इसका मुख्य कारण यह है कि खरपतवार अत्यधिक संख्या में बीज उत्पन्न करते हैं जिनकी अंकुरण क्षमता बहुत दिनों तक बनी रहती है। सभी बीज एक साथ न उगकर मौसम भर क्रमशः उगा करते हैं।

फसल के प्रति खरपतवारों की प्रतिस्पर्धा को घटाने के लिए यह जानना आवश्यक है कि किस अवधि में फसलों को अधिक हानि करते हैं और कब उनका नियंत्रण आर्थिक दृष्टि से भी उपयोगी है। सामान्यतया सभी फसलें बोने से 20 से 40 दिनों तक खरपतवारों द्वारा अधिक प्रभावित होती हैं। इस अवधि

में खरपतवारों की रोकथाम न करने से फसल को क्षति पहुंचती है। धान, मक्का, सोयाबीन, ज्वार, कपास आदि फसलें खरपतवारों के लिए कम सहनशील है और प्रारंभ में उनकी अधिकता से इन फसलों को काफी हानि होती है। अधिकांश फसलों में बोआई से लेकर डेढ़ माह तक खरपतवार नियंत्रण की अधिक आवश्यकता होती है। उसके बाद फसल भली-भांति बढ़ जाती है और खरपतवारों को दबा देती है। खरपतवारों के नियंत्रण के लिए निम्नलिखित विधियों को अपनाया जा सकता है।

1. कृषि विधियों द्वारा नियंत्रण

इसके अंतर्गत ऐसे कार्य सम्मिलित हैं जो दैनिक कृषि-क्रियाओं द्वारा अपनाए जा सकते हैं जैसे- साफ बीज बोना, खेत की निराई व गुड़ाई, मेड़ों पर से खरपतवार निकालना, गहरी जुताई, गर्मियों की जुताई, फसल-चक्र, तेजी से बढ़ने वाली व घनी फसलों को बोना, वर्षा में हरी खाद देना, अधिक निराई-गुड़ाई चाहने वाली फसलों को बोना, पकने के पूर्व खरपतवारों को नष्ट करना आदि।

2. जैविक नियंत्रण

खरपतवारों को खाने वाले कीटों को पालना। यह विधि व्यावहारिक नहीं है।

3. रासायनिक नियंत्रण

इस विधि में उपर्युक्त साधनों द्वारा खरपतवारों का नियंत्रण किया जाता है। खरपतवारों की बढ़ती हुई समस्या, प्रचलित ढंग से निराई करने में मजदूरों की कमी, व्यय और उसमें लगने वाले समय की अधिकता को देखते हुए तृणनाशियों द्वारा खरपतवारों का नियंत्रण अधिक सस्ता, शीघ्र और सुविधाजनक प्रतीत होता है।

प्रयोग की अवस्थाएं

खरपतवारनाशकों का प्रयोग नीचे लिखे तीन प्रकार से किया जाता है:

क) पूर्व रोपण – फसल बोने के पूर्व खरपतवारनाशियों को खेती की मिट्टी में मिलाना, जैसे एप्टम, वरनॉम, ट्रेफलॉन, टी.सी.ए. आदि।

ख) पूर्व अंकुरण – बोने के पश्चात् परंतु उगने के पूर्व रसायनों का प्रयोग जैसे – सिमाजीन, एट्रॉजीन, टोक ई. 25, कोटारोन, टेनोरान जासो।

ग) पश्च अंकुरण – फसल व खरपतवार दोनों के उगने के पश्चात् खरपतवार नाशियों का प्रयोग जैसे 2, 4 डी., एम.सी.पी.ए.एम.पी.बी., एट्रॉजीन, पी.सी. पी. स्टैम एफ. 34, डलापान आदि।

अनुसंधान के बाद यह सिद्ध हो चुका है कि अगर निश्चित समय तक निम्नलिखित फसलों में खरपतवार न हों तो फसल को खरपतवारों से अधिक हानि नहीं होती।

क्रमांक	फसल का नाम	खरपतवार-रहित समय
1.	धान	बोआई तथा रोपाई के 10 दिन से 35 दिन तक
2.	गेहूँ	बोआई के 10 दिन बाद से 45 दिन तक
3.	मक्का	बोआई के 10 दिन बाद से 30 दिन तक
4.	मूंगफली	जमाव के 30 दिन तक
5.	गन्ना	जमाव के बाद तीसरे सप्ताह से 12 वें सप्ताह तक।
6.	आलू	जमाव के बाद से 20 दिन तक
7.	कपास (खुश्क)	जमाव के 15 दिन से 30 दिन तक
8.	कपास (वेट)	जमाव के बाद से 30 दिन से 60 दिन तक
9.	टमाटर	रोपाई के बाद से 30 दिन तक
10.	शकरकंद	जमाव के बाद 25 दिन तक
11.	तंबाकू	जमाव व रोपाई के बाद 30 से 40 दिन तक
12.	सेम	जमाव के बाद 30 दिन तक

अध्याय-4

पादप-सुरक्षा की विधियां

वर्तमान में पादप-सुरक्षा की विविध विधियां प्रचलन में हैं। पादप-सुरक्षा के लिए बहुआयामी विधियों को अपनाया जाना अधिक सुविधाजनक रहता है जिससे किसान उन्हें अपनी आवश्यकताओं और क्षमताओं तथा प्राकृतिक परिस्थितियों को देखते हुए अपना सकें। सामान्यतया इसके लिए कृषीय विधियां, भौतिक एवं यांत्रिक विधियां, जैविक विधियां तथा रासायनिक विधियां अपनाई जाती हैं। आजकल इनके अतिरिक्त नर बंध्यकरण तकनीक, पेरोमोन ऐंटीफीडेन्ट, आनुवंशिक बंध्यकरण की विधियां भी अपनाई जा रही हैं।

हानिप्रद कीटों का नियंत्रण इस बात पर निर्भर करता है कि हमें इन कीटों के विषय में कितना ज्ञान है, अर्थात् किन परिस्थितियों को उत्पन्न होने से रोक दिया जाय तो इन कीटों का नियंत्रण किया जा सकता है। ध्यान रहे, कि किसी भी हानिप्रद कीट के लिए कोई मानक तरीका नहीं होता है। प्रत्येक कीट को उस स्थान की दशाओं के अनुरूप नियंत्रित किया जाता है। अत: कीट-नियंत्रण के लिए यह आवश्यक है कि हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि कीट-नियंत्रण की कौन सी विधि कीट की किस अवस्था पर तथा किन परिस्थितियों में नियंत्रण कर पाती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि हमें कीटों की जीवन-चक्र का ज्ञान हो तथा यह भी ज्ञान हो कि कीट की कौन सी अवस्थाएं कमजोर होती हैं जिन पर आसानी से नियंत्रण किया जा सकता है। हानिकारक कीटों की जनसंख्या वृद्धि रोकने के लिए प्राकृतिक नियंत्रण के लिए निम्नलिखित उपाय हो सकते है:

i) प्रतिकूल वातावरणीय परिस्थितियां,

ii) समुचित भोजन की कमी,

iii) कीट वृद्धि के लिए स्थान की कमी,

iv) प्राकृतिक शत्रुओं द्वारा नियंत्रण।

कृषि के क्षेत्र में जैसे-जैसे प्रगति होती गई, कीटों द्वारा होने वाली क्षति के बारे में भी हमारा ज्ञान बढ़ता गया और उसी के अनुरूप क्रिया करके हानिकारक कीटों का जीवित रहना कठिन होता चला गया। कीट-नियंत्रण की इस क्रिया में कुछ कार्बनिक तथा अकार्बनिक कीटनाशी रासायनिक यौगिक काफी सफल सिद्ध हुए। इनमें से अनेक संश्लेषित कार्बनिक यौगिक हैं जैसे- क्लोरीनितड हाइड्रोकार्बन, कार्बामेट, ऑर्गेनो-फॉस्फेट तथा पाइरेथ्राइड आदि। इन कीट-रसायनों के लगातार उपयोग से कीटों के प्राकृतिक परजीवी तथा परभक्षी कीट भी समाप्त हो जाते हैं। परिणामस्वरूप हानिकारक कीट पुनः अधिक संख्या में प्रकट होने लगते हैं। अतः कीट नियंत्रण के लिए पारिस्थितिक कारकों को ध्यान में रखकर हानिकारक कीटों के जनसंख्या विस्फोट को रोकने के लिए एकीकृत कीट प्रबंधन की विधि अपनाई जाती है।

पादप-सुरक्षा की विभिन्न विधियों का विवरण इस प्रकार है-

I कृषीय विधियां

कृषीय विधियों के अंतर्गत ऐसी समस्त कृषि क्रियाएं सम्मिलित हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार अपनाकर फसल के विभिन्न शत्रुओं की संख्या और उनके द्वारा होने वाली हानियों में कमी की जा सकती है। उदाहरण के लिए गर्मियों की जुताई, गहरी जुताई, स्वच्छ कृषि, स्वस्थ बीज, वैज्ञानिक कृषि पद्धति आदि। ये क्रियाएं समुन्नत कृषि विधियों के आवश्यक अंग हैं, जिन्हें सरलता से प्रयोग में लाकर कीट, रोग, खरपतवार आदि का भी नियंत्रण किया जा सकता है। समुन्नत कृषि विधियाँ जहाँ एक ओर अधिक उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण हैं वहीं दूसरी ओर वे फसल सुरक्षा के लिए भी उपयोगी हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि उन्नत कृषि विधियां फसलों की कीटरोग सहन क्षमता को बढ़ाने में भी सहायक होती हैं। पादप सुरक्षा के दृष्टिकोण से कुछ कृषि क्रियाओं के महत्व का विवरण इस प्रकार है -

1. गहरी व गर्मियों की जुताई

जिन कीटों व रोगों की कुछ अवस्थाएं भूमि पर या उसके अंतर्गत व्यतीत होती हैं, उनकी रोकथाम के लिए गहरी अथवा गर्मियों की जुताई उपयोगी है। उदाहरण के लिए दीमक, कटुआ, सफेदलट, कुरमुला, सैनिक शलभ (आर्मीवर्म) अर्थात् चने की सूंड़ी, कद्दू का लाल कीट, फलमक्खी, आम का सफेद कीट व पत्ती लपेटक, बैंगन का शिखा छेदक, खरीफ का टिड्डा आदि के अंडे, लार्वा या प्यूपा जमीन के ऊपर या उसके अंदर पाए जाते हैं। जुताई से वे अधिक गहराई पर दब जाते हैं अथवा ऊपर आ जाते हैं और कड़ी धूप अथवा अपने शत्रुओं द्वारा नष्ट कर दिए जाते हैं। इसी प्रकार बहुत से रोगकारक जीवाणु कवक, सूत्रकृमि और खरपतवार भी नष्ट हो जाया करते हैं।

2. स्वच्छ कृषि

स्वच्छ कृषि का तात्पर्य है फसल काटने के बाद खेती से पिछली फसल के अवशेषों और खरपतवारों आदि को निकालना। बहुत से कीटों का जीवन-चक्र उनकी पोषक पसलों के बाद पिछली फसल की उन जड़ों, तनों, खरपतवारों आदि पर भी चला करता है जो खेतों में शेष रह जाते हैं। गन्ने का तना व जड़ वेधक, धान, मक्का व ज्वार का तना-छेदक (सूड़िया) सूखे तने में शीतनिष्क्रियता करती है। गन्ने का पायरिला फरवरी-मार्च में पुरानी फसल के कल्लों पर पनपता है। कपास, कद्दु, ककड़ी, बैंगन, सरसों आदि के अनेक कीट पौधों के अवशेषों पर पनपते रहते हैं। इसी प्रकार अरहर का उकठा, गेहूँ की पत्तियों का झुलसा, आलू का अगेता झुलसा, फसलों के अनेक कालवर्ण मृदु रोमिल आसिता (डाउनी मिलड्यु) व चूर्ण रोग आदि रोगी फसल के अवशेषों पर पनपते है। बहुत से कीट व रोग खरपतवारों पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। स्वच्छ कृषि द्वारा उन्हें नष्ट करके अगली फसल पर उनके प्रकोप को कम किया जा सकता है।

इस विधि में सभी घास, खरपतवार, अनावश्यक पौधे व पदार्थ खेतों से हटा दिए जाते हैं जिससे इनके बीच छिपे हानिकारक कीट खुले वातावरण में आ जाते हैं तथा शत्रुओं द्वारा नष्ट हो जाते हैं।

3. फसल-चक्र

पादप-सुरक्षा हेतु सजातीय फसलों को लगातार नहीं उगाना चाहिए। वैज्ञानिक सस्य-चक्र व सस्य-नियोजन को व्यवहार में लाकर किसी फसल विशेष पर पनपने वाले या स्थानीय कीटों, रोगों व खरपतवारों का नियंत्रण आसान हो जाता है।

अधिकतर कीट एकभोजी अर्थात् एक फसल पर निर्भर रहने वाले होते हैं। इसलिए एक ही फसल को लगातार बोने से इसके ऊपर निर्भर रहने वाले हानिकारक कीट भोजन और सुरक्षा मिलने के कारण लगातार संख्या में बढ़ते जाते हैं। यह इस पर भी निर्भर रहता है कि कीट द्वारा कितने अंडे दिए जाते है तथा इसकी वर्ष में कितनी पीढ़ियां होती हैं। अत: फसलों को बदल-बदल कर बोने से एक प्रकार के कीटों को भोजन व सुरक्षा दूसरी फसल पर नहीं मिल पाती है और वे नष्ट हो जाते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि दूसरी फसल इस प्रकार की बोई जाय कि उस पर पहली फसल के कीट जीवित न रह सकें। ऐसे कीट जो बहुभोजी हों और आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थार पर जा सकते हों, वे किसी भी नई बोई गई फसल पर हानिकारक कीट के रूप में प्रकट हो सकते है। इस अवस्था में फसल-चक्र भी निरर्थक हो जाता है इसलिए किसी भी क्षेत्र में यदि आलू के शलभ तथा सूत्रकृमि भयंकर क्षति करने लगें तो इनकी फसलों को तीन-चार वर्षों के लिए बोने का निषेध कर दिया जाता है। ऐसी अवस्था में कीट-नियंत्रण की केवल यही विधि कारगर रह जाती है। अत: फसल-चक्र इस प्रकार बनाया जाय कि कीटों के वैकल्पिक पोषद पौधे भी उपलब्ध न हो सकें।

ग्वार-गेहूँ-तोरिया, तथा गन्ना-मक्का-कपास के हानिकारक फसल-चक्र से बचना चाहिए। इसके विपरीत मक्का-सेंजी-गन्ना का अच्छा फसल-चक्र होता है। पेड़ी गन्ने पर सुगरकेन ब्लेक बग का अधिक आक्रमण होता है इसलिए इससे बचना चाहिए। खेतों के किनारे-किनारे इस प्रकार की फसल बोनी चाहिए जिसके हानिकारक कीट मुख्य फसल के समान ही हों जिसे फसल से पूर्व की काट लिया जाए और कीट नष्ट हो जाएं। इन्हें ट्रैप क्रॉप कहते हैं जैसे भिंडी या ओकरा कपास के खेतों के किनारे लगानी चाहिए जो कपास के जैसिड तथा चित्तकबरी सूंड़ी स्पॉटेड बॉलवर्म को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।

4. स्वस्थ व रोगरोधी बीजों का चुनाव

अनेक रोग जैसे कंडुआ, झुलसा, डाउनीमिलड्यू, जीवाणु झुलसा आदि रोग बीजों द्वारा फैला करते हैं। अत: सदैव रोगमुक्त प्रमाणित व रोगरोधी अथवा सहनशील किस्म का बीज बोना चाहिए और बोने के पूर्व उसे उपयुक्त प्रकार से उपचारित करना चाहिए।

कुछ कीट फसल के कटने से लेकर बोने तक बीजों के अंदर ही रहते हैं। कपास के बीजों के प्रयोग से पूर्व गोबर के साथ रगड़ते हैं फिर मिट्टी के साथ रगड़कर पानी में डालते हैं जो स्वस्थ बीज होते हैं वे पानी में बैठ जाते हैं तथा अस्वस्थ पानी पर तैरने लगते हैं। इसी प्रकार कपास की लाली सुंडी बीजों के अंदर रहती है। इसे बोरों में मिथाइल ब्रोमाइड, फॉस्फीन तथा कार्बन बाई सल्फाइड के धूमन द्वारा आसानी से नष्ट किया जा सकता है।

5. बोने एवं फसल काटने का समय

फसलों को उचित समय पर बोने से कुछ कीटों के आक्रमण को रोका जा सकता है। कीटों के आक्रमण से पूर्व ही यदि फसल को उचित समय पर काट लिया जाएं तो इनसे बचा जा सकता है। इसके लिए सिंचाई के समय, खादों के प्रयोग व हानिकारक कीट के जीवन-वृत्त का ज्ञान आवश्यक है जैसे कि यदि मक्का को 15 अगस्त के बाद बोया जाए तो इसके ऊपर मक्का वेधक का भयंकर आक्रमण नहीं होता है और दूसरे इस समय वेधक को इसके परजीवी नष्ट कर देते हैं। इसी प्रकार यदि धान तथा गेहूँ को समय से बो दिया जाए तो इन पर क्रमश: धान वेधक तथा हैसियन मक्खी का आक्रमण कम होता है। सरसों तथा तोरिया पर कुछ वर्षों के अंतराल पर सरसों के माहू का भारी प्रकोप होता है और फलियों में बीज नहीं बन पाते। इसके लिए शीघ्र पकने वाली या पहले बोए जाने वाली किस्म का प्रयोग सबसे अच्छा उपाय है।

बोने के समय में परिवर्तनों के प्रभाव भी कीटों व रोगों के विस्तार पर पड़ता है। कुछ का प्रकोप मौसम में फसल को जल्दी बोने से और दूसरों का देर में बोने से कम होता है। अतएव परिस्थिति के अनुसार बोआई का समय

निश्चित किया जा सकता है। देखा गया है कि जल्दी बोने से कद्दू के लालकीट, कपास के फुदका, सरसों के माहूँ, धान के गंधी व तना-छेदक का प्रकोप अपेक्षाकृत कम होता है। वास्तव में जल्दी बोआई उन्हीं दशाओं में उपयोगी है जिनमें कीट का प्रकोप मौसम के अंदर देर में होता है। ऐसी दशा में शीघ्र बोने से कीटों की संख्या बढ़ने तक फसल पूर्णतया स्थापित व सुदृढ़ हो जाती है। फसल जल्दी कट जाती है और कीट की अंतिम पीढ़ियां भोजन के अभाव में पर्याप्त संख्या में स्वयं नष्ट हो जाया करती हैं। देर में बोने से चने के उकठा, गेहूँ के गुझियां व तना सड़न रोग का प्रकोप कम होता है। अधिक गहरा बोने से बीजों का अंकुरण कम होता है तथा अंकुर अधिक मरते हैं। अधिक घनी फसल की कीट व रोग सहन क्षमता घट जाती है।

6. रोगी पौधों को नष्ट करना

खेत से रोगी पौधों को उखाड़कर नष्ट करने से उनके विस्तार की संभावना बहुत कम हो जाती है। आलू, टमाटर, भिंडी, पपीता, मूंग आदि के विषाणु और ज्वार, गेहूँ व जौ के कंडुआ रोगों में यह विधि सभी कृषकों द्वारा सुविधापूर्वक अपनाई जा सकती है।

7. सिंचाई का नियंत्रण

जब खेतों में सिंचाई द्वारा पानी दिया जाता है तो भूमि में स्थित बहुत से कीट पानी में डूब जाते हैं। जो कुछ बाहर निकल आते हैं उन्हें इनके प्राकृतिक शत्रु समाप्त कर देते हैं जैसे गेहूँ और गन्ने की फसल की सिंचाई द्वारा दीमक से बचाया जा सकता है।

8. प्रतिरोधी किस्मों को बोना

फसलों की कुछ किस्मों पर दूसरों की अपेक्षा एक निश्चित हानिकारक कीट का आक्रमण कम होता है क्योंकि इनमें प्राकृतिक रूप से कुछ प्रतिरोधी गुण होते हैं जैसे- देशी कपास पर जैसिड, सफेद मक्खी तथा बॉलवर्म का आक्रमण अमेरिकन कपास से कम होता है। गन्ने की देशी काठा किस्म जिसका छिलका कठोर तथा अंदर गूदे में भी रेशे कठोर हों उस पर गन्ना वेधक का आक्रमण कम

होता है इसके विपरीत कोयम्बटूर की गन्ने की कोमल किस्मों CO- 312, COL.9, COJ 64 पर अधिक आक्रमण होता है। अंगोला वेधक का आक्रमण कठोर मध्य सिरा (मिडरिब) तथा पत्तियों पर अधिक दूरी तक घिरे गन्नों पर कम होता है। पायरिला तथा सफेद मक्खी से बचने के लिए कोयम्बटूर 285 तथा कोयम्बटूर 385 बोनी चाहिए। कोयम्बटूर COJ 453 पर रेड रॉट रोग हो जाता है। पौधों की विशेष जाति का प्रतिरोधी होना एक पैतृक गुण है। देश के अनेक विश्वविद्यालयों एवं कृषि अनुसंधान संस्थानों में प्रतिरोधी जातियों पर अनुसंधान कार्य चल रहा है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में ज्वार की 4000 जातियों में से 36 जातियां वेधक तथा मक्खियों के लिए प्रतिरोधी पाई गई हैं। इसी प्रकार मटर की 364 में से 3 जातियां प्रतिरोधी देखी गई हैं।

9. खाद एवं उर्वरकों का उचित प्रयोग

अच्छे और स्वस्थ पौधे कमजोर और कुपोषित पौधों की अपेक्षा कीटों का आक्रमण आसानी से और लंबे समय तक सहन कर सकते हैं। पौधों की वृद्धि को खादों द्वारा बढ़ाया जा सकता है, जैसे यदि भूमि की आवश्यकतानुसार एनपीके उर्वरक डाला जाए तो फसल अच्छी मिलेगी। नाइट्रोजनयुक्त खादों एवं समुचित सिंचाई के कारण कपास पर सफेद मक्खी का आक्रमण घटाया जा सकता है परंतु किसी दूसरे स्थान पर, जहां सफेद मक्खी का आक्रमण उतना भयंकर न हो, नाइट्रोजन युक्त खाद देने से कपास पर जैसिडों की संख्या बढ़ जाती है। गन्ने की पैदावार अप्रैल-मई में अमोनियम सल्फेट के प्रयोग द्वारा बढ़ाई जाती है। इसी प्रकार यदि खाद की उचित मात्रा प्रयोग की जाए तो कुछ जल्दी बोई गई कद्दू, खीरा, लौकी, तोरई (कुकुरबिट्स) आदि पर कद्दू के लाल कीड़ों। का आक्रमण कम होता है।

II भौतिक एवं यांत्रिक विधियां

भौतिक एवं यांत्रिक विधियों के अंतर्गत कीटों को हाथों से पकड़कर मारना, चूहों के लिए चूहेदानी का प्रयोग, प्रकाश, प्रपंच, चिपचिपे लेप या सूर्यताप के प्रयोग सम्मिलित हैं। यद्यपि इनका प्रयोग सीमित है, तथापि ये विधियां उपयोगी है।

इन विधियों द्वारा तुरंत परिणाम प्राप्त होते हैं इसीलिए किसानों में यह विधि काफी रोचक और लोकप्रिय है। इस विधि की कुछ कमियां भी हैं, जैसे इसमें समय अधिक लगता है, कठिन परिश्रम करना पड़ता है और इसका प्रयोग तब प्रारंभ होता है जब कीट अपनी संहारक अवस्था में पहुंच कर पहले ही काफी नुकसान पहुंचा चुका होता है। यह नियंत्रण की प्रत्यक्ष विधि है। यदि किसानों को इन विधियों का उचित प्रशिक्षण दिया जाए और संकल्प दृढ़ हो तो कीटों पर आसानी से नियंत्रण हो सकता है।

(अ) भौतिक उपाय

इन उपायों के अंतर्गत भौतिक साधनों, जैसे ताप, बिजली, ध्वनि तथा नमी को प्रयोग में लाया जाता है।

1. ताप का प्रयोग – प्राय: यह देखा गया है कि गांवों में किसान अनाज को घरों में भंडारित करने से पूर्व सुखा लेते हैं। इससे नमी कम हो जाती है और कीट प्रकोप भी कम हो जाता है। अनाज भंडारण में ताप का काफी महत्व है।

   i) **अति तापन** – कभी-कभी बीजों के अंदर कीट रहते हैं, जैसे कपास के बीज से लाल सुंडी। इन बीजों को इन्क्यूबेटर में रखकर 52 डिग्री से.ग्रे. पर 5 मिनट तक गरम किया जाता है जिससे बीज के अंदर के कीट तो मर जाते हैं, परंतु बीज पर इसका कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है। गोदामों के अंदर भी बिजली या कोयले की अंगीठी के द्वारा गरम करने से उनके अंदर की नमी निकाली जाती है, और इससे कीटों का नियंत्रण होता है। आजकल हीटिंग पाइप लगाए जाते हैं। यदि खाली गोदाम को 50 डिग्री से.ग्रे. पर 10-12 घंटे के लिए गरम कर दिया जाए तो शीत-निष्क्रियता करते हुए सभी कीट और उनकी विभिन्न अवस्थाएं मर जाती हैं।

   ii) **कम ताप का प्रयोग** – कम ताप पर कीट या तो सुप्तावस्था में रहता है या निष्क्रिय हो जाता है। रेफ्रीजरेटर में 5-10 डिग्री से.ग्रे. पर सभी सब्जियां तथा शुष्क मेवे ठीक रहते हैं और कीटों का प्रकोप नहीं हो पाता

है। इसीलिए बड़े पैमाने पर शीतग्रह का उपयोग अन्न, आलू, प्याज आदि वस्तुओं के भंडारण के लिए किया जाता है जहां ताप 4 से. कम डिग्री फा. तथा आपेक्षिक आर्द्रता 80-85 डिग्री रखी जाती है।

2) **नमी-खाद्य** पदार्थों की नमी घटने और बढ़ने से कीटों की जीवन व्यवस्था गड़बड़ा जाती है। अनाजों की नमी सुखाकर यदि 8-10% कम कर की दी जाए तो कीट आक्रमण नहीं होता। नम स्थानों में कीट अधिक वृद्धि करते हैं।

3) **बिजली व प्रकाश का प्रयोग** – आजकल बिजली से कीटों का दो प्रकार से नियंत्रण किया जाता है (i) प्रत्यक्ष नियंत्रण (i) परोक्ष नियंत्रण।

   i) **प्रत्यक्ष नियंत्रण** – कीट प्रभावित वस्तुओं और अनाज को बिजली की गामा किरणों में रखने से कीट मर जाते हैं। लाल सधन रोम वाली सुंडी तथा बेर बीटल को बिजली के बल्ब या पैट्रोमैक्स के प्रकाश प्रपंच द्वारा मिट्टी के तेल के बर्तन में कीटों को एकत्रित कर मार दिया जाता है।

   ii) विकिरणन

   बांझ नर विधि – इस प्रकार की तकनीक का प्रयोग अभी तक विदेशों में ही होता रहा है। इसके अनुसार जब कीट ऐक्स रे तथा गामा किरणों में रखे जाते हैं तो वे बांझ हो जाते हैं। कीटों को अधिक संख्या में प्रयोगशाला में पाला जाता है फिर उन पर यंत्र द्वारा गामा किरणें डाली जाती हैं, जो कोबाल्ट के बल्ब से निकलती हैं। इनकी क्षमता 2500ρ होती है जबकि मादा को बांझ बनने के लिए 5000ρ क्षमता की किरणें डालनी पड़ती हैं। गामा किरणें कीटों के शरीर में उनके प्रजननांगों को निष्क्रिय करके उन्हें बांझ बना देती है। ऐसे बांझ नर कीट जब बड़ी संख्या में प्रकृति में छोड़े जाते हैं तो वे मादाओं से संभोग तो करते हैं, परंतु उनके अंडों से बच्चे नहीं बनते और कीट की संपूर्ण पीढ़ी नष्ट हो जाती है। इस विधि को बांझ नर विधि कहते हैं। अमेरिका के एक कीट विज्ञानी निपलिंग ने 1937 ई. में इस विधि का सर्वप्रथम प्रयोग

किया बाद में 1955 से कैरीबियन द्वीप के एक टापू पर पालतू पशुओं के इसी परजीवी कीट स्क्रू वर्म फ्लाई कैलीट्रोगा होमीनिवोरक्स की पूरी पीढ़ी नष्ट करके कीट-नियंत्रण का सबसे अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया।

आजकल हमारे देश में भी इस विधि का प्रयोग मक्खी, मच्छर, खटमल आदि के नियंत्रण के लिए किया जाता है। इससे मनुष्य तथा पालतू पशुओं को भयंकर रोगों से बचाने के प्रयास किए जाते हैं।

रसायन बंध्यकरण – यह विधि भी उपर्युक्त के समान ही बांझ बनाने की होती है परंतु इसमें गामा किरणों के स्थान पर बंध्यकारी रसायनों का प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा आलू की सूंडी, फल मक्खी, भूमध्यसागरीय फलमक्खी को सफलतापूर्वक नियंत्रित किया गया है। कुछ बंध्यकारी रसायन टेपा, मोटापा तथा हेम्पा आदि है।

विकिरण के लिए आवश्यक दशाएं

विकिरण के लिए आवश्यक दशाएं इस प्रकार हैं –

i) कीट का प्रयोगशाला में सुविधापूर्वक पालन-पोषण हो।

ii) प्रकृति में कीट की संख्या को रसायन और दूसरी नियंत्रण-विधियों द्वारा भी नष्ट करना चाहिए।

iii) जिन नरों पर गामा किरणें डाली जाएं उनके स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं आना चाहिए, अन्यथा मादा उनसे संभोग नहीं करतीं।

iv) जो बांझ नर प्रकृति में छोड़े जाते हैं वे फसल नाशक या हानिकारक अवस्था में न हों।

v) जिस स्थान पर नियंत्रण किया जाए वहां बाहर से और कीट न आ सकें, इसी कारण यह विधि टापुओं पर अधिक सफल होती है।

4. **ध्वनि** – इस विधि में कीटों की मैथुन ध्वनि को रिकार्ड करके उसे बजाया जाता है। इसके फल स्वरूप नर व मादाओं को बड़ी संख्या में पकड़ कर मार दिया जाता है। यद्यपि इस विधि का प्रयोग ज्यादा सफल नही हुआ है फिर भी मच्छरों आदि को उच्चीकृत तरंगों पर आकर्षित कर मारने के प्रयोग किए जा रहे हैं।

ब) यांत्रिक विधियां

इस विधि के द्वारा कीटों को सीधे हाथ से पकड़ कर, छोटे-छोटे उपकरणों व कीट पकड़ने वाली मशीनों द्वारा नष्ट किया जाता है, जैसे-

1) **हाथो द्वारा कीटों को एकत्रित करना** – यह कीट-नियंत्रण की सबसे प्राचीन विधि है। यदि कीट आसानी से पकड़े जा सकते हों, आकार में बड़े हों तथा संख्या में अधिक हो तो यह विधि काफी सफल रहती है। यह विधि नींबू, संतरे की तितली तथा उसके अंडों, सरसों की आरा मक्खी के ग्रब तथा ऐपीलाकना जाति की सभी अवस्थाओं के लिए उपयोगी है। इस विधि के द्वारा प्रौढ़ कीट, लारवा, निम्फ तथा अंडों को पकड़ कर गरम पानी के साथ मिट्टी के तेल मिले मिश्रण में डालते जाते हैं।

2) **हाथ के जाल, थैले या टोकरियों द्वारा कीट पकड़ना** – यह विधि पायरिला को पकड़ने के लिए विशेष रूप से प्रयोग में लाई जाती है। फील्ड बैग या नेट एक मजबूत कपड़े का बना होता है जिसकी लंबाई 2 मीटर तथा जाल के मुख का व्यास 1 या 1.5 मीटर होता है। इससे दो रस्सियां जुड़ी होती हैं। दो मनुष्य इन रस्सियों को पकड़ कर खेत से होते हुए खींचते है। इसके द्वारा सरसों, धान, घास तथा अन्य प्रकार के टिड्डे क्रिकेट आदि कीट आसानी से पकड़े जा सकते हैं। इन जालों के साथ छोटी या बड़ी लकड़ी का हत्था सहायता के लिए लगा सकते हैं।

3) **झाड़ू तथा जाल से भरना** – मक्खी, फ्लाई-फ्लेपर्स तथा टिड्डियों आदि को झाड़े या कांटेदार झाड़ियों से आसानी से खेतों में मारा जा सकता है। नारियल के राइनोसिरोस बीटल को बिलो में से लोहे के तार के बने कांटे या हुक से पकड़ कर मारा जा सकता है। इसी प्रकार छोटे-छोटे पेड़ों या

झाड़ियों को सुबह के समय झकझोर कर जब कीट निश्चेष्ट हों गर्म पानी या मिट्टी के तेल में डाल कर या झाड़ू से पीट कर मारा जा सकता है। गोदामों के कीटों को छलनी से छानकर पृथक् किया जा सकता है।

4. **यांत्रिक रोकथाम** – इस प्रकार के नियंत्रण में कीटों को फसल या अपने भोजन के पास पहुंचने से निम्न प्रकार से रोका जा सकता है:

I) **बाड़ लगाना** – खेतों में ऊंची और आड़ी दीवारें बांध दी जाती हैं या किनारों पर गहरे गड्ढे खोद दिए जाते हैं जिनमें पानी भर दिया जाता है ताकि विशेष प्रकार के केटरपिलर एक खेत से दूसरे खेत में न जा सके, जैसे लोकस्ट, हॉपर्स तथा लाल बालों वाले केटरपिलर को इस प्रकार रोका जा सकता है।

II) **पट्टी बांधना** – पेड़-पौधों पर कोई चिपकने वाली वस्तु जैसे ओस्टीको या एल्केथीन की पट्टियां तने पर किसी कपड़े पर लगाकर लपेट दी जाती हैं ताकि केटरपिलर, पंखहीन निम्फ और प्रौढ़ तने पर होकर उपर न बढ़ सकें। उदाहरण के लिए यह विधि आम के फूंगा के लिए प्रयोग में लाई जाती है।

III) **फलों को लपेटना** – छोटी खेती में फलों के चारों ओर पोलीथीन या कपड़ा लपेट देने से मादा कीट उन पर अंडे नहीं दे पाती है जैसे अनार, नींबू आदि में प्रत्येक फल के चारों ओर बटर पेपर लपेट दिया जाता है जिससे अनार की तितली तथा फल चूषक शलभ का आक्रमण नहीं होता है। इसी प्रकार कौवे के आक्रमण से बचने के लिए भुट्टे के चारों ओर उसके पास की पत्तीं लपेट देते हैं।

5. **यांत्रिक प्रपंच** – कीटों को मारने या पकड़ने के लिए अनेक प्रकार के प्रपंच लगाए जाते हैं, जैसे –

i) **क्रिकेट प्रपंच** – यह गहरा बेलनाकर बर्तन होता है जिसमें प्रलोभक के रूप में ऐल्कोहॉल रखा जाता है। इससे क्रिकेट आसानी से पकड़े जा सकते हैं।

ii) **मक्खी प्रपंच** – यह एक जाली का बना बक्सा होता है जिसमें एक ओर मक्खियों के प्रवेश के लिए खुला स्थान होता है।

iii) **प्रकाश प्रपंच** – इस विधि में प्रकाश का प्रयोग किया जाता है। साधारण तौर पर एक पेट्रोमैक्स लालटेन को एक टब में रखते हैं जिसमें थोड़ा पानी होता है। उस पर मिट्टी का तेल या कोई अन्य कीटनाशी रेजिन डाल दिया जाता है। जब यह प्रकाश प्रपंच खेतों में रखा जाता है तो रात में निकलने वाले नर व मादा कीट प्रकाश की ओर आकर्षित होते हैं और टब में गिर कर मर जाते हैं, जैसे लाल बालों वाला केटरपिलर तथा बेर बीटल इस विधि द्वारा मारे जाते है।

दूसरे प्रकार के प्रकाश प्रपंच में एक बल्ब या लैंप होता है जिसके ऊपर की ओर टीन का ढक्कन और कांच के बीच कीटों को अंदर जाने के लिए रास्ता होता है। इसके नीचे बर्तन में पानी तथा मिट्टी का तेल भरा रहता है जिसमें आकर कीट मर जाते हैं।

iv) **चिपचिपे प्रपंच** – खेत की मेड़ों के पास बोरे या कपड़ों के ऊपर कोई चिपचिपी वस्तु जैसे शीरा, गुड़ या किसी अन्य कीटनाशी दवाओं के साथ चिपका देते हैं। इन्हें मेड़ के पास पेड़ों आदि पर लटका देते हैं। इससे एफिड, जैसिड आदि उड़कर इनमें चिपक जाते हैं। इस प्रकार प्रपंचों में कीटों को आकर्षित करने के लिए कुछ प्रलोभक भी लगा दिए जाते हैं।

अन्य प्रकार के प्रपंच जैसे माथट्रैप्स, हॉपर कैचर, एफीडोजर्स तथा फ्लाई ट्रैप्स आदि विशेष प्रकार के कीटों को पकड़ने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।

(स) जैविक विधियां

जैविक विधियों के अंतर्गत हानिकारक जीवों की रोकथाम व उनके प्रभाव को कम करने अथवा नष्ट करने के लिए इनके प्राकृतिक शत्रुओं का उपयोग करना सम्मिलित है। इस विधि में प्रकृति में पाए जाने वाले ऐसे सभी छोटे-बड़े जीवों को, जो हानिकारक जीवों के प्राकृतिक दुश्मन हैं, खोजकर, पहचानकर,

एकत्रित कर तथा उनकी संख्या में वृद्धि करके हानिकारक जीवों के विरुद्ध इस्तेमाल किया जाता है। हानिकारक जीवों की संख्या कम करने के लिए शिकारी/भक्षक, परजीवी, प्रतिस्पर्धी/विरोधी, रोगजनक जीवाणु, कवक, विषाणु, प्रोटोजोआ, सूत्रकृमि आदि का इस्तेमाल किया जाता है।

जब कभी हानिकारक जीवों के परजीवी, भक्षक व विरोधी जीव नष्ट या संख्या में कम हो जाते हैं तब यह जीव महामारी का रूप ले लेता है। विश्व भर में हानिकारक जीवों की अनेक जातियां व प्रजातियां मिलती हैं जो स्वयं प्रकृति द्वारा संतुलित रहती हैं। यह संतुलन रखने वाला कारक भौतिक अवयव कहलाता है। जब कभी मनुष्यों द्वारा ये भौतिक अवयव असंतुलित हो जाते है तब प्रकृति में हानिकारक जीवों का संतुलन बिगड़ जाता है और ये भयंकर रूप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार प्रकृति हानिकारक जीवों के नियंत्रण में 50 प्रतिशत से अधिक योगदान देती है। प्राकृतिक संतुलन विशेष रूप से रासायनिक जीवनाशियों के अविवेकपूर्ण इस्तेमाल से विकृत हुआ है। जैविक जीवनाशी ही इसका एक मुख्य विकल्प है जो अवशेष-रहित खाद्य-उत्पाद और स्वच्छ व सुरक्षित पर्यावरण प्रदान करता है।

विश्वभर में जैविक नियंत्रण के अनेक उदाहरण मिलते हैं। अब तक लगभग 120 हानिकारक जीवों को विश्व के 65 देशों में जैविक विधि से नियंत्रित किया जा चुका है। जैविक नियंत्रण का सबसे बड़ा लाभ यह है कि एक बार कोई परजीवी या परभक्षी किसी क्षेत्र में स्थापित हो जाए तो आने वाले वर्षों में यह स्वयं फलता-फूलता रहता है और इनकी संख्या वृद्धि पर कोई लागत भी नहीं आती। इसके अतिरिक्त यह विधि सुरक्षित भी होती है। इसका केवल एक ही दुष्परिणाम हो सकता है कि परभक्षी कीट ही कहीं पीड़क न बन जाए।

जैविक नियंत्रण की मुख्य विधियां

i) बाहर या विदेश से लाए हुए परजीवी या कीटभक्षियों द्वारा नियंत्रण।

ii) पहले से स्थापित या आयोजित जातियों का संरक्षण करके नियंत्रण करना।

iii) परजीवियों/परभक्षियों को आवश्यकतानुसार समय-समय पर कृत्रिम विधि से

प्रयोगशालाओं में बड़ी संख्या में पैदा कर पालना और इसके बाद उनको कीट-नियंत्रण के लिए क्षेत्र में मुक्त करना।

किसी आदर्श प्राकृतिक शत्रु का प्रमुख लक्षण यह है कि वह आसानी से कृत्रिम या किसी वैकल्पिक पोषद पर बड़ी संख्या में पैदा किया जा सकता है तथा उसकी वातावरणीय आवश्यकताएं उसके द्वारा नियंत्रित किए जाने वाले कीट के समान ही हों, जिससे कि वह आसानी से उसके ऊपर निर्भर रह सके। बढ़ते ज्ञान तथा उपलब्ध आधुनिक तकनीकों के आधार पर किसी भी क्षेत्र में आवश्यकतानुसार परजीवी, कीटभक्षी या पैथोजन या सम्मिलित रूप से हानिकारक सभी कीटों की संख्या कम कर सकते हैं। सामान्यतया कीटभक्षी किसी कीट की एक ही जाति की अधिक संख्या पर निर्भर न रहकर अनेक जातियों के कीटों पर निर्भर रहने वाले बहुभोजी होते हैं। एक जाति पर निर्भर रहने वाले कीटभक्षी प्राय: उस जाति की संख्या पर निर्भर रहते हैं। जबकि बहुभक्षी संख्या पर निर्भर नहीं रहते और अनेक प्रकार के कीटों को खाते हैं इसलिए ये आसानी से नियंत्रित नहीं होते। कीटभक्षी तथा कीट के बीच का सामंजस्य इतना प्रमुख नहीं होता जितना कि परजीवी व उसके पोषद के बीच होता है, क्योंकि कीटभक्षी पोषद से कार्यिकी के आधार पर बहुत निकटता से जुड़े नहीं होते जबकि परजीवी जुड़े होते हैं।

परभक्षी कीटों की प्रमुख विशेषताएं

परभक्षी कीटों की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं –

1) भोजन की गुणवत्ता के लिए विशेष पोषक कीट अधिक संख्या में उपलब्ध होने चाहिए। यदि ऐसा नहीं होगा तो वह अन्य कीटों पर भोजन के लिए आश्रित हो जाएगा। इससे वास्तविक कीट बच जाएगा।

2) कीटभक्षी की जनन-क्षमता अधिक होनी चाहिए तथा जीवन-चक्र छोटा होना चाहिए जिससे पोषक के जीवन से कम से कम समय में इसकी अधिक संख्या उपलब्ध हो जाए।

3) कीटभक्षियों की मृत्युदर कम होनी चाहिए ताकि वे प्रतिकूल वातावरण में भी लंबे समय तक जीवित रह सकें।

4) इन कीटों में अपने पोषक कीटों को शीघ्र खोजने की क्षमता होनी चाहिए, यहां तक कि जब प्रतिकूल वातावरण में पोषक कीट की संख्या कम हो जाए तब भी वे उन्हें खोज लें।

5) कीटभक्षियों का रखरखाव ठीक प्रकार से होना चाहिए। उनके जीवन-चक्र की पूर्ण जानकारी तथा इनके अधिकतम संख्या में मिलने के समय की जानकारी होनी चाहिए।

6) कीटभक्षी की भूख तथा पाचन के संबंध में पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

7) शिकार की सुरक्षा।

8) अन्य कीटभक्षी की प्रतिस्पर्धा का ज्ञान आवश्यक है।

9) परभक्षी कीट की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि भक्षण करने वाले तथा पोषक कीटों की संख्या कितनी है?

परजीवियों एवं परभक्षियों का चुनाव, रख-रखाव तथा मोचन

यदि किसी क्षेत्र में हानिकारक जीव का कोई प्राकृतिक शत्रु न हो तो ऐसे समय में स्थान पूर्ति के लिए बाहर से एक सक्षम प्राकृतिक शत्रु की किसी जाति का मोचन किया जा सकता है। जैविक नियंत्रण की इस क्रिया के लिए निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए।

1. सर्वप्रथम यह पता होना चाहिए कि प्रयोग किए जाने वाले प्राकृतिक शत्रु कीटभक्षी है भी अथवा नहीं। यदि वे कीट भक्षी न हों तो उनके प्रयोग का कोई लाभ नहीं होगा।

2. पीड़क की उत्पत्ति तथा वितरण का भौगोलिक ज्ञान होना चाहिए जिससे कि उसके पैतृक स्थान पर उपयुक्त प्राकृतिक शत्रुओं की पहचान हो सके क्योंकि पीड़क की उत्पत्ति के स्थान से लाए गए परभक्षी, देशी परभक्षी की अपेक्षा अधिक सफल होते हैं।

3. कीटविज्ञानी को पीड़क के रहन-सहन, स्वभाव, व्यवहार, जीवन-चक्र एवं उसके विकास की विभिन्न अवस्थाओं तथा विकास की इन अवस्थाओं के शत्रुओं का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। हानिकारक कीट के विषय में यह सब जानकारी पूरे एक मौसम तक एकत्रित करनी चाहिए जिसमें उसके जीवन-चक्र की सभी अवस्थाओं का पूरा ज्ञान को सके।

4. प्राकृतिक शत्रुओं को गंतव्य देश या स्थल के लिए जीवित अवस्था में अधिक से अधिक संख्या में भेजना चाहिए। गंतव्य देश या स्थल में इनके शत्रु पीड़कों की संख्या कम होनी चाहिए।

5. नियंत्रित किए जाने वाले कीट के पोषक पौधे, वैकल्पिक पौधे तथा उनका वर्गीकृत ज्ञान उपजाति तक होना चाहिए।

6. कीट जल्दी नष्ट हो जाते हैं इसलिए उन्हें अनुकूल वातावरण में कम से कम समय में भेज देना चाहिए। जिस डिब्बे में इन्हें भेजा जाए वह छोटा, हल्का, मजबूत व हवादार हो और उसके ऊपर परजीवी का नाम (वर्गीकरण सहित, उनकी संख्या, पोषक जंतु तथा पोषद पौधे एकत्रित करने का स्थान, दिनांक तथा अन्य कोई आवश्यक सूचना जो इसके पालने में सहायक हो, लिखी जानी चाहिए।

7. गंतव्य स्थान पर पहुंचने के बाद इसे संगरोध में रख कर इसकी जैविकी का अध्ययन किया जाता है। अध्ययन होने से पूर्व किसी भी अवस्था में इनका प्रौढ़ बाहर नहीं जाना चाहिए क्योंकि यदि वह हानिकारक हुआ तो फिर इसके फैलाव को रोक पाना संभव नहीं होगा।

8. जब यह सुनिश्चित हो जाए कि यह कीट उपयोगी है, इसके ऊपर कोई परात्परजीवी नहीं है तथा जंतुओं एवं फसलों की क्षति पहुंचाने के लिए स्वयं पीड़क नहीं बनेगा, तब इसे अधिक संख्या में प्रयोगशाला में तैयार किया जाना चाहिए।

9. परजीवियों को काफी संख्या में तैयार करने के बाद यह देख लेना चाहिए कि यह पीड़क किस अवस्था के लिए घातक है। ये उसी के अनुरूप उसी

मौसम में कम क्षेत्र में छोड़े जाते हैं। परजीवी या परभक्षी गर्मी, सर्दी, खुश्की की अधिकता या पोषद द्वारा स्वीकार न किए जाने में या उसे अच्छा पोषद मिल जाने या वैकल्पिक पोषद न मिलने के कारण ही स्थापित नहीं हो पाता है।

प्राकृतिक शत्रु के लक्षण

प्राकृतिक शत्रुओं के लक्षण इस प्रकार हैं -

1) पोषक जीवों को खोजने में सक्षम हों।

2) किसी जीव-विशेष पर ही पोषण के लिए आश्रित हों।

3) तीव्र प्रजनन शक्तिवाले हो।

4) उनका जीवन-चक्र अल्प हो ताकि कम समय में उन्हें ज्यादा पैदा किया जा सके।

5) वातावरण सहने में सक्षम हों।

6) उनमें पोषक जीवों की भांति वितरण क्षमता हो।

7) जीव विषयों के विरुद्ध सहने की शक्ति हो।

8) उच्च पराश्रयी न हों।

जैविक जीवनाशियों का वर्गीकरण

जैविक जीवनाशी के अंतर्गत निम्नलिखित प्राकृतिक कारक सम्मिलित हैं-

1) शिकारी रीढ़दार जीव

2) कीटभक्षी और परजीवी जीव

3) सूक्ष्म-जीव, जैसे

क) फफूंद

ख) शुक्राणु

ग) विषाणु

घ) सूत्रकृमि

ङ) प्रोटोजोआ

4. वनस्पति उत्पाद

शिकारी रीढ़दार जीव

शिकारी रीढ़दार जीव के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के रीढ़दार और स्तनधारी जीव सम्मिलित हैं, जो कीटों को पकड़कर तुरंत खा लेते हैं और इस प्रकार से हानिप्रद कीटों की संख्या को सीमित रखते हैं। इन जीवों में मछलियाँ, मेढ़क, सर्प, कछुआ, गोह, छिपकली, पक्षी (कौआ, मैना, गौरेया, बगुला, चील, मयूर गिद्ध, उल्लू, कोयल, तीतर, बटेर आदि) चूहे, नेवला, चमगादड़, छछूंदर आदि मुख्य हैं। ये जीव प्रकृति में स्वयंमेव कीटों की रोकथाम करते रहते हैं। परंतु इनका जैविक नियंत्रण के रूप में प्रयोग बहुत कम हुआ है। हाल ही में धान के खेतों से चूहों का नियंत्रण करने का प्रयोग थाइलैंड में अविषैले सांपों के इस्तेमाल से किया गया, और इससे आशातीत सफलता मिली है।

कीटभक्षी एवं परजीवी जीव

कीट भक्षी वह होता है जो दूसरे कीटों को पकड़कर खा जाता है और इस तरह हानिप्रद कीटों की संख्या को नियंत्रित रखता है। ये मुख्यत: हाइमेनोप्टेरा (बर्र, चींटी), हेमीप्टेरा (मत्कुण या बग) और कोलियोप्टेरा (भृंग या बीटल) गण के कीट होते है। कॉक्सीनेलीड, माहू, गंधी मत्कूण और लीफ हापर्स आदि का भक्षण करता है वहीं मैंटिस, क्रोसोपा और सिरफीड अन्य कीटों का शिकार करते हैं। परजीवी कीट अपना संपूर्ण अथवा अपने जीवन का कुछ भाग दूसरे कीटों पर बिताता है और इस तरह पोषक कीट धीरे-धीरे मर जाता है। अत: ये परजीवी कीट भी कीटों की संख्या को सीमित रखने में ज्यादा सहायक होते हैं। ट्राइकोग्रामा

और एपेनटेलीस परजीवी कपास की बीजकोष सुंडी की रोकथाम में बहुत ज्यादा मदद करते हैं। कुछ ऐसे परजीवी एवं भक्षी कीटों के नाम (**सारणी 4.1**) में दिए जा रहे हैं जो भारत के विभिन्न राज्यों में सफल हैं।

किसान स्वयं अपने फार्म पर इन परभक्षी/परजीवी कीटों की संख्या में वृद्धि करके इनका खेतों में इस्तेमाल कर सकता है। ट्राइकोग्रामा के करीब 100,000 शिशु और ब्राकन के 10,000-20,000 प्रौढ़ प्रति हेक्टेयर की दर से इस्तेमाल किए जाते हैं।

कुछ परजीवी फसलों को हानि पहुंचाने वाले खरपतवारों से भी उनकी रक्षा करते हैं। इनमें प्लैटीप्टीलिया पूसिलिडैक्टीला और टेलियोनेमिया स्क्रुपुलोसा लैन्टाना को, न्योचीटिनीया बुच्ची जलकुंभी और पानी फर्न को तथा जाइगोग्रामा ब्लेकोलोराटा कांग्रेस को नष्ट करने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

सूक्ष्मजीवों का जैविक जीवनाशी के रूप में उपयोग

क) कवक का इस्तेमाल

यह जैविक जीवनाशी का सबसे बड़ा समूह है जो विरोधी एवं परजीवी कवकों को कृत्रिम रूप से प्रयोग करके हानिप्रद जीवों की संख्या को नियंत्रित करता है। फाइकोमाइसीट, एस्कोमाइसीट, बैसिडीयामाइसीट और फंजाई इम्परफेक्टाइ वर्ग के विभिन्न कवकों का जैविक जीवनाशी के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। फफूंद द्वारा निर्मित कीटनाशी, रोगनाशी, खरपतवारनाशी और सूत्रकृमिनाशी का विवरण सारणी 4.2,4.3,4.4,4.5 में दिया गया है।

प्रतिरोधी कवक का उपयोग कवकजनित मृदा बीज, फल और पर्णीय रोगों के निवारण में किया जाता है। कुछ प्रतिरोधी कवकों का इस्तेमाल रासायनिक जीवनाशी के साथ मिलाकर भी होता है जिससे एक से ज्यादा बीमारियों की रोकथाम होती है। बीजजनित रोगों का उपचार बीजोपचार द्वारा किया जाता है जिसमें कवक के बीजाणुओं को पानी में मिलाकर या चूर्ण बनाकर 4-5 ग्राम/किलो बीज की दर से कवकनाशी से उपचार किया जाता है। रासायनिक जीवनाशी जैसे कार्बेन्डाजीम और ऑक्सीकार्बोजीन और प्रतिरोधी कवक ट्राइकोरमा

और ग्लीयोंक्लेडीयम एक दूसरे के अवरोधक हैं। इनका इस्तेमाल बीजोपचार के लिए इस्तेमाल किया जाता है। बीज को पहले कवक के बीजाणु से और बाद में रसायन से उपचारित किया जाता है।

ख) शकाणु

कीटों और फसल रोगों के निवारण में शकाणु जीवनाशी की एक अहम् भूमिका है। यह विभिन्न समुदाय के कीटों और फफूंद शकाणुजनित रोगों का आसानी से नियंत्रण करता है। बैसीलस थूरीजिएंसिस एक लोकप्रिय कीटनाशी और रोगनाशी शकाणु है जिसने पूरे संसार में तहलका सा मचा दिया है। इस शकाणु का व्यावसायिक उत्पाद, सभी जैविक जीवनाशियों से बहुत ज्यादा है और रासायनिक जीवनाशियों की तुलना में इसकी खपत 2-3 प्रतिशत और अमेरिका में करीब 55 प्रतिशत है। हानिप्रद कीटों और रोगों के नियंत्रण में इन नाशियों का प्रयोग सारणी 4.6 एवं 4.7 में दिया गया है। इस शकाणु जीवनाशी के करीब 400 व्यावसायिक नाम विश्व में पंजीकृत हो चुके हैं।

ग) विषाणु का इस्तेमाल

जैविक नियंत्रण में विषाणु का इस्तेमाल 1953 से शुरू हुआ था। इस कुल में सात वर्ग होते हैं जिनका उपयोग हानिप्रद कीटों के नियंत्रण में ज्यादातर किया जाता है। ये सात वर्ग-बकुलोबिरीडी, रीयोविरीडी, इरीडिओविरीडी, पौक्सविरीडी, पार्मोविरीडी, पिकोनोविरीडी और राब्डोविरीडी है। इन विषाणुओं का इस्तेमाल जिन कीटों के विरुद्ध किया जाता है उन्हें **सारणी 4.8** में दिया गया है।

घ) सूत्रकृमि

सूत्रकृमि, कीटों पर वाह्य एवं आंतरिक रूप से परजीवी है। हालांकि सूत्रकृमि जैविक नियंत्रण में एक प्रमुख अभिकर्ता है। फिर भी इसे ज्यादा व्यावसायिक दर्जा नहीं मिल पाया है। राब्टाइलीस, पैनग्रोलेम्ल और नेयोएप्लेडीराना जाति के सूत्रकृमियों का इस्तेमाल मक्का का तना वेधक, चने का फली वेधक, धान का तना-वेधक और नींबू की फल मक्खी आदि कीटों की रोकथाम में किया जाता है।

ङ) प्रोटोजोआ

प्रोटोजोआ की बहुत सी जातियां कीटों के परात्परजीवी के रूप में जीवन-निर्वाह करती हैं। मगर ये पोषक कीटों को ज्यादा समय में धीरे-धीरे नष्ट करते हैं। इसी परेशानी के चलते इन पर ज्यादा काम नहीं किया जाता है। फिर भी पेरेजीया पाइरोस्टाइ नामक प्रोटोजोआ अमेरिका में मक्का के तना वेधक कीट के विरुद्ध उपयोगी सिद्ध हुआ है।

4. वनस्पति उत्पाद का इस्तेमाल

भारतवर्ष में वनस्पतियों का इस्तेमाल प्राचीन काल से ही विभिन्न प्रकार की व्याधियों, जैसे घाव-फोड़े, दर्द, सूजन, कीट-निवारण और भंडार में अन्न, फल-फूलों के रख-रखाव के लिए किया जाता था। इन वनस्पतियों में नीम के पत्ते, तंबाकू के तने व पत्ते, क्राइसैन्थीमम के फूल, लहसुन व प्याज के रस और सरसों और अंडी का तेल मुख्य था। वनस्पति के किसी भाग, अर्थात जड़, तना, पत्ता, छाल, फल, फूल और बीज, को इस्तेमाल करके हानिप्रद जीवों की रोकथाम की जाती है। इन भागों में रासायनिक तत्व होते हैं जो कीट, रोग और खरपतवार आदि का नियंत्रण करते हैं। इसे वनस्पति जीवनाशी या जैविक जीवनाशी भी कहते हैं जो फसलों, स्तनधारियों, अनाज, मिट्टी, पानी और पर्यावरण के लिए पूर्ण सुरक्षित होता है। वनस्पतियों के इस्तेमाल से हानिप्रद जीवों के रोकथाम का विवरण **सारणी-12** में दिया गया है।

पर्यावरणीय जैविक जीवनाशी से लाभ

जैविक जीवनाशी से होने वाले लाभ इस प्रकार है:

1. पर्यावरण की दृष्टि से हितैषी, पारिस्थितिकीय दृष्टि से सक्षम, जैविक विकृति की दृष्टि से सरल है, और कहीं कोई अवशेष नहीं छोड़ता है।

2. लक्ष्य-विशेष को छोड़कर इसके इस्तेमाल से अन्य जीवों को कोई खतरा नहीं होता है।

3. दूसरे प्राकृतिक जीवों के साथ मिलजुल कर काम करता है।

4. हानिप्रद जीवों में प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न नहीं होने देता।

5. इसका उपयोग बार-बार नहीं करना पड़ता।

6. मूल्य अनधिक होता है यानी लागत कम।

7. गौण जीवों का पुनरुत्थान नहीं होता या महामारी का रूप नहीं ले पाता।

8. कटाई में कोई समय-सीमा या अंतराल नहीं होता। किसी भी वक्त फसल काटकर उत्पाद का इस्तेमाल किया जा सकता है।

9. उत्पाद में गुणवत्ता, खाने-पीने में रुचिकर तथा अच्छी कमाई।

10. उत्पाद निर्यात करने में कोई बाधा नहीं।

11. ग्रामीण किसानों के लिए कोई खतरा नहीं।

प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण एवं संवर्धन तथा प्रबंधन के उपाय

प्राकृतिक शत्रुओं के संरक्षण का तात्पर्य उनके नष्ट करने के लिए किए जा रहे उपायों को बंद करना तथा संवर्धन का अर्थ, उन उपायों को प्रयोग में लाया जाना है जिनसे इनका जीवन काल, जनन-क्षमता तथा इनके उपयोग के लिए आकर्षण बढ़े। इसके लिए निम्नलिखित प्रबंधन उपाय किए जाने चाहिए।

1. प्राकृतिक शत्रु की निष्क्रिय अवस्थाओं जैसे लार्वा तथा प्यूपा को संरक्षित रखा जाए। ये जैविक या अजैविक कारकों द्वारा नष्ट न हों।

2. परंपरागत विधियों, जैसे जोतना, सूखी घास के ढेर तथा खरपतवार आदि को जलाना प्राकृतिक शत्रुओं की सुरक्षा के लिए नुकसान देय हो सकता है।

3. प्रकृति की विविधता को बनाए रखना चाहिए। इससे प्राकृतिक शत्रुओं में अधिक स्थिरता आती है। इससे जंतुओं को वैकल्पिक भोजन के स्रोत मिलते रहते हैं और लंबी सर्दियों के समय में छिपने के लिए स्थान मिल जाता है।

प्रकृति में जितनी अधिक विविधता होगी प्राकृतिक शत्रु उतने ही अधिक सफल होंगे। इसके लिए मिश्रित फसल तथा अंत: सस्यन (इंटरक्रॉपिंग) विधि सफल रहती है।

4. परजीव्याभ तथा परभक्षी कीट के लिए उसका ऐच्छिक भोजन तथा रहने के लिए उचित स्थान मिले तो इनकी संख्या में वृद्धि होती है।

5. प्राकृतिक शत्रुओं के प्रतिरोध के कारण मधुस्राव करने वाले कीटों जैसे स्केल्स, मीली बग तथा एफिड को मधुस्राव खाने वाली चीटियां समाप्त नहीं कर पातीं। इसलिए चीटियों के शत्रुओं को रोकना चाहिए।

6. सभी प्रकार के कीटनाशी प्राकृतिक शत्रुओं को समाप्त कर देते हैं, जैसा कि बिडालिया बीटल जो कि कॉटनी कुशन स्केल के नियंत्रण के लिए प्रयोग में लाया जाता था, डी.डी.टी. के अधिक प्रयोग के कारण समाप्त हो गया परंतु कॉटनी कुशन स्केल बचे रहे और अगणित संख्या में कैलीफोर्नियों में फैल गए। बाद में संतुलित छिड़काव से विडालिया बीटल पुन: स्थापित हो गया। इसी प्रकार पूर्व में पादपभोजी अनेक माइट कीटनाशियों के असंतुलित प्रयोग से समाप्त हो गए हैं।

परभक्षी की प्रतिरोधी किस्मों को प्रयोग में लाना चाहिए, कीटनाशियों का वरणात्मक प्रयोग करना चाहिए, तथा उपुर्यक्त अन्य उपायों से प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या संतुलित रखी जा सकती है।

सारणी- 4.1 परजीवी/भक्षक कीट तथा इनके पोषक कीट

परजीवी/भक्षक कीट	हानिप्रद कीट एवं उनकी अवस्था		
	हिंदी नाम	वैज्ञानिक नाम	परिणाम
एजोट	गन्ने की सफेद मक्खी	ऐल्यूरोलोब्स बैरोडेन्सीस (शंकु)	अच्छा
ब्रमुस	पाइरिला	पाइरिला परपुसिला (अंडा)	अच्छा
इपीपपाइरोप्स	पाइरिला	पाइरिलापरपुसिला (शिशु)	बहुत अच्छा
ट्राइकोग्रामा	ज्वार/गन्ना अंगोला वेधक	ट्राइपोरीजा नीवेला (अंडा)	वही
स्पेनटेलिस	,,	,, (सूंडी)	,,
क्राइसोपा	कपास की बीज कोष सूंडी (धब्बेदार व लाल)	ऐरीयाज जाति (अंडाशिशु)	,,
ट्राइकोग्रामा	,,	पेक्टीनोफोरा गैसी वेऐला (अंडा)	,,
लैरोफागस	चावल का घुन	सीटोफिलस ओराइजी (ग्रव)	अच्छा
ट्राइकोग्रामा	चने की सूंडी	हेलीकोवस्पा आर्मिजरा (अंडा)	,,
एक्जाक्रोड	सरसों की आरा मक्खी	स्थालिया प्रोजीमा (सूंडी)	,,
पीपन्कुलस	आम का फड़का	एक्रीटोड्स अतकिन्सोनी (शिशु)	,,
एपीपाइरोप्स			
ड्रीनस	,,	,, ,, (प्रौढ़)	,,
ब्राकन	आलू की सूंडी	ग्नौरीमौसचीमा अपरकुलेला (सूंडी)	बहुत अच्छा
सिरेसीया			
माक्रोब्राकन			
ट्राइकोग्रामा	मक्का का तना-बेधक	काइलो पार्टीलस	,,
ब्राकन		(अंडा)	

स्रोत: पेस्टोलॉजी XXII (8): 59 (1998)

सारणी- 4.2 : रोगजनक कवक विकसित कीटनाशी/सूत्रकृमिनाशी

रोगजनित कवक	कीटों का नियंत्रण	व्यावसायिक नाम	देश
इन्टोमोप्थोरा जाति	मिली बग, माहू बरुथी	–	अमेरिका

इम्पूता जाति	घरेलू मक्खी, मच्छर	–	अमेरिका
पर्टीसिलीयम लेकानी	स्केल कीट व माहू	वरटोलक	इंग्लैंड
नोमूरिया रिलेयाइ	लैपिडोप्टेरा समूह के कीट	–	अमेरिका
बेउभेरिया ब्रासियाना	आलू भृंग, कॉफी फल वेधक, कोडलिंग मौथ	बोमरीन	रूस
मेटाहारजीयम एनीस्पोलीयाइ	स्पीटल बग	मेटाक्वीनी	ब्राजील
हरिसूटेला थोम्पसोनी	नींबू रस्ट माइट	माइकर	अमेरिका
असोहरसोनिया एल्पेरोडीस	नींबू के स्केल कीट	–	रूस
मेटाहारजीयम क्लेभर्डी	टिड्डा, पंतगे	–	अमेरिका
पेइसीलोमाइसीस लीलासीनस	सूत्रकृमि	बाइकन	फिलीपीन्स

स्रोत: पेस्टोलॉजी XXII (8) : 59 (1998)

सारणी - 4.3 कवकनाशी और रासायनिक जीवनाशी से उपचारित बीजजनित रोगों का निवारण

फसल रोग	रोगजनक कवक	प्रतिरोधी कवक	रासायनिक जीव-नाशी एवं मात्रा
मूंगफली का कॉलर सड़न	स्किलीरोसीयम रौल्फसाइ	ट्राइकोडरमा हरजीयानम	कार्बेन्डाजीम 50 डब्ल्यू पी (0.15%)
सोयाबीन का शुष्क जड़ गलन	राइजोक्टोनिया बटाटीकोला	ट्रा.हरजीयानम	,,
सोयाबीन का कॉलर सड़न	स्केलीरोसीयम रौल्फसाइ		,, ,,
चना का उकठा (जटिल)	रा.वटाटीकोला स्कि.रौल्फसाइ	ट्रा.हरजीयानम ट्रा. वीरीडी	,, ,,

स्रोत: पेस्टोलॉजी XXII (8) : 60 (1998)

सारणी- 4.4 विरोधी कवक के इस्तेमाल से मृदाजनित रोगों की रोकथाम

विरोधी कवक	फसल	फसल रोग	रोगजनक कवक	व्यावसायिक नाम
ट्रा. वीरीडी	कपास, तंबाकू	जड़ गलन एवं आर्द्र गलन	रा. सोलानाई	डरमा पैक, एकोफीट
	चाय, काफी		पीथियम एफैनीडरमेटम	वायोक्योर एफ
ट्रा.डरजीयानम	दलहन, तिलहन	कॉलर, शुष्क	स्किली.रौफ्साई	ट्राइकोसन ऐन्टागन
ट्रा. पोलीस्पोरम ट्रा. डरमेटम	कपास, गन्ना	जड़ सड़न तथा जटिल उकठा	रा.बटाटीकोला फ्यूजेरीयम ऑक्सीस्पोरम	वायोडरमा
ग्लियोक्लैडीयम जाति	तंबाकू सूरजमुखी, दलहन और प्याज	आर्द्र गलन, जड़ गलन कॉलर/जड़ गलन, आर्द्र गलन	पीथियम एफैनीडरमेटम रा.वटाटीकोला पी.एफैनीडरमेटम स्किली.रौल्फसाइ	–
पेनीसीलियम साइक्लोपीयम	आलू	झुलसा	फाइटोपयोरा इन्फेस्टेन्स	–
ट्रा.जाति	फल, खुंभी, चेस्टनट ओक देवदार	फल गलन शुष्क बंबल सिल्भरपत्ता अंत:गलन	ब्रोट्राइटीस जाति पर्टीसीलियम जाति कोन्ड्रास्टेरीयम परपुरियाऔर हेल्मेन्थोसपोरीयम अनोसम	वायोडरमा एकोकीट – ऐन्टागन ट्राइकोक्रीट

स्रोत: पेस्टोलॉजी XXII (8) : 60-61 (1998)

सारणी - 4.5 कवक की विभिन्न जातियों का खरपतवारनाशी के रूप में इस्तेमाल

कवक	खरपतवार	फसल	व्यावसायिक नाम
फाइटोप्थौरा पामीभोरा	स्ट्रैगल लतर	नींबू, अंगूर	डेवाइन
आल्टरनेरिया कैसीयाइ	स्किल पौड	कपास, सोयाबीन	कास्ट
फ्यूजेरियम लैटेरीसीयम	वेल्वेट पता घास	–	वेगो
कोलीटोट्रीकम ग्लिस्पोराइयोडीस	नोर्थन ज्वांट वेच	धान, सोयाबीन	कालेज
को.माल्वेसीयरम	सिहा स्पाइनोसा	कपास, सोयाबीन	–
को.कोक्कोडीस	अबुटीलॉन थियोप्रेजी	–	–
सरकोस्पोरा रौडमनाई	जलकुंभी	पानी घास	–
पुक्सीनिया लैन्टी	लैन्टाना	औद्योगिक स्थान	–
सेफैलोस्पोरियम माक्रोवैलो सीयाला	केसीया अब्टूसीफोलिया	कपास, सोयाबीन	–
		औद्योगिक स्थान	–
यूरोमाइसीस रसीन्स	रूमेक्स क्रीस्पोस	,,	–

स्रोत: पेस्टोलॉजी XXII (8) : 62 (1998)

सारणी - 4:6 कीटों की रोकथाम में शकाणुजीवनाशियों का इस्तेमाल

शकाणु	कीट	व्यावसायिक नाम
बैसीलस थूरीनजियेन्सीस कर्सटकी	केटरपिलर्स	वायोलेप, डीपेल, डेमेलीब एग्री, कोन्डोर, रैपटर, डेल्टाबीट
बै.पोपीलाइ	घुन, भृंग	डुम
बै.मोरीटाइ	मक्खी, मच्छर	लैविलस
बै.थूरो. इस्टाइलेन्सीस	फफूंद नैट, मक्खी मच्छर	टेकबर एक्रोब, नैट्रोल बैक्टीमौस, स्केटल
बै.थूरो. टेनीब्रियोनीस	आलू के कोलोराडो भृंग	नोसोडर, म-ट्रौक, ट्रिडेक्ट, कोएल
बै.थूरो. अजावाई	वैक्स मौथ, डायमंड बैक मौथ	सर्टन, प्लोबैक, जेनटारी
बै.स्पेरीकल सेरोटाइप्स	फल मक्खी, घरेलू मक्खी, मच्छर	स्पीक बायोमास
सैक्रोरोपोलीस्पोरा स्पाइनोसा	थ्रिप्स, क्विटिल केटरपिलर	सक्सेस

स्रोत: पेस्टोलॉजी XXII (8) : 62 (1998)

सारणी- 4.7 : फसल बीमारियों की रोकथाम में शकाणुओं का उपयोग

शकाणु	नियंत्रित रोग	रोगजनक कारक	फसल
बैसीलस स्बटाइलीस	जड़ सड़न/उकठा	राइजोक्टोनिया सोलानाइ	टमाटर, बैंगन, कपास
		फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम	सोयाबीन, सब्जियां
स्यूडोमोनस फ्लोरीसेन्स	आर्द्र गलन/टेक आल रोग	ग्यीमैनोमाइसीस ग्रामीनीस इरविनीया केरोटोभोरा	गेहूँ, जौ और आलू
एग्रोवैक्टीरियम रेडीओबैक्टर	क्राउन गाल	एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमीफेसीएन्स	सेव, अंगूर, चेरी आड़ू और गुलाब

स्रोत: पेस्टोलॉजी XXII (8) : 64 (1998)

सारणी- 4:8 कीटजनित विषाणुओं से कीटों की रोकथाम

विषाणु वर्ग	पोषक/आतिथेय कीट क्षेत्र
1. बकुलोविरीडी: – न्यूक्लिअ पोलीहेड्रोसिस विषाणु (एनपीवी) – ग्रैनुलोसीस विषाणु	डिप्टेरा, डाइमेनोप्टेरा, लैपीडोप्टेरा क्रस्टेसिया आदि।
2. रेयोविरीडी : – साइटोप्लाज्मिक पोलीहेड्रोसिस विषाणु (सीपीवी)	
3. पौक्सविरीडी: – इन्टोमोपैक्स पोलीहेड्रोसिस विषाणु (इपीवी)	डिप्टेरा, लैंपीडोप्टेरा, ऑर्थोप्टेरा और क्रस्टेसिया आदि
4. इरीडीयोविरीडी: – इरीडीसेन्ट विषाणु (आइवी)	क्रस्टेसिया, डिप्टेरा, हेमीप्टेरा, हाइमेनोप्टेरा और लैपीडोप्टेरा
5. पर्मोविरीडी: – डेन्सो विषाणु (डीएनवी)	डिप्टेरा, लैपीडोप्टेरा, आर्थोप्टेरा
6. पिकोनोविरीडी: – छोटा आर एन ए विषाणु	क्रस्टेसिया डिप्टेरा, हेमीप्टेरा, हाइमेनोप्टेरा लैपीडोप्टेरा और ऑर्थोप्टेरा
7. राब्डेविरीडी : सिगमाविषाणु	डिप्टेरा

स्रोत: पेस्टोलॉजी XXII (8) : 65 (1998)

सारणी 4.9 हानिप्रद कीट और बीमारी के नियंत्रण में अनुशंसित वनस्पतियों का योगदान

वनस्पति	वनस्पति का भाग या उत्पाद	फसल	हानिकारक कीट	रोग	मात्रा/टिप्पणी
1	2	3	4	5	6
नीम	खली	अरहर, धान	पत्ता लपेटक, सफेद	शीश गलन	150 कि.है.मिट
	बीज दाना	चना, मूंग,कपास अंडी आदि	मक्खी, वीपीएच फली-वेधक	झुलसा, खर्रा रोग	-दी 5% बारीक फुहार
	बीज दाना	कपास	सफेद मक्खी	–	5% बारीक फुहार
	,,	अंडी	लीफ, हापर्स, सेमी लूपर	–	3%, 2% तेल
	,,	धान	वीपीएच	शीश झुलसा व गलन	15 लि/है. बारीक फुहार
	,,	नारियल	राइनोसेरविटिल	–	3% बारीक फुहार
	पत्तारस. तेल मिश्रण	टमाटर व मिर्च	–	तना व जड़ सड़न	3% फुहार
		मूंगफली, बैंगन	फली वेधक	लीफ, कर्ल	5 व 3% बारीक फुहार
		प्याज, फूल	सफेद मक्खी	यलो वेन मोजैक	
प्याज	कंद धूल, पत्ता रस	मटर, फल धान गेहूँ	–	खर्रा रोग, लीफ कर्ल, चितकबरा रोग	धूल का बुरकाव 3% बारीक फुहार

1	2	3	4	5	6
हल्दी	बीज धूल	धान, गेहूँ, सब्जी	–	जड़ सड़न	फुआर
शकरकंद	पत्ता धूल व रस	धान, गेहूँ	–	भूरा रतुआ	50. ग्रा./ली. पानी से फुहार
इलूपाइ	तेल	धान	बीपीएच	–	6% तेल की फुहार
आइपोमिया	पत्ता धूल	कपास, धान	सफेद मक्खी	शीघ्र सड़न	5%+10% फुहार
राटोनिया	जड़	गन्ना, मक्का	बेघकों के विरुद्ध	–	फुआर
रोटीनोन	जड़	सब्जियां	बाग के कीट	–	स्तनधारियों के लिए विषैला
बेल	पत्ता तथा फल रस/निचोड़	बहुत सी फसलें	बहुत से कीट	–	फुहार
महुआ	पत्ता रस और तेल	आलू, मूंगफली जूट	–	जड़ तथा तना सड़न	2-3% तेल की फुहार
खेजरी	पत्ता धूल	धान	इयरहेड बग	सीड सड़न	मिट्टी में मिलाना एवं फुहार
सदाबहार	पत्ता, फूल एवं जड़ रस	कपास	सफेद मक्खी	--	फुहार

1	2	3	4	5	6
लहसुन	कंद धूल व पत्ता रस	मटर पल और फूल	फलमक्खी	खर्रा रोग और बहुत से शकाणु रोग	धूल का बुरकाव फुहार रस का
कर्थी	छाल का रस	सब्जियां	–	जड़ गांठ सूत्रकृमि	मिट्टी में मिलावट
पुदीना	पत्ता का रस और धूल	धान, गेहूँ, फल	–	भूरा रतुआ	30 ग्राम पत्ता रस 1 लीटर फुहार
तुलसी	पत्ता रस	आलू, बैंगन टमाटर, मिर्च सरसो, प्याज, फूल	पत्ता छेदक	लीफ कर्ल	फुहार
सौंफ	पत्ता रस	सब्जी व फूल	जैसिड माहू	–	फुहार
लाल पत्ता	पत्ता रस	धान	–	बर्न धब्बा	फुहार
काली मिर्च	पत्तारस	जूट	–	तना सड़न	फुहार
गेंदा	जड़ और पत्ता रस	धान, गेहूँ फूल	–	भूरा रतआ जड़ गांठ सूत्रकृमि	मिट्टी में मिलाना एवं फुहार
तंबाकू	पत्ता और तना	बहुत सी फसलें	लैपीडोप्टेरा वर्ग के कीट	–	विषैला होने के इस्तेमाल कम

1	2	3	4	5	6
शरीफा	बीज व पता रस, तेल	धान, मूंगफली, कपास	लीफ माइनर, लीफ हार्पस, बीज कोष सूंडी	–	पुहार, 200 ग्राम रस पानी में मिलाकर
दरक/वकायन	बीज रस	चाय, काफी	चाय मच्छर मत्कुण	–	फुहार
करंज	पत्ता एवं तना रस	,,	,,	–	फुहार
पलास	फूल रस	कपास	सफेद मक्खी	–	फुहार
काजू	पत्ता रस/निचोड़	सब्जियां	–	जड़ गलन	फुहार
अंडी/रेडी	तेल	मक्का	माहू, केटरपिलर बिटिल	–	फुहार
धतूरा	पत्ता धूल एवं रस	चावल, गेहूँ	–	भूरा रतुआ एवं अन्न फफूंद रोग	10 ग्रा./कि. 30 ग्रा./कि.
सहजन	जड़ तथा पत्ता रस	सब्जियां तथा फूल	बिटिल	जड़ गलन (शकाणु)	रस में डुबोकर रोपन
नारियल	पत्ता रस	केला, मंगूफली	–	ऊपर का पत्ता सिकुड़न तथा तना सड़न	फुहार

1	2	3	4	5	6
जोजोबा	पौध रस	बहुत सी फसले	बहुत से कीट	–	फुहार
अमरूद	बीज रस	धान,गेहूँ	–	भूरा रतुआ	फुहार
अंगूर	–	आलू, तंबाकू	वेंधक, चींटी बिटिल, वेटरपिलर	–	फुहार
पपीता	पत्ता धूल एवं रस	धान,गेहूँ तथा मक्का	माहू, बग, बिटिल	–	फुहार
कनेर	,,	धान,गेहूँ	–	भूरा रतुआ	25-30 ग्रा.पत्ते 1 लि. पानी फुहार
कालकातून्दा	पत्ता का काढ़ा	धान, सब्जी	–	जड़ सड़न	फुहार
लैन्टेना	पत्ता रस	आलू, टमाटर बैंगन, मिर्च	लीफ माइनर	–	फुहार
जूट	तना धूल व रस	धान, गेहूँ	गेहूँ के भंडारण कीट	भूरा रतुआ	फुहार
ज्वार	पत्ता रस	मूंगफली	–	टहनी गलन	फुहार
भिंडी	पत्ता धूल एवं रस	धान,गेहूँ	–	भूरा रतुआ	25-30 ग्रा./लि. पानी फुहार

1	2	3	4	5	6
गुल्दाउदी	फूल	बहुत सी फसलें	घर उड़न तथा घरेलू कीट	–	फुहार
सिट्रोलेना घास	पत्ता रस एवं	मूंगफली, सब्जी फूल, जूट	–	जड़ तथा तना गलन रोग	तेल के गोले जड़ के आस-देने से ज्यादा फायदा होता है।
भटकोय	पत्ता रस	जूट	–	तना सड़न	फुहार
चम्पा	फूल रस	बहुत फसलें	मच्छर	–	फुहार
वाल्युग्रा	तेल	जूट, नींबू तथा आलू	मच्छर	तना सड़न तथा फल सड़न	3% तेल पानी में और फुहार
मेरीन्किल घास	पत्ता, जड़ एवं फूल निचोड़	कपास	सफेद मक्खी	–	फुहार
नयनतारा	पत्ता रस	धान, गेहूँ तथा सब्जियां	–	जड़ सड़न तथा मूल गांठ सूत्रकृमि	फुहार एवं जड़ के पास के पत्ते

स्रोत: पेस्टोलॉजी XXII (2) : 19-22 (1998)

IV. रासायनिक विधियां

रासायनिक विधियों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के रसायनों का प्रयोग किया जाता है। ये रसायन रासायनिक क्रिया द्वारा पीडकों को मार देते हैं या दूर भगा देते हैं।

पीड़कनाशी रसायनों (पेस्टिसाइड) का वर्गीकरण

I. विभिन्न प्रकार के पीडकों को प्रभावित करने के आधार पर

विभिन्न प्रकार के पीड़कों को मारने या भगाने वाले पीडकनाशी रसायनों को इस प्रकार वर्गीकृत किया गया है:

1. ऐसेरसनाशी (Acaricides)	माइट को नष्ट करने वाले रसायन
2. ऐफिडनाशी (Aphidicides)	एफिड को नष्ट करने वाले रसायन
3. शैवालनाशी (algicides)	शैवाल को नष्ट करने वाले रसायन
4. जीवाणुनाशी (Bactericides)	जीवाणुओं को नष्ट करने वाल रसायन
5. कवकनाशी (Fungicides)	कवक को नष्ट करने वाले रसायन
6. शाकनाशी (Herbicides)	हानिकारक शाकीय पौधों को नष्ट करने वाले रसायन
7. कीटनाशी (Insecticides)	कीटों को नष्ट करने वाले रसायन
8. डिंभकनाशी (Larvicides)	कीटों के (डिभकों) को नष्ट करने वाले रसायन
9. बरुथीनाशी (Miticides)	बरुथी को नष्ट करने वाले रसायन
10. मृदुकवचनाशी (Molluscides)	मृदुकवची/घोघा आदि कोलस्क को नष्ट करने वाले रसायन
11. सूत्रकृमिनाशी (Nematicides)	सूत्रकृमि को नष्ट करने वाले रसायन

12. रोडेन्टनाशी (Rodenticides) कृतकों को नष्ट करने वाले रसायन

13. खरपतवारनाशी (Weedicides) खरपतवारों को नष्ट करने वाले रसायन

II. पीड़कों के शरीर में प्रवेश करने के आधार पर

पीडकों के शरीर में प्रवेश करने के आधार पर पीडक रसायनों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जाता है।

1. जठर विष (stomach poison)

2. संपर्क विष (contact poison)

3. धूमक (fumigants)

4. सर्वांगीण कीटनाशी (systemic insecticides)

जठर विष

ये रसायन पीडकों के शरीर में भोजन के साथ प्रवेश करते है। काटने-चबाने वाले मुखांगयुक्त कीटों के लिए इन रसायनों का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी स्पंजाकार, सायफनाकार, चबाने व चाटने वाले एवं चूसने वाले मुखांगयुक्त कीटों के लिए इनका उपयोग करते हैं। इस प्रकार के रसायनों को अन्य विकसित प्राणियों को मारने के लिए भी भोजन में मिलाते है। ध्यान रहे कि ऐसे रसायनों की सांद्रता, पौधों के लिए घातक नहीं होनी चाहिए। इन रसायनों को जल में विलय नहीं होना चाहिए अन्यथा ये जल के साथ घुलकर जड़ व पत्तियों द्वारा अवशोषित होकर पादप विषाक्तता उत्पन्न कर सकते हैं।

जठर विष स्प्रे, डस्ट या प्रलोभक की तरह प्रयोग किए जाते हैं। कुछ जठरविषों में लैड, कैल्सियम व सोडियम आर्सिनेट, क्लोरीन के यौगिक (सोडियम फ्लुओराइड, सोडियम फ्लुओसिलीकेट, क्रायोलाइट) होते हैं, जबकि अन्य जठर विषों में संश्लेषित कार्बनिक यौगिक तथा वनस्पतियों से प्राप्त कार्बनिक यौगिक पाए जाते हैं।

जठर विष काफी प्रभावकारी होने चाहिए जिससे फसल की कटाई से पहले समस्त कीटों पर नियंत्रण हो जाए। जठर विष कीटों के लिए स्वादिष्ट रूप में प्रयोग किए जाने चाहिए अन्यथा कीट इनकी ओर आकर्षित नहीं होंगे। इनका रासायनिक पदार्थ स्थिर होना चाहिए तथा लक्ष्य कीट को नष्ट करने के पश्चात इनका जैव-अपघटन हो जाना चाहिए ताकि पर्यावरण में इनका अवशेष प्रभाव न रहे।

2. संपर्क

संपर्क विष अधिक प्रभावशाली माने जाते है। इनका प्रयोग कीट शरीर पर या उन स्थानों पर करते हैं जहां कीट अधिक संख्या में मिलते है। इनका प्रयोग डस्ट (चूर्ण), इमल्शन, स्प्रे या निलंबन के रूप में किया जाता है। यह कीटों की क्यूटिकल से होकर शरीर में प्रवेश कर जाता है। क्यूटिकल की ऊपरी मोम की पतली एपीक्यूटिकल को हटाने के लिए रसायन में ईथर, क्लोरोफार्म, जाइलीन मिलाते हैं जिससे रसायन तेजी से शरीर में प्रवेश कर जाता है। कीटविष की मारक क्षमता इसकी रासायनिक संरचना तथा क्यूटिकल की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। अधिकांश कीटनाशी लाइपोफिलिक होते हैं और एपीक्यूटिकल के मोम द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं। जठर विषों की भांति इनकी भी पादप विषाक्तता देखी गई है। अत: पौधों में फूल-फल आते समय इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। इनका छिड़काव करते समय पर्याप्त सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। वानस्पतिक संपर्क विषों जैसे निकोटीन, पाइरेथ्रम, रोटेनॉन तथा नीम से बने कीटनाशियों का प्रयोग अधिक सुरक्षित रहता है।

3. धूमक

धूमक (विष) वे विष होते हैं जो या तो साधारण ताप पर स्वयं गैस के रूप में होते है या ताप द्वारा गैस के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। ये विष गैस के रूप में ही कीटों के श्वसन-छिद्रों के रास्ते से श्वास नलिकाओं में पहुंचकर उनके तंत्रिका-तंत्र को प्रभावित कर उन्हें मार डालते हैं। इन विषों को वायुनिरोधी स्थानों में ही अधिकतर प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी कुछ धूमकों को निर्वात

स्थानों में भी प्रयोग किया जाता है। इन स्थानों पर इनका प्रयोग शीघ्रता से होता है। भंडारगृहों, संग्रहालयों, जानवरों के बाड़ों तथा घर में कीट नियंत्रण के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। इनका प्रयोग मिट्टी में घातक ग्रब, निमेटोड, नर्सरी को प्रभावित करने वाले स्केल कीट, ग्रीन हाउस के हानिकारक कीट, पेड़ तथा लकड़ियों के वेधक कीटों को मारने के लिए किया जाता है। कुछ प्रमुख विषों में कार्बन डाई सल्फाइड, कार्बन टेट्राक्लोराइड, मिथिल ब्रोमाइड, एथिलीन डाइब्रोमाइड आदि है।

धूमकों को आदर्श कीट विष माना जाता है। क्योंकि वे दरारों तथा छिपे स्थानों में रहने वाले कीटों को भी मार डालने में सक्षम होते है। चूंकि ये स्तनधारियों के लिए भी अत्यंत विषैले होते है अत: इनके प्रयोग में पर्याप्त सावधानी बरतनी चाहिए। धूमन के समय ताप की विशेष भूमिका रहती है।

4. सर्वांगीण कीटनाशी

सर्वांगीण कीटनाशी जठर विष के समान होते हैं, परंतु ये पौधों तथा जंतुओं के ऊतकों में अवशोषित होकर बीज, जड़ तथा पत्तियों एवं विभिन्न अंगों में पहुंच जाते है और इनके द्रव को इतना विषैला कर देते हैं कि कीट रस चूसते ही या पौधों को खाते ही मर जाते हैं। परंतु ये पौधों व जंतुओं के लिए विषैले नहीं होते। इन कीटविषों की समन्वित कीट-प्रबंधन में विशेष भूमिका होती है। इन कीटविषों के प्रमुख उदाहरण हैं- डाइमेंथोएट, फास्फोमिडॉन एल्डीकर्ब, फोरेट, कार्बोफ्यूरॉन, सिस्टॉक्स, मेटासिस्टॉक्स आदि।

III. रासायनिक संरचना के आधार पर वर्गीकरण

रासायनिक संरचना के आधार पर कीटविषों को इस प्रकार विभाजित किया गया है:

(अ) उत्पत्ति के आधार पर

(i) अकार्बनिक (कीट) विष

(ii) कार्बनिक (कीट) विष

(ए.) संश्लेषित कार्बनिक यौगिक

(वी) पौधों से प्राप्त कार्बनिक यौगिक

आ) रासायनिक संरचना के आधार पर

i. आर्सेनिक के यौगिक-लेड आर्सेनेट, कैल्सियम आर्सनेट, पेरिस ग्रीन।

ii. फ्लुओरीन के यौगिक- सोडियम फ्लओराइड।

iii गंधक के यौगिक- लाइम सल्फर।

iv फास्फोरस के यौगिक- जिंक फॉस्फाइड

v. क्लोरीन के यौगिक- डी.डी.टी., गैमेक्सीन, लिंडेन, क्लोरडेनऐड्रिन इत्यादि।

vi. ऐन्टिमनी के यौगिक- टारटार, एमैटिक।

vii. कार्बनिक फॉस्फेट यौगिक मैलाथियॉन, पैराथियॉन इत्यादि।

viii. कार्बामेट यौगिक- सेविन (कार्बारिल)

ix. पारा के यौगिक- मरक्यूरिक क्लोराइड

x. थैलियम के यौगिक- थैलियम सल्फेट।

xi. बोरान के यौगिक- बोरेक्स, सोडियम टेट्राबोरेट।

xii. संश्लेषित पाइरेथ्राइड्स- परमेथ्रिन, साइपरमेथ्रिन।

xiii. डाइनाइट्रोफिनॉल्स- डी.एन.ओ.सी., डी.एन.ओ.सी.एचपी.।

xiv. धूमक एच.सी.एन., मिथिल ब्रोमाइल, सल्फॉस, ई.डी.सी.टी. आदि।

xv. पादप विष- पाइरेथ्रम, निकोटीन, रोटेनॉन, एजैडिरोक्टिन इत्यादि।

xvi. कीट-आकर्षी रसायन- मिथिल यूजिनॉल।

xvii. कीट-प्रतिकर्षी रसायन- सिट्रोवेला का तेल आदि।

IV. क्रिया-विधि के आधार पर वर्गीकरण

क्रिया-विधि के आधार पर कीट विषों को इस प्रकार विभाजित किया गया है।

1. भौतिक विष

इस प्रकार के कीटविष धूल (डस्ट) या बारीक कणिकाओं या तरल रूप में प्रयोग किए जाते हैं। ये रसायन प्राय: भंडारित खाद्यान्नों की सुरक्षा हेतु प्रयोग किए जाते हैं तथा फसलों पर धूल के रूप में छिड़के जाते हैं। इनसे कीट की त्वचा की आंतरिक आर्द्रता कम हो जाती है, शरीर पर जलन होती है और घाव बन जाते हैं। जिससे अंत में कीट मर जाता है, जैसे कैल्सियम कार्बोनेट।

2. जीवद्रव्य विष

इस प्रकार के कीटविष कीट के शरीर में प्रोटीन को नष्ट कर देते हैं जैसे मरकरी, तांबे के मिश्रण, आर्सेनिक, फ्लुओराइड, इत्यादि।

3. श्वसन विष

ये धूमक होते हैं, जो श्वसन-तंत्र पर प्रभाव डालकर कीटों को मारते है जैसे मेथिल ब्रोमाइड, हाइड्रोजनसायनाइड आदि।

4. तंत्रिका विष

ये विष शरीर में पहुंचकर कीटों के तंत्रिका तंत्र एवं उनके तंतुओं को नष्ट कर देते हैं। जैसे डी.डी.टी, पैराथियॉन, निकोटीन सल्फेट आदि।

5. बंध्यकारी रसायन

ये रसायन कीट के शरीर में प्रवेश करके उनके जननांगों पर प्रभाव

डालकर उन्हें बांझ/नपुंसक बना देते हैं। जैसे- टेपा, मेटापा, एफोलेट, एमीनोट्रिन आदि।

6. हार्मोनी रसायन

ये रसायन कीट के शरीर में होर्मोन के स्राव को या तो अधिक कर देते हैं या रोक देते हैं जिससे कीट में अनावश्यक वृद्धि होती है और कीट मर जाता है।

7. लिंग आकर्षी रसायन

ये वे रसायन है जिनकी सुगंध से नर और मादा कीट आकर्षित होते हैं। जैसे- मिथिल यूजीनोल, आम की मादा मक्खी, डेक्स डेर्सिलिस को अपनी ओर आकर्षित करता है। ऐसे लिंग आकर्षी रसायनों को फेरोमोन कहते हैं।

8. प्रतिकर्षी रसायन

कुछ रसायन ऐसे होते हैं जिनके प्रयोग से कीट मरते है तो नहीं परंतु दूर भागते हैं और फसल को क्षति नहीं पहुंचा पाते है। ये रसायन अधिक विषैले नहीं होते हैं। जैसे डाइमेथिल थैलेट, बेन्जोइल बेन्जोवेट, बोर्डो मिश्रण आदि।

अकार्बनिक कीट-विष

अकार्बनिक कीट विषों का विवरण इस प्रकार है:

1. आर्सेनिक के यौगिक

आर्सेनिक के सभी यौगिक कीटों के लिए विषैले होते हैं। इनका अवशेष प्रभाव पौधों एवं उन्हें उपयोग में लाने वालो के लिए घातक सिद्ध हो सकता है, अत: इनका उपयोग अब कम किया जाता है। प्रमुख आर्सेनिक यौगिक इस प्रकार हैं-

i) लेड आर्सेनेट

लैड आर्सेनेट दो अवस्थाओं (प) एसिड आर्थो आर्सेनेट एवं (पप) बेसिक आर्थों आर्सेनेट के रूप में पाया जाता है। व्यापारिक लेह आर्सेनेट इन दोनों का मिश्रण होता है जिसमें आम्लीय भाग अधिक होता है। लेड आर्सेनेट अन्य आर्सेनिक यौगिकों की अपेक्षा दुर्बल विष है तथा जल में अविलय होता है अत: यह उसमें निलंबन बनाता है। यह पत्तियों द्वारा शोषित नहीं होता है और वे जलने से बच जाती है। इनको प्रयोग करने से पूर्व बराबर मात्रा में चूना मिला लिया जाता है। इसका प्रयोग (डस्ट) अथवा फुहार (स्प्रे) दोनों ही रूप में किया जा सकता है।

ii) केल्सियम आर्सेनेट

यह लेड आर्सेनेट से अधिक विषैला यौगिक है। व्यापारिक कैल्सियम आर्सेनेट में ट्राई कैलियम आर्सेनेट, एसिड कैलियम आर्सेनेट, चूना और कैल्सियम कार्बोनेट होता है। इसका प्रयोग कपास, आलू, सेब जैसी प्रतिरोधी फसलों में किया जाता हैं। यह वातावरण की कार्बन डाई ऑक्साइड को अवशोषित कर लेता है और अपघटित होकर जल में घुल जाने से पौधों व पत्तों पर जलने वाला प्रभाव डालता है और पौधों को क्षति पहुंचा सकता है। अत: इसका प्रयोग अब कम होता है।

iii)सोडियम आर्सेनेट

सोडियम आर्सेनेट जल में अत्यधिक विलय है अत: इसका प्रयोग केवल प्रलोभक कीटविष के रूप में किया जाता है। यह पौधों के लिए बहुत विषैला होता है। अत: कभी-कभी इसका प्रयोग खरपतवारों को नष्ट करने के लिए भी किया जाता है। इसका प्रयोग टिडड्यिों के नियंत्रण में भी किया जाता है।

iv) पेरिस ग्रीन

यह चमकदार हरे रंग का चूर्ण होता है। वस्तुत: यह कॉपर ऐसीटो आर्सेनाइट

का लवण है। इसमें जल में विलेय आर्सेनिक की मात्रा अधिक होती है जिसके कारण पत्तियों के जलने की संभावना अधिक रहती है। आजकल इसका प्रयोग हमारे देश में नहीं किया जाता है।

2. फ्लुओरीन के यौगिक

फ्लोरीन के यौगिक कीटों के लिए अधिक विषैले, स्तन-धारियों के लिए कम विषैले तथा पौधों के लिए भी अपेक्षाकृत सुरक्षित होते हैं। प्रमुख फ्लुओरीन यौगिक इस प्रकार हैं-

i) सोडियम फ्लुओराइड :

सोडियम फ्लुओराइड सफेद रंग का चूर्ण होता है। पानी में विलेय होने के कारण पौधों को क्षति पहुंचाता है। इसका प्रयोग खरपतवार-नियंत्रण में होता है। यह अत्यंत विषैला होता है। अत: इसे कोमल पौधों पर नहीं छिड़कना चाहिए। इसका प्रयोग प्रलोभक विष के रूप में टिड्डियों के नियंत्रण में करते है।

ii) सोडियम फ्लुओसिलिकेट

यह जल में अत्यंत विलेय सफेद, गंधहीन दानेदार चूर्ण है। इससे पौधों को क्षति पहुँच सकती है। इसे भी सोडियम फ्लुओराइड की भांति विषप्रलोभकों के रूप में टिड्डियों इत्यादि के नियंत्रण में प्रयोग किया जाता है।

iii)बेरियम फ्लुओसिलिकेट

यह जल में कम विलेय है। इसे डस्ट तथा स्प्रे दोनों रूप में प्रयोग करते हैं।

iv)क्रायोलाइट

यह भी जल में कम विलेय होता है। इसे पौधों पर आसानी से प्रयोग किया जा सकता है। इसे सोडियम फ्लुओएलुमिनेट भी कहते है।

सल्फर (गंधक) के यौगिक

सल्फर (गंधक) का प्रयोग अधिकतर कवकनाशी के (Fungicide) के रूप में किया जाता है। इसका प्रयोग डस्ट एवं स्प्रे दोनों रूप में किया जा सकता है। लाइम सल्फर को प्राय: स्प्रे के रूप में ही इस्तेमाल किया जाता है।

फॉस्फोरस के यौगिक

फॉस्फोरस यौगिकों में मुख्यत: जिंक फॉस्फाइड को चूहों के नियंत्रण में विष प्रलोभक के रूप में प्रयोग करते हैं। यह काले रंग का महीन चूर्ण होता है जिसमें फॉस्फोरस की हल्की गंध आती है। जल में घुलने पर इसमें से फॉस्फीन गैस निकलती है।

ऐन्टिमनी के यौगिक

ऐन्टिमनी यौगिकों में मुख्यत: टारटर एमैटिक का प्रयोग विष प्रलोभक के रूप में फल मक्खियों एवं प्रिट्स के विरूद्ध किया जाता है। इसमें एन्टिमीनोल ऐसीटेट होता है। इसे घोल के रूप में प्रयोग करते है।

पारे के यौगिक

मुख्यत: पारे के दो यौगिकों, मरक्यूरस क्लोराइड एवं मरक्यूरिक क्लोराइड, का प्रयोग कीटनाशी के रूप में किया जा रहा है।

थैलियम के यौगिक

थैलियम यौगिकों में थैलियम सल्फेट प्रमुख है। इसका प्रयोग शीरा व गुड़ के साथ चींटियों को नियंत्रित करने के लिए विष प्रलोभक के रूप में करते है।

बोरोन के यौगिक

बोरान के यौगिकों में बोरेक्स या सोडियम बोरेट का प्रयोग तालाबों अथवा गोबर की खाद के गड्ढों में मच्छरों एवं मक्खियों को मारने के लिए करते हैं।

वानस्पतिक कीटविष

प्राचीन काल से ही पौधों की जड़ों, तनों, पत्तियों, फूलों, बीजों से प्राप्त अनेक कीटविषों का प्रयोग पादप-सुरक्षा एवं भंडारित अनाजों के संरक्षण हेतु किया जाता रहा है। वानस्पतिक कीटविष कीटों के व्यवहार और कायिकी को अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं। ये पौधों के लिए सुरक्षित होते हैं और आसानी से जैव-विच्छेदित हो जाने के कारण पर्यावरण के लिए भी सुरक्षित होते हैं। इनमें निकोटीन, पाइरेथ्रम, रोटेनोन, एजेडिरेक्टिन, रायनिया प्रमुख हैं।

निकोटीन :

यह तंबाकू के पौधों से प्राप्त किया जाता है। निकोटीन तंबाकू की लगभग 15 जातियों में मिलता है किन्तु दो जातियों निकोशियाना टेबैकम एवं निकोशियाना रस्टिका की पत्तियों में अधिक मात्रा में पाया जाता है। निकोशियाना टेबैकम में 2 से 5 प्रतिशत निकोटीन तथा निकोशियाना रस्टिका में 5 से 14 प्रतिशत तक निकोटीन पाया जाता है।

निकोटीन सल्फेट

जब तंबाकू के सूखे पत्ते एवं टहनियों का क्षार अथवा गंधक के साथ आसवन किया जाता है तो निकोटीन सल्फेट बनता है। इसमें बुझा हुआ चूना, गंधक या अमोनियम हाइड्रॉक्साइड मिला देने से यह अधिक स्थायी एवं सुरक्षित हो जाता है। सामान्यत: इसकी 0.05-0.06 प्रतिशत मात्रा का प्रयोग किया जाता है।

निकोटीन कीटों की देहभित्ति में पाए जाने वाले स्पैरिकिल्स के द्वारा प्रवेश करती है तथा तंत्रिका-तंत्र को प्रभावित करती है। कम मात्रा में यह कीटों में उत्तेजना पैदा करती है तथा अधिक मात्रा में कीटों को लकवा मार जाता है, जिससे बाद में उनकी मृत्यु हो जाती है।

पायरेथ्रम

यह कंपोजिटी कुल के क्राइजेन्थयम नामक पौधों से निकाला जाता है। यह क्राइजेन्थमम की दो जातियों क्रॉसिनेरीफोलियम तथा क्रा. काक्सीनियम के फूलों

से प्राप्त किया जाता है। फूलों से निकले पदार्थ को पेट्रोलियम ईथर, ग्लैशल ऐसिटिक अम्ल, मिथिल एल्कोहॉल या ऐसीटोन में घोलकर छान लेते हैं। इस घोल में कुछ अशुद्धिया रह जाने पर पुनः शुद्धीकरण कर लिया जाता है। पायरेथ्रम क्षारीय घोल में विश्लेषित हो जाता है। इसमें कीटनाशक क्षमता निम्नलिखित एस्टरों के कारण होती है।

i) पायरेथ्रिन 1, जो पायरेथ्रम के साथ क्राइसेन्थेमिक अम्ल का एस्टर है।

ii) पायरेथ्रिन 2, यह तिनेरोलिन के साथ पायरेथ्रिक अम्ल का एस्टर है।

iii) सिनेरिन 1, यह सिनेरोलिन के साथ क्राइसेन्थेमिक अम्ल का एस्टर है।

iv) सिनेरिन 2, यह सिनेरोलिन के साथ पायरेथ्रिक अम्ल का एस्टर है।

v) जैसमोलिन 1, यह प्रायः जैसमोलिन के साथ क्राइसेन्थिक अम्ल का एस्टर है।

vi) जैसमोलिन 2, यह जैसमोलिन के साथ पायरेथ्रिक अम्ल का एस्टर है।

यह तीव्र संपर्क विष होता है जो सीधे तंत्रिका-तंत्र पर आक्रमण करता है। यह पौधों को क्षति नहीं पहुँचाता। इसे डस्ट, स्प्रे, ऐरोसॉल बम इत्यादि के रूप में प्रयोग किया जाता है। सुरक्षित कीटनाशी विष होने के कारण इनका प्रयोग अधिकतर सब्जियों, भंडारित अनाजों के संरक्षण में किया जाता है। यह वातावरण में आसानी से विच्छेदित हो जाता है और इसका कोई अवशिष्ट प्रभाव नहीं पड़ता है।

रोटेनोन

रोटेनोन भी एक प्रकार का वानस्पतिक कीटनाशी है। इसका प्रयोग बहुत पहले से मछली विष के रूप में किया जाता रहा है। यह पदार्थ सर्वप्रथम 1902 में डेरिस एलिप्टिका (Derris eliptica) तथा डेरिस मेलेक्सेन्सित (D. melaexensis) की जड़ों से अमेरिका में निकाला गया था। लेग्युमिन सी कुल की लगभग 68 जातियों से रोटेनोन निकाला जा चुका है।

यह जठर विष तथा संपर्क विष की तरह कार्य करता है। इसका प्रभाव कीटों में धीरे-धीरे होता है तथा प्रयोग करने से 2 से 3 दिन के भीतर कीट मर जाते हैं। यह पौधों के लिए पूर्णतया सुरक्षित होता है। यह प्रकाश, ऑक्सीजन तथा क्षारीय माध्यम में अपघटित हो जाता है अतः इसका प्रयोग बादलों के मौसम में अच्छा रहता है। इसे डस्ट, स्प्रे तथा ऐरोसॉल के बम के रूप में प्रयोग करते है।

रायेनिया

रायेनिया, दक्षिण अमेरिका में पाये जाने वाले पौधे- रायेनिया स्पीसियोसा (Ryania speciosa) की जड़ों से निकाला जाता है जिसमें क्रियाशील तत्व-रायनोडीन 0.16 से 0.20 प्रतिशत तक होता है। यह संपर्क एवं जठर विष है जो पेट्रोलियम तेलों, बैन्जीन को छोड़कर अन्य कार्बनिक विलायकों एवं जल में विलेय है। पायरेथ्रम तथा रोटेनोन की अपेक्षा यह हवा तथा प्रकाश में अधिक स्थायी है। इसका प्रभाव भी अधिक दिनों तक रहता है। रायेनिया डस्ट रूप में 20 से 40 प्रतिशत तक तथा स्प्रे रूप में 0.3 से 0.6 प्रतिशत तक प्रयोग किया जाता है।

हैलीबोर

यह वेरैट्रम ऐल्बम (Veratrum album) तथा वेरैट्रम विरिडो (V. virido) पौधों की जड़ों से निकाला जाता है। वेरैट्रम ऐल्बम, यूरोप तथा उत्तरी एशिया में मिलता है जबकि बेरैट्रम विरिडो अमेरिका में मिलता है। पायरेथ्रम की भांति यह भी प्रकाश और हवा तथा क्षारों के साथ मिलने पर ऑक्सीकृत हो जाता है, यह अधिकतर 20% डस्ट के रूप में प्रयोग किया जाता है।

सैबेडिल्ला

यह दक्षिणी तथा मध्य अमेरिका के शीनोकौलन ऑफीसिनेल (Schaenocaulon officienale) पौधों के बीजों से निकाला जाता है। इसके साथ ही यह शीनोकौलन टैक्सेनम (S. taxanum) तथा ड्रमोन्डी जाति (Drumondii spp.) के पौधों से भी मिलता है। इसका प्रयोग बहुत पहले से ही जूं चूर्ण के रूप में होता आ रहा है। सन् 1938 में इसमें क्रियाशील तत्व-वेरेट्रीन (veratrine) का पता लगाया गया।

इसे 10-20 प्रतिशत डस्ट अथवा 50 प्रतिशत विलेय चूर्ण के रूप में प्रयोग किया जाता है।

क्वेसिन

यह क्वेसिया एमारा (Quassia amara) तथा पिक्रैस्मा एक्सेल्सा (picrasma exelsa) नामक पौधों की छालों से निकाला जाता है। इनमें क्रियाशील तत्व पिक्रेस्मिन (picrasmin) होता है।

रिसीनिन

यह अंडी (Ricinus communis) की पत्तियों से निकाला जाता है। इसका क्रियाशील तत्व रिसीनीन होता है। यह रोमिल इल्ली हेयरी केटरपिलर तथा कांडलिंग मॉथ के नियंत्रण में प्रयोग किया जाता है।

स्कैबरिन

यह हिलियोप्सिस स्केबेरा (Heliopsis scabra) तथा हिलियोप्लिस लांगीपिस (H. longipis) खरपतवारों की जड़ों से निकाला गया है तथा यह पायरेथ्रम की भांति होता है। यह घरेलू मक्खी के नियंत्रण में उपयोगी है।

एनोनैन

यह कस्टर्ड ऐपल (शरीफे) की पत्तियों, तने तथा बीजों से प्राप्त होता है। इसका मुख्य क्रियाशील तत्व एनोनैसिन होता है। यह मुख्य रूप से दीमक, ऐपिड, ग्रब, घरेलू, कारपेट बीटल तथा धान के हिस्पा बीटल के नियंत्रण में उपयोगी है।

एकोरिन

यह स्वीट फ्लैग अर्थात् एकोरस कैलेवमस (Acorus calavmus) की जड़ों से निकाला जाता है। उड़ीसा के किसान इसकी जड़ों के चूर्ण का उपयोग, भंडारित धान को कीटों से बचाने के लिए करते हैं।

एजैडिरेक्टिन

यह नीम (Azadirachta indica) के बीजों से मुख्य रूप से प्राप्त किया जाता है। वैसे तो नीम के पेड़ के सभी भाग-छाल, पत्तियां, फूल-फल, बीज आदि में कीटनाशक गुण होते हैं, किंतु बीज में विशेष रूप से क्रियाशील तत्व होता है। यह अशन रोधी (ऐन्टीफीडेन्ट) के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग से कीटों में भोजन के प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाती है।

संश्लेषित पायरेथ्राइड

संश्लेषित पायरेथ्राइड, कीटों के प्रति अधिक सक्रिय तथा अधिक प्रभावशाली होते है ये स्तनधारियों के प्रति अपेक्षाकृत कम विषैले होते हैं। यह अच्छे सह-क्रियाकारक होते हैं तथा आसानी से जैव-अपघटित हो जाने के कारण पर्यावरण को प्रदूषित नहीं करते हैं। कुछ प्रमुख संश्लेषित पायरेथ्राइड इस प्रकार हैं-

1. परमेथ्रिन (permethrin)

यह बाजार में व्यापारिक नाम पर्मासेक्ट (Permasect) पीपी 557 ऐम्बुश (Ambush) के 50 प्रतिशत पायसकरणीय सांद्र (Emulsifiable concentrate, E.C.) के रूप में मिलता है। यह फल, अरहर, सब्जियों, कपास के केटरपिलर व दालों के कीट नियंत्रण के लिए 20g वास्तविक क्रियाशील पदार्थ प्रतिएकड़ की दर से प्रयोग किया जाता है। इसका एल.डी. 50 मान 400 मिग्रा प्रति किग्रा है। यह कार्बनिक विलायकों में अधिक तथा जल में कम (0.02 पीपीएम) विलेय है।

2. साइपरमेथ्रिन (cypermethrin)

इसके व्यापारिक नाम सिम्बुश (cymbush) पीपी 383 रिपकोर्ड (ripcord) साइपरकिल (cyperkill) के 30% पायसकरणीय सांद्र (ई.सी) है। इसमें सिस (cis) तथा ट्रान्स (trans) समावयव पर 40 और 60 के अनुपात में होते है। यह भी 20 ग्राम वास्तविक क्रियाशील पदार्थ प्रति एकड़ की दर से कपास के

अनेक बालवर्म (balworm) अरहर की पत्ती, लेन्टिल बग, गन्ना, चना आदि के कीट नियंत्रण में काफी (कार्बामेटों तथा आर्गेनोफोस्फेटो की अपेक्षा 10 गुना सफल रहता है। यह पानी में कम तथा अन्य कार्बनिक विलायकों में अधिक विलेय है। यह सूर्य के प्रकाश में देर से अपघटित होने के कारण काफी देर तक प्रभावी रहता है। इसकी एल.डी. 50 मात्रा 4800 मिग्रा. प्रति किग्रा है।

3. डेकामेथ्रिन (Decamethrin)

यह डेसिस (decis) के व्यापारिक नाम से बाजार में 25 प्रतिशत ई.सी. के रूप में मिलता है। यह पेराथियॉन से 40 गुना, मैलाथियॉन से 50 गुना कार्बरिल से 80 गुना तथा डी.डी.टी. से 100 गुना अधिक विषैला होता है। इसका एल.डी. 50 मान 128.5 मिग्रा प्रति किग्रा शारीरिक वजन है। इतना अधिक तीव्र विष होने के कारण 4 ग्राम वास्तविक क्रियाशील पदार्थ प्रति एकड़ छिड़का जाता है। यह कपास के बॉलवर्म, फल, सब्जियों, दालों के ऊतकों तथा पत्ती वेधक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

4. फेनवेलरेट (Fenvalrate)

यह बाजार में सुमीसिडिन (sumicidin) के नाम से 20 प्रतिशत ई.सी. में मिलता है। यह पीले रंग का तेल समान द्रव पदार्थ होता है। इसका एल.डी. 50 मान 451 मिग्रा प्रति किग्रा शारीरिक वजन होती है। यह अत्यंत विषैला होने के कारण अन्य कीटनाशियों की अपेक्षा 1/5-1/10 भाग ही कीट नियंत्रण के लिए उपयोगी है। यह 20 ग्राम वास्तविक क्रियाशील पदार्थ प्रति एकड़ की दर से फल, कपास, सब्जियों, दाल के कीटों के विरुद्ध प्रयोग किया जाता है।

संश्लेषित कार्बनिक कीटनाशी

संश्लेषित कार्बनिक कीटनाशी, अकार्बनिक तथा वानस्पतिक कीटनाशियों की तुलना में अधिक विषैले एवं सरलता से प्रयोग किये जा सकने वाले होने के कारण अधिक लोकप्रिय हो गए हैं। इन कीटनाशियों को निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किया गया है:

1) क्लोरीनित हाइड्रोकार्बन (Chlorinated Hydrocarbon)

2) आर्गेनोफास्फेट (Organophosphates)

3) कार्बामेट (Carbamates)

4) डाइनाइट्रोफीनोल (Dinitrophenols)

5) आर्गेनिक थायोसायनेट (Organic thiocyanates)

1. क्लोरीनित हाइड्रोकार्बन

क्लोरीनीकृत हाइड्रोकार्बन कीटनाशियों का विकास, द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् डी.डी.टी. की खोज के साथ हुआ। ये अत्यंत विषैले होते हैं। अत: खाद्य पदार्थों पर इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। इन कीटनाशियों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है।

1) डाईफेनिल मेथेन संरचना - डी.डी.टी.

2) मोनोसाइक्लिक संरचना - बी.एच.सी.

3) डाईसाइक्लिक संरचना - टॉक्सीफीन, स्ट्रोवर

4) पॉलीसाइक्लिक संरचना - एल्ड्रिन, क्लोरडेन, हेप्टाक्लोर

5) हेट्रोसाइक्लिक संरचना - एल्ड्रिन, डाइएल्ड्रिन

कुछ प्रमुख क्लोरीनित हाइड्रोकार्बन कीटनाशियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

i) डी.डी.टी.

डी.डी.टी. का रासायनिक नाम डाइक्लोरो डाइफेनिल ट्राइक्लोरोएथेन है। इसका रासायनिक सूत्र $C_{14}H_9Cl_5$ है। इसकी खोज सर्वप्रथम सन् 1874 में

जीलर ने जर्मनी में की थी। किंतु इसके कीटनाशक गुणों का पता सन् 1939 में पॉलमुलर द्वारा लगाया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के समय इसकी मांग अधिक बढ़ गई क्योंकि युद्ध के दौरान गंदगी, मक्खी, मच्छर तथा अन्य रोगजनक कीटाणुओं की बढ़ती संख्या को नियंत्रित करने में इसका एक सफल कीटनाशक के रूप में प्रयोग किया गया। शुद्ध रूप में डी.डी.टी., चिकना सफेद भुरभुरे चूर्ण के रूप में होता है। यह एक तीव्र जठर एवं संपर्क विष है। इसका प्रयोग मुख्य रूप से एफिड, माइट, टिडड्यिों आदि की रोकथाम के लिए किया जाता है। यह डस्ट, विलेय चूर्ण, पायसीकरणीय सांद्र के रूप में बाजार में मिलता है।

डी.डी.टी. कीटों की देहभित्ति द्वारा अवशोषित होकर उसके संवेदी अंगों एवं तंत्रिका-तंत्र को प्रभावित करता है। इसका दीर्घ स्थायित्व काल अधिक होने के कारण इसे अच्छा कीटनाशी नहीं माना जाता है।

ii) बी.एच.सी.

बी.एच.सी. का रासायनिक नाम बेन्जीन हैक्साक्लोराइड है तथा इसका रासायनिक सूत्र $C_6 H_6 Cl_6$ है। इसकी खोज सर्वप्रथम सन् 1825 में मिक फराडे द्वारा की गई तथा इसके ''गामा'' समावयव के कीटनाशी गुण सन् 1842 में इंगलैड तथा फ्रांस में साथ-साथ ज्ञात हुए। इसका व्यापारिक नाम गैमेक्सीन है। गामा समावयव में कोई गंध नहीं होती है। बी.एच.सी. की गंध दूसरे समावयव के कारण होती है। डी.डी.टी. की अपेक्षा बी.एच.सी. कीटों को शीघ्र नष्ट करता है क्योंकि इसमें धूमन का भी गुण है, जिसके कारण यह कीटों के शरीर में शीघ्र प्रवेश कर जाता है। यह डस्ट, विलेय चूर्ण तथा पायसीकरणीय सांद्र (कन्सन्ट्रेट) के रूप में प्रयोग किया जाता है।

iii) लिन्डेन

इसे गामा बी.एच.सी. के नाम से जाना जाता है क्योंकि इसमें 99 प्रतिशत गामा समावयव होता है। इसका रासायनिक सूत्र $C_6 H_6 Cl_6$ है। यह रंगहीन, गंधहीन रवेदार होता है। यह जल में अविलेय तथा कार्बनिक विलायकों में विलेय है। यह तीव्र संपर्क एवं जठर विष है। यह डस्ट, स्प्रे विलेय चूर्ण, इमल्सीफायेबल

कन्सन्ट्रेट ग्रेन्यूलों (कणिकाओं) के रूप में प्रयोग किया जाता है। आलू, बैंगन, सरसों कुल के पौधों तथा कुकरबिटेसी कुल के पौधों के कीटों के नियंत्रण में इसका प्रयोग किया जाता है।

iv) टॉक्सीफीन

इसका रासायनिक नाम ओक्टाक्लोरो कैम्फीन है तथा रासायनिक सूत्र $C_{10}H_{10}Cl_8$ है। यह सायक्लोडाइन वर्ग का यौगिक है। इसमें लगभग 68 प्रतिशत क्लोरीन होती है। इसे तारपीन, कैम्फीन पर क्लोरीन की क्रिया करके बनाया जाता है। यह मुख्यत: जठर विष है लेकिन कभी-कभी संपर्क विष के रूप में भी कार्य करता है। यह डस्ट, विलेय चूर्ण, झमल्सीफायबल कन्सन्ट्रेट के रूप में मिलता है। इसकी क्रियाविधि अन्य क्लोरीनित हाइड्रोकार्बन के समान ही तंत्रिकातंत्र पर क्रिया करने की तथा सोडियम पोटैशियम आयनों द्वारा शरीर को असंतुलित करने जैसी है। यह कुकरबिटेसी कुल के पौधों को छोड़कर अन्य सभी के लिए सुरक्षित है।

v) क्लोरडेन

इसका रासायनिक सूत्र $C_6H_6Cl_8$ है। यह बाजार में डस्ट, विलेय चूर्ण, इमल्सीफायबल कन्सन्ट्रेट के रूप में मिलता है। यह तीव्र संपर्क व जठर विष है। इसका दीर्घ स्थायित्व काल अधिक होता है अत: फसल काटने के दो सप्ताह पूर्व इसका प्रयोग बंद कर देते है। सामान्यतया यह पौधों को हानि नहीं पहुंचाता किंतु पत्तियों वाली सब्जियों तथा कंद वाली फसलों पर प्रयोग करने से उन पर धब्बे पड़ जाते है। कुकरबिटेसी पौधों के लिए भी यह विषैला होता है। इसका सफल प्रयोग कपास के कीटों में किया जाता है। इसका प्रयोग दीमक व चीटियों के नियंत्रण में भी किया जाता है।

vi) हैप्टाक्लोर

इसका रासयनिक सूत्र $C_{10}H_5Cl_7$ है। यह एक तीव्र संपर्क एवं जठर विष है। इसका दीर्घ स्थायित्व काल अधिक होता है। अत: इसका अवशिष्ट प्रभाव काफी दिनों तक रहता है। हमारे देश में इसका अधिक प्रयोग नहीं किया जाता

है, किंतु टिडड्यिों, दीमक, कटुआ, मच्छर आदि के विरुद्ध इसका प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग चारे, सब्जियों तथा जानवरों पर नहीं करना चाहिए। यह डस्ट, विलेय चूर्ण, इमल्सीफायबेल कन्सन्ट्रेट के रूप में प्रयोग किया जाता है।

(vi) एल्ड्रिन

इसका रासायनिक सूत्र $C_{12}H_8Cl_6$ है। यह बी.एच.सी. की भांति तेज संपर्क, जठर तथा धूमक विष है। परंतु यह लिन्डेन तथा डी.डी.टी की अपेक्षा कीटों के लिए 8 गुना अधिक विषैला है। वैसे तो इसका प्रयोग सभी प्रकार के कीटों के नियंत्रण के लिए किया जाता है किंतु अधिकतर इसको दीमक, कटुआ आदि के विरुद्ध इस्तेमाल करते है। फसलों की कटाई के तीन सप्ताह पूर्व इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि इसका अवशिष्ट प्रभाव अधिक दिनों तक रहता है। यह डस्ट, विलेय चूर्ण तथा पायसीकरणीय (इमल्सीफायबल) कन्सन्ट्रेट के रूप में प्रयोग किया जाता है।

(vii.) थायोडान

इसका रासायनिक सूत्र $C_9H_6Cl_6O_3S$ है। इसे एन्डोसल्फान भी कहा जाता है। एन्डोसल्फान यानि थायोडान एक संपर्क एवं जठर विष है। यह मछलियों के लिए अत्यंत विषैला है। यह डस्ट, ग्रेन्यूल्स तथा इमल्सीफायबल कन्सन्ट्रेट के रूप में मिलता है। यह ऊतक बेधक, स्टेम फ्लाई, छाल खाने वाले केटरपिलर, आर्मीवर्म, कट वर्म, लीफ रोलर, हेयर केटरपिलर, पायरिला कीट, एफिड, सफेद मक्खी के विरूद्ध अधिक प्रभावशाली है।

2. आर्गेनोफॉस्फेट कीटनाशी

आर्गेनोफॉस्फेट कीटनाशियों का विकास क्लोरीनित हाइड्रोकार्बन के बाद हुआ है। इसमें फॉस्फोरस के एक या अधिक गुण या तो सीधे कार्बन से जुड़े रहते हैं या अप्रत्यक्ष रूप से नाइट्रोजन, ऑक्सीजन या गंधक से जुड़े रहते हैं। क्रियाविधि के आधार पर ये दो प्रकार के होते है- (I) संपर्क एवं जठर विष (II) सर्वांगीण विष

i) मैलाथियॉन

इसका रासायनिक सूत्र $C_{10}H_{19}0_6PS_2$ है। यह भूरे पीले रंग का द्रव होता है। इसमें लहसुन की सी गंध आती है। यह पानी में प्रायः अविलेय तथा कार्बनिक विलायकों में विलेय है। यह कीटों के लिए विषैला है तथा स्तनधारियों के लिए सुरक्षित है। क्षारीय पदार्थों के साथ मिलाने पर इसके कीटनाशी गुण नष्ट हो जाते हैं। इसका घातक प्रभाव लगभग तीन दिनों तक और विषैला प्रभाव लगभग एक सप्ताह तक रहता है। इसका प्रयोग भंडारण कीटों, एपिफ, माइट आदि के नियंत्रण हेतु किया जाता है। यह डस्ट, स्प्रे विलेय चूर्ण, इमल्शीफायबल कन्सन्ट्रेट के रूप में प्रयोग किया जाता है।

ii. पैराथियॉन

इसका रासायनिक सूत्र $C_{10}H_{14}NO_5PS$ है। यह दो रूपों में पाया जाता है- एथिल पैराथियॉन जिसे सामान्यतया पैरथियान या फॉलीडॉल कहते है, तथा मेथिल पैराथियान जिसे फॉलीडाल एम के नाम से जाना जाता है। व्यापारिक पैराथियॉन बादामी या पीले रंग का द्रव होता है। इसमें फास्फोरस की गंध आती है। यह पानी में कम तथा कार्बनिक विलायको में पूर्णरूप से विलेय है। यह एक तीव्र संपर्क एवं जठर विष है। यह डस्ट, विलेय चूर्ण, स्प्रे, इमल्शीफाय बल कन्सन्ट्रेट के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह एफिड, थ्रिप्स, कैटरपिलर आदि के नियंत्रण हेतु प्रयुक्त होता है।

iii डायजिजॉन

इसका रासायनिक सूत्र $C_{12}H_{21}O_3N_2SP$ इसे वासुडीन भी कहते है। यह भूरे रंग का द्रव होता है जो कि पानी में कम विलेय तथा कार्बनिक विलायकों में अधिक विलेय है। 100^0 से.ग्रे. से अधिक ताप पर यह ऑक्सीकृत हो जाता है। यह एक तीव्र संपर्क एवं जठर विष है। इसका घातक प्रभाव लगभग दो सप्ताह तक रहता है, किंतु इसका विषैला प्रभाव लगभग एक माह तक रहता है। यह डस्ट, विलेय चूर्ण स्प्रे, पायसीकरणीय कन्सन्ट्रेट के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह थ्रिप्स एफिड, माइट तथा शल्क कीटों के नियंत्रण में प्रयोग किया जाता है।

iv ट्राइक्लोरफेन

इसका रासायनिक सूत्र $C_4H_8Cl_3O_4P$ है। इसे डायलोकस तथा डेनैक्स भी कहते है। यह सफेद रंग का रवेदार ठोस पदार्थ होता है। यह पानी में कम तथा कार्बनिक विलायकों में पूर्ण रूप से विलेय है। यह तीव्र संपर्क एवं जठर विष है। यह स्तनधारियों के लिए कम विषैला होता है। यह पौधों के लिए हानिकारक नहीं होता, किंतु मधुमक्खियों के लिए घातक होता है। यह बाजार में डस्ट, विलेय चूर्ण, पायसीकरणीय कन्सन्ट्रेट के रूप में मिलता है। इसका व्यापारिक नाम डिप्टरेक्स है। यह ऊतक वेधक, आर्मीवर्म, हेयरी केटरपिलर, लीफ माइनर, एफिड तथा लीफ हापर्स के नियंत्रण हेतु प्रयोग में लाया जाता है।

v) डाइक्लोरवॉस

इसका रासायनिक सूत्र $C_4H_7Cl_2O_4P$ है। यह बाजार में नूवान तथा नोमोस नाम से मिलता है। इसे डी.डी.वी.पी. भी कहते हैं। यह एक तीव्र संपर्क एवं जठर विष है। इसमें धूमन का भी गुण होता है। यह पौधों के लिए हानिकारक नहीं होता हैं, किंतु मधुमक्खियों के लिए विषैला होता है। यह हेयरी केटरपिलर, आर्मी वर्म, ऊतक वेधक, सफेद मक्खी, वूली ऐपल एफिड के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है।

vi) क्विलेनफॉस

इसका रासायनिक सूत्र $C_{12}H_{15}O_3NPS$ है। यह बाजार में इकालक्स, ब्रेसिल सेन्डोज 6538, बेयर 77049 आदि नामों से डस्ट, ग्रेन्यूल्स तथा इमल्शन के रूप में मिलता है। यह बाल वर्म कॉम्पलैक्स, आर्मी वर्म, डायमंड ब्लैक शलभ, हेयरी बेटरपिलर, ऊतक बेधक, थ्रिप्स, लीफमाइनर मिलीबग इत्यादि के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है।

vii) कार्बाफेनोथियॉन

इसका रासायनिक सूत्र $C_{11}H_{16}O_2PS_3$ है। यह तीव्र संपर्क एवं जठर विष है। यह भूरे रंग का द्रव होता है। जो पानी में अविलेय एवं कार्बनिक विलायकों

में विलेय होता है। इसे शल्क कीट, माइट तथा एफिड के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है।

viii) फेनीट्रोथियॉन

इसका रासायनिक सूत्र $C_9H_{12}O_5NPS$ है। यह कम विषैला संपर्क रसायन है। यह मधुमक्खियों एवं अंडों के लिए घातक होता है। अधिक मात्रा में यह सरसों की फसल, कुछ सेब की किस्मों तथा कपास में पादप विषाक्तता उत्पन्न कर सकता है। यह बाजार में फोलीथियॉन, एक्कोथियॉन तथा हैक्साफिन के नाम से मिलता है। यह सफेद ग्रब, आर्मी वर्म, थ्रिप्स, एफिड, ऊतक वेधक, कॉलवर्म, सफेद मक्खी, लीफ हापर तथा पत्तियाँ खाने वाले केटरपिलर के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है।

II) सर्वांगीण विष

i) सिस्टॉक्स

इसे डेमेटान भी कहा जाता है। यह पीले रंग का चिपचिपा द्रव होता है जो पानी में कम तथा कार्बनिक विलायकों में अधिक विलेय होता है। यह 25 प्रतिशत इमल्सीफायबल कन्सन्ट्रेट के रूप में मिलता है। यह एक तीव्र सर्वांगीण विष है किंतु साथ ही यह संपर्क, जठर एवं कुछ धूमक विष की भांति भी कार्य करता है। इसका प्रयोग विशेष रूप से एफिड माइट के नियंत्रण हेतु किया जाता है।

ii) मेटासिस्टाक्स

इसे ऑक्सीडेमेटॉन भी कहा जाता है। इसके गुण सिस्टॉक्स के समान ही होते है, किंतु यह स्तनधारियों के लिए अधिक सुरक्षित होता है। यह पानी में विलेय होता है। यह 25 प्रतिशत पायसीकरणीय कन्सन्ट्रेट के रूप में बाजार में मिलता है। हरी पत्तीदार सब्जियों में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। यह लीफ हापर, एफिड, सफेद मक्खी, थ्रिप्स, लीफ माइनरों के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है।

iii) डाइमैथोएट

इसे रोगोर भी कहा जाता है। यह सफेद रवेदार पदार्थ होता है। यह 30 प्रतिशत पायसीकरणीय कन्सन्ट्रेट के रूप में बाजार में मिलता है। यह ऊतक-बेधक, केटरपिलर्स, लीफ हापर, एफिड, थ्रिप्स, माइट, सफेद मक्खी इत्यादित के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है।

iv) श्राडन या पेस्टॉक्स

यह भूरे रंग का गंधहीन द्रव होता है। यह वरणात्मक कीटनाशी है। यह मधुमक्खियों के लिए कम विनाशकारी है। यह रस चूसने वाले कीटों तथा माइट के विरुद्ध प्रभावकारी है। यह बाजार में पानी में घुले द्रव के रूप में मिलता है।

v) फास्फेमिडॉन

इसे डायमेक्रान भी कहते है। यह एक रंगहीन द्रव है। यह पानी के साथ-साथ बहुत से कार्बनिक विलायकों में भी विलेय है। यह एक तीव्र सर्वांगीण एवं जठर विष है। यह पौधों में फैल जाता है तथा पौधों द्वारा अवशोषित होने के बाद शीघ्र ही पूरे पौधे में फैल जाता है। पौधों के अंदर पहुंचने के बाद यह शीघ्र ही अपघटित हो जाता है। यह ऊतक बेधक, कैटरपिलर, लीफ हापर, एफिड, सफेद मक्खी तथा माइट के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है।

vi) एकेटिन या थायोमेटॉन

यह एक तीव्र सर्वांगीण विष है। इसको या तो खेतों में सिंचाई करते समय पानी में मिलाकर देते हैं या फिर इसका पौधों पर छिड़काव किया जाता है। यह रस चूसने वाले कीटों के प्रति अधिक प्रभावकारी है। यह लाभदायक परजीवी स्वशिकारी कीटों के लिए सुरक्षित है। यह एफिड, माइट, थ्रिप्स आदि कीटों के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है।

vii) फोरेट

इसे थीमेट भी कहा जाता है। यह पीले रंग का द्रव होता है। यह पानी में बहुत कम विलेय तथा कार्बनिक विलायकों में विलेय है। यह कीटों तथा मनुष्यों दोनों के लिए ही अत्यधिक विषैला होता है, परंतु पौधों को नुकसान नहीं पहुंचाता है। यह जड़ों के वीविल्स, ऊतक बेधक, मैगट, लीपहापर, एफिड, सफेद मक्खी, माइट आदि के नियंत्रण में प्रभावशाली है।

viii) मोनोक्रोटोफॉस

यह एजोड्रिन, नूवाक्रोन, मोनोक्रोन तथा मोनोसिल के व्यापारिक नाम से बाजार में मिलता है। यह एक तीव्र सर्वांगीण तथा संपर्क रसायन है। यह कपास के बॉलवर्म कॉम्पलेक्स, ऊतक बेधक, एपिड, थ्रिप्स, सफेद मक्खी, लीफ माइनर, हेयरी केटरपिलर इत्यादि के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है।

ix) फॉसड्रिन

यह अत्यंत विषैला, सर्वांगीण कीटनाशी है। यह संपर्क, जठर तथा धूमक विष के समान भी कार्य करता है। यह पानी तथा कार्बनिक विलायक दोनों में विलेय है। यह एफिड तथा माइट के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है।

x) मैनाजोन

मैनाजोन बाजार में सेफीकोल, सेफीजोन, सेफॉस के व्यापारिक नाम से इमल्शन तथा विलेय चूर्ण के रूप में मिलता है। यह कूसीफेरी कुल के पौधों व सब्जियों के लिए विषैला होता है। स्तनधारियो के लिए कम घातक होता है। इसे सेब, आलू, चुकंदर, तंबाकू, मटर आदि पर एफिड, माइट तथा लीपहापर्स के नियंत्रण के लिए प्रयोग करते हैं।

3. कार्बामेट

(i) कार्बारिल या सेवीन

शुद्ध सेवीन गंधहीन सफेद रवेदार होता है। यह पानी में बहुत कम विलेय

तथा कार्बनिक विलायकों में विलेय है। यह तीव्र संपर्क कार्बामेट कीटनाशी है। इसमें कुछ गुण सर्वांगीण कीटनाशी के भी होते हैं। यह ऊतक बेधक, बग लीफ हापर, थ्रिप्स, दीमक, सफेद मक्खी, मैगटर, हेयरी केटरपिलर इत्यादि के विरुद्ध प्रयोग किया जाता है।

(ii) कार्बोफुरान

इसे फ्यूराडॉन भी कहते है। यह सर्वांगीण फिनाइल कार्बामेट कीटनाशी और निमेटीसाइड है जो विस्तृत क्षेत्र में कीटों के विरुद्ध कार्य करता है। यह स्तनधारियों के लिए भी विषैला है। यह ऊतक बेधक, फलमक्खी, एफिड, सफेद मक्खी, थ्रिप्स, लीफ माइनर, लीफ रोलर, सफेर ग्रप्स तथा भूमि के वीबिल्स के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है।

(iiii) एल्डीकार्ब

इसे टेमिक के नाम से भी जाना जाता है। यह पीले भूरे रंग का तीखी गंध वाला पदार्थ है। यह पानी में कम विलेय तथा कार्बनिक विलायकों में पूर्ण रूप से विलेय होता है। यह एक तीव्र संपर्क सर्वांगीण कीटनाशी है। यह रस चूसने वाले कीटों एफिड, माइट तथा सूत्रकृमियों के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है।

4. डाइनाइट्रोफिनॉल

इसके तीन मुख्य प्रकार है:

i) डी.एन.ओ.सी.

यह पीले रंग का रवेदार ठोस पदार्थ है। यह पानी में कम विलेय (0.014) परंतु मिट्टी के तेल, ऐरोमैटिक तेल, जाइलीन में क्रमशः 2%, 20% एवं 40% विलेय है। इसे पत्ती को क्षति पहुंचाने वाली मकड़ियों, एफिड, शल्क कीट और टिडड्यिों के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है।

ii) डी.एन.ओ.सी.एच.पी.

यह डी.एन.ओ.सी. से अधिक विषैला होता है। इसलिए इसका प्रयोग कम किया जाता है। यह मकड़ियों के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है।

iii डी.एन.ओ.एस.बी.पी.

यह नारंगी रवेदार ठोस पदार्थ है। इसका प्रयोग बागों में कीट नियंत्रण हेतु करते हैं।

5. आर्गेनोथायोसायनेट

आर्गेनोथायोसायनेट कीटों पर शीघ्र प्रभावशाली होते हैं, परंतु स्तनधारियों और पौधों के लिए हानिकारक नहीं होते। इस वर्ग के रसायनों में लीथेन ($C_{11}H_{25}COOCH_2CH_2SCN$) तथा थेनाइट ($C_2H_{19}NH_2S$) प्रमुख है। इनका प्रयोग मिलीबग, एफिड, थ्रिप्स, तथा लीफ हॉपर जैसे कोमल त्वचा वाले कीटों के नियंत्रण हेतु किया जाता है।

धूमक (Fumigants)

धूमक ऐसे रासायनिक पदार्थ होते हैं जो या तो साधारण ताप पर स्वयं गैस के रूप में होते हैं अथवा रासायनिक क्रिया द्वारा वे गैस के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। गैस के रूप में ये कीटों के श्वसन-छिद्रों के रास्ते से श्वास नलिकाओं में पहुंचकर उनके तंत्रिका-तंत्र को प्रभावित करते हैं, और उन्हें नष्ट कर देते हैं।

धूमक की विशेषताएं

आदर्श धूमक की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1) धूमक को शीघ्रता से वातावरण में विषैली वाष्प बन जाना चाहिए।

2) धूमक को वस्तुओं के अंदर प्रवेश करने वाला होना चाहिए।

3) धूमक को वायु के समान हल्का होना चाहिए ताकि गोदाम में ऊपर नीचे सभी स्थानों पर उसकी विषैली वाष्प फैल जाए।

4) धूमक को आग पकड़ने वाला नहीं होना चाहिए।

5) धूमक को रबर धातुओं और वार्निश आदि पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला नहीं होना चाहिए।

6) जिस पदार्थ पर धूमक प्रयोग में लाया गया हो, उसके साथ मिलकर इसको कोई अन्य विषैला पदार्थ नहीं बनाना चाहिए।

7) धूमक विस्फोटक नहीं होना चाहिए।

8) ऐसा न हो जिसका बीजों की अंकुरण शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।

धूमक प्राय: वायु-निरोधी स्थानों में ही प्रयोग किए जाते हैं। कभी-कभी धूमकों को वायुशून्य (निर्वात) स्थानों में भी प्रयोग किया जाता है। इन स्थानों पर इसका प्रभाव शीघ्रता से होता है। धूमक दरारों तथा छिपे स्थानों में रहने वाले कीटों को मार सकने में सक्षम होते है। ये स्तनधारियों के लिए भी अत्यंत विषैले होते हैं। अत: इनके प्रयोग में पर्याप्त सावधानी बरतनी आवश्यक है।

कुछ प्रमुख धूमकों का विवरण इस प्रकार है -

1) कार्बनडाईसल्फाइड (CS_2)

यह रंगहीन द्रव है यह 46.3 डिग्री सेल्सियस पर वाष्प में परिवर्तित हो जाता है। यह शीघ्र आग पकड़ता है, अत: इसके प्रयोग के स्थान पर बीड़ी, सिगरेट नहीं पीना चाहिए। इसका प्रयोग अन्न के गोदामों, अन्न सुरक्षा भंडारों, मिलों, वस्त्र भंडारों में किया जाता है। इसकी एक पौंड मात्रा को 100 घनफुट के हिसाब से प्रयोग करते है। इसका प्रयोग भंडारित आलुओं में नहीं करना चाहिए क्योंकि इसके प्रभाव से उनमें अंकुरण प्रारंभ हो जाता है।

2) कार्बन टेट्राक्लोराइड (CCl_4)

यह एक रंगहीन, तीक्ष्ण गंध वाला द्रव है। इसका वाष्पन ताप 77 डिग्री सेल्सियस से.ग्रे. है। इसकी विशेषता यह है कि इसकी गैस आग नहीं पकड़ती। तीखी गंध होने के कारण इसकी उपस्थिति का पता आसानी से चल जाता है। इसमें आग न पकड़ने का गुण होने के कारण इसे अन्य रसायनों के साथ भी प्रयोग किया जा सकता है। इससे दो लाभ होते है: एक तो आग लगने का भय नहीं रहता, और दूसरा यह कि पदार्थ का आयतन बढ़ जाने से उसके वितरण तथा प्रवेश करने की क्षमता बढ़ जाती है। इसका प्रयोग उगते पौधों पर नहीं करना चाहिए।

3) क्लोरोपिक्रिन (CCl_3NO_2)

साधारण ताप पर यह हल्के पीले रंग का द्रव होता है। इसे अश्रुगैस भी कहते हैं। इसे तनु पिक्रिक अम्ल को ब्लीचिंग चूर्ण पर डालकर तैयार किया जाता है इसका वाष्पन ताप 112.4 सें.ग्रे. होता है। यह पानी से लगभग 1.7 गुना भारी होता है। इसकी गैस हवा से 5.7 गुना भारी होती है। यह कीटों के लिए तो अधिक घातक है किंतु मनुष्य एवं अन्य जानवरों के लिए कम है। इसका प्रमुख अवगुण यही है कि यह अनाजों तथा अन्य उपचारित वस्तुओं पर जम जाती है जिससे बीजों के उगने की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(4) एथिलीन डाईब्रोमाइड ($C_2H_4Br_2$)

यह एक रंगहीन तरल पदार्थ होता है जिसमें क्लोरोफार्म की सी गंध होती है। यह धीरे-धीरे वाष्प बनाती है। यह बाजार में फ्यूमगैस, ब्रोमोफ्यूम, ई.डी.बी. डोफ्यूम, डब्ल्यू-85 के नाम से 100,83,75,40 तथा 20 प्रतिशत के घोल तथा 75 प्रतिशत पानी में घुले तरल रूप में मिलता है। यह जंतुओं के परजीवी, गोदाम के कीट और भूमि में रहने वाले जीवों जैसे (सूत्रकृमि याने निमेटोड) को मारने में प्रभावकारी है।

5) मेथिल ब्रोमाइड (CH_3Br)

मेथिल ब्रोमाइड सामान्य ताप पर भी गैस के रूप में रहता है। इसकी गैस हवा से 3.3 गुना भारी रहती है। यह बाजार में ब्रोमोथेन वीडफ्यूम, EDCO, ट्राइबोम, प्रेफ्यूम के व्यापारिक नाम से मिलता है। यह कम ताप पर भी प्रभावशाली है। यह उपचारित वस्तुओं के अंदर शीघ्रता से प्रवेश कर जाता है। इसकी गैस कीटों के लिए कम विषैली है तथा उन्हें धीरे-धीरे मारती है। इसको प्राय: मिलों, गोदामों तथा खाद्य पदार्थों में कीट-नियंत्रण के लिए प्रयोग किया जाता है।

6) हाइड्रोसायनिक एसिड (HCN)

इसे हाइड्रोजन सायनाइड भी कहते हैं। यह अत्यंत विषैली, ज्वलनशील, रंगहीन गैस होती है। इसका प्रभाव श्वसन-तंत्र एवं तंत्रिका-तंत्र पर पड़ता है। यह बाजार में वैलसिड साइनो, साइमैग साइक्लोन साइक्लो बी, जैकोन-डिस्कोइड, पूसिक एसिड आदि व्यापारिक नाम से डस्ट, ग्रेन्यूल तथा तरल रूप में सिलिंडरों में मिलती है। अत्यंत विषैली होने के कारण इसके प्रयोग में अत्यंत कुशल व्यक्ति की आवश्यकता होती है। इसका प्रयोग प्राय: चूहा-नियंत्रण हेतु बिलों में किया जाता है।

7) पैरा-डाई-क्लोरोबेंजीन ($C_6H_4Cl_2$)

यह सफेद रवेदार ठोसपदार्थ होता है। इसकी गैस हवा से 5 गुना भारी होती है। यह भूमि में धूमक विष के रूप में अधिक प्रयोग किया जाता है। यह 17^0 से.ग्रे. पर वाष्प बन जाता है। इसका प्रयोग जड़ बेधकों, रूट एफिड, शकरकंद वीविल, कपड़ों के कीटों को नष्ट करने हेतु किया जाता है।

8) ई.डी.सी.टी. (एथिलीन डाईक्लोराइड कार्बन टेट्राक्लोराइड)

यह एथिलीन डाई क्लोराइड (3 भाग) तथा कार्बन टेट्राक्लोराइड (1 भाग) का मिश्रण होता है। इसे क्लोरोसोल भी कहते हैं। यह बाजार में क्लिोटटैरा के नाम से मिलता है। यह द्रव होता है जो कमरे के ताप पर वाष्प बन जाता है।

यह हवा से 3 गुना भारी होता है। इसलिए वाष्प ऊपर से नीचे की ओर बैठता है। इसका प्रयोग मकानों, स्टोर हाउस, संदूकों, अन्न गोदामों तथा बीज गोदामों आदि में किया जाता है।

9) ऐलुमिनियम फॉस्फाइड

यह मटमैले सफेद रंग का ठोस पदार्थ होता है जो हवा की नमी से ऐलुमिनियम हाइड्रेड में परिवर्तित होकर फॉस्फीन गैस उत्पन्न करता है। यह बाजार में फॉस्टोक्सिन, सेलफॉस, डेलीसिया के नाम से ठोस गोलियों के रूप में मिलता है। सेलफॉस गोलियां, ऐलुमिनियम फॉस्फाइड तथा अमोनियम कार्बोनेट की बनी होती है। इसे गोदामों में अनाज की सुरक्षा तथा खेतों में चूहों के बिलों में चूहा-नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है।

कृंतकनाशी (Rodenticides)

कुतर कर खाने वाले जीवों यथा-चूहे, चमगादड़, गिलहारी के नियंत्रण-हेतु प्रयुक्त पीडक रसायनों को कृंतकनाशी कहा जाता है। प्रमुख कुंतकनाशियों का विवरण इस प्रकार है-

1) जिंक फॉस्फाइड (Zinc phosphide)

यह एक स्लेटी काले रंग का चूर्ण विष है जिसमें लगभग 60 प्रतिशत जिंक फॉस्फेट होता है जो नमी की उपस्थिति में फॉस्फीन गैस उत्पन्न करता है। एक भाग जिंक फॉस्फाइड, एक भाग तेल तथा 48 भाग अनाज को लेकर विषैला चारा बनाया जाता है। सर्वप्रथम अनाज में तिल या मूंगफली के तेल को भलीभाँति मिला दिया जाता है। तत्पश्चात् उसमें जिंक फॉस्फाइड को लकड़ी से भलीभांति मिला दिया जाता है। इस प्रकार इसकी 30 ग्राम मात्र प्रति बिल के अनुसार प्रयोग करना चाहिए।

2) बेरियम कार्बोनेट (Barium carbonate)

बेरियम कार्बोनेट एक प्रभावी कृंतकनाशी है। इसका प्रयोग भी जिंक

फॉस्फाइड की ही भांति किया जाता है। इसका एक भाग भोजन पदार्थ के 6 भाग के साथ मिलाकर प्रयोग करते हैं।

3) ऐलुमिनियम फॉस्फाइड (Aluminium phosphide)

इसे सेलफॉस, फॉस्फ्यूम इत्यादि नामों से जाना जाता है। इसकी टिकिया को बिल के अंदर रखकर चूहों को नियंत्रण करते हैं। 3 ग्राम की चौथाई टिकिया या 0.6 ग्राम की एक टिकिया प्रति बिल के अनुसार रखते है।

4) वारफेरिन (warfarin)

यह स्टारफिन या रेटाफेरिन इत्यादि नामों से बाजार में मिलता है। एक भाग दवा, एक भाग तेल तथा 19 भाग अनाज को मिलाकर विषैला चारा बनाया जाता है।

5) रेड स्क्विल (Red squill)

यह चूहों को मारने का विशेष विष है। इसे खाकर चूहे उल्टी नहीं करते। इसमें कोई स्वाद नहीं होता, इसलिए चूहे इसे आसानी से खा जाते हैं। बाजार में इसका सूखा चूर्ण और तरल रसायन भी मिलता है। इसका एक भाग 9 भाग आटे में मिलाकर प्रयोग करते हैं।

6) स्ट्रिकनिन (Strychnin)

यह अत्यंत विषैला विष होता है। अत: इसका प्रयोग तभी करना चाहिए जब कोई और विष उपलब्ध न हो।

7) अंटू (एल्फा नैफ्थिल थायो यूरिया) (Alpha Napthyl Thio Urea)

यह विष विशेष रूप से नार्वे के चूहों (रेट्स नोर्वोजिक्स) के नियंत्रण के लिए प्रयोग किया जाता है। विष का एक भाग रात भर भीगे अनाज के 50 भाग में मिलाकर प्रयोग करते हैं।

सूत्रकृमिनाशी (Nematicides)

धागे के आकार के कृमि सूत्रकृमि कहलाते हैं। इन्हे ईल वर्म (Eel worms) भी कहा जाता है। जड़ों में मूल गांठ कृमि (Root knot nematode) कहते हैं। सूत्रकृमि जल और मृदा दोनों में पाए जाते हैं। मृदा में रहने वाले सूत्रकृमि ही अधिकतर पौधों में रोग फैलाते है। सूत्रकृमियों को नष्ट करने वाले रसायनों को सूत्रकृमिनाशी (Nematicides) कहा जाता है। कुछ प्रमुख सूत्रकृमिनाशियों का विवरण इस प्रकार हैं-

1) डी.डी. मिश्रण (D.D. Mixture)

यह भूमि में प्रयोग किए जाने वाला धूमक विष है। यह भूरे रंग का होता है। इसका आपेक्षिक घनत्व 25 डिग्री सेल्यिस पर 1.21 होता है। यह पानी में कम तथा कार्बनिक विलायकों में अधिक विलेय होता है। इसका प्रभाव बीजों के अंकुरण पर पड़ता है। इसलिए इसका प्रयोग फसल बोने से 3 या 4 सप्ताह पूर्व किया जाता है। इससे 500 लिटर प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग किया जाता है।

2) नेमेगन (Nemegan)

यह भी भूमि में प्रयोग किए जाने वाला धूमक विष है। डी.डी. मिश्रण की अपेक्षा यह अधिक प्रभावशाली है। यह भूरे रंग का पदार्थ है। यह पानी में कम विलेय तथा कार्बनिक विलायकों में अधिक विलेय है। यह आसानी से प्रयोग किया जा सकता है। इसको खड़ी फसल में भी पानी के साथ प्रयोग कर सकते हैं।

3) वेपैम (Vapam)

यह सफेद रंग का रवेदार पदार्थ होता है जो पानी में साधारण रूप से विलेय है। यह बाजार में 31 प्रतिशत घोल के रूप में मिलता है। यह एक अच्छा सूत्रकृमिनाशी है। इसे 30 लिटर प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करते है।

4) वी.सी. 13 (V C-13) **या हेक्सानीमा**

यह दो रसायनों डाई क्लोरोफेनिल तथा डाई एथिल फॉस्फोरोथायोनेट का मिश्रण है। यह कम ज्वलनशील है तथा पौधों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं छोड़ता है अत: इसको खड़ी फसल में भी प्रयोग किया जा सकता है। यह बाजार में 5 प्रतिशत ग्रेन्यूल के रूप में मिलता है। इसे 10-20 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करते हैं।

5) नेमोफॉस (Nemaphos)

यह 10 प्रतिशत ग्रेन्यूल के रूप में मिलता है। विलयन के रूप में इसका प्रयोग 5-10 लिटर प्रति एकड़ की दर से किया जाता है। यह 46 प्रतिशत जीनेफॉल तरल के रूप में भी मिलता है। इसका प्रयोग 4-5 लिटर प्रति एकड़ की दर से करते हैं।

उपर्युक्त सूत्रकृमिनाशियों के अतिरिक्त निम्नलिखित सर्वांगीण विष भी सूत्रकृमिनाशी की तरह कार्य करते हैं-

i) नेमाकार 10 प्रतिशत ग्रेन्यूल

ii) कार्बोफ्यूरान 3 प्रतिशत ग्रेन्यूल

iii) फोरेट 10 प्रतिशत ग्रेन्यूल

iv) एल्डीकार्ब 10 प्रतिशत ग्रेन्यूल

v) डेसानिट 5 प्रतिशत ग्रेन्यूल

vi) डाईसिस्टान 5 प्रतिशत ग्रेन्यूल

इन सभी की लगभग 20-30 किग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग की जाती है।

कवकनाशी (Fungicides)

पौधों में विभिन्न प्रकार के रोग फैलाने वाले कवकों को नष्ट करने के लिए प्रयोग किए जाने वाले रसायनों को कवकनाशी कहा जाता है।

कवकनाशियों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जाता है-

1) सल्फर कवकनाशी

2) कॉपर कवकनाशी

3) मरकरी कवकनाशी

4) अन्य कवकनाशी

अ) क्विनोन यौगिक

ब) विषमचक्रीय (हेटरोसाइक्लिक) नाइट्रोजन यौगिक

स) आर्गेनोटिन यौगिक

द) सर्वांग कवकनाशी

इनका विवरण इस प्रकार है:

1) सल्फर कवकनाशी-

सल्फर एक महत्वपूर्ण कवकनाशी है जिसका प्रयोग विशेष रूप से चूर्णिल आसिता (चूणी मिल्ड्यू) के नियंत्रण हेतु किया जाता है। तात्विक सल्फर, लाइम सल्फर इत्यादि कवकनाशियों के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

आर्गेनिक सल्फर यौगिकों में डाइथायोकार्बामेट प्रमुख हैं। इस वर्ग में जीरम, फरबेम, थीरम प्रमुख कवकनाशी हैं।

एथिलीन विष डाइथायोकार्बामेट अम्ल के लवण सल्फर कवकनाशी के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। इनमें नेबेम, जिनेब, मेनेब, वैपैम प्रमुख हैं।

2) कॉपर कवकनाशी-

कॉपर कवकनाशी का प्रयोग मुख्य रूप से मृदु रोमिल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू) के नियंत्रण हेतु किया जाता है। कॉपर सल्फेट और चूने के मिश्रण (बोर्डो मिश्रण) को विशेष रूप से कवकनाशी के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त बरगंडी मिश्रण तथा चेस्टनट यौगिक को भी कवकनाशी के रूप में प्रयोग करते हैं। कॉपर ऑक्सीक्लोराइड, कॉपर सल्फेट तथा कॉपर ऑक्साइड यौगिक मुख्य रूप से कवकनाशियों के रूप में प्रयोग किए जा रहे हैं।

3) मरकरी कवकनाशी

मरकरी कवकनाशियों में मरक्यूरस क्लोराइड (कैलोमल) मुख्य रूप से बीजोपचार में कवकनाशी के रूप में प्रयोग किया जाता है। फ्यूजेरियम के नियंत्रण हेतु भी इसका प्रयोग किया जाता है। ऐलिफैटिक शृंखला के आर्गेनोमरकरी यौगिकों में एथिल मरक्यूरिक क्लोराइड, सेरेसान-एम, पेनोजेन तथा एगलॉल प्रमुख हैं। ऐरोमैटिक शृंखला के आर्गेनोमरकरी यौगिकों में अस्पुलान, जर्मीसान तथा सेनेसान प्रमुख हैं।

4) अन्य कार्बनिक कवकनाशी

अन्य कार्बनिक कवकनाशियों में क्विनोन यौगिक, विषमचक्रीय नाइट्रोजन यौगिक विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

क्विनोन यौगिकों में क्लोरेनिल डाइक्लोन तथा डाइथायनॉन प्रमुख हैं।

विषमचक्रीय नाइट्रोजन यौगिकों में केपटॉन, फोलपेट, डाइफोलेटान तथा मेसल्फान प्रमुख हैं।

ऑर्गेनोटिन यौगिकों में ब्रेस्टॉन, ड्यूटर प्रमुख हैं। सर्वांगीण कवकनाशियों के रूप में वीटावेक्स, प्लांटवेक्स प्रमुख हैं।

खरपतवारनाशी (Weedicides)

खरपतवारों को नष्ट करने वाले रसायनों को खरपतवारनाशी कहा जाता है। खरपतवारों की रोकथाम के लिए विभिन्न रसायन समय समय पर इस्तेमाल में लाए जाते हैं। प्रारंभ में लवण, नमक, राख तथा मिलों से निकले बेकार पदार्थों को खरपतवारों की रोकथाम के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा है। लेकिन द्वितीय महायुद्ध के बाद से खरपतवार नियंत्रण में रसायनों का इस्तेमाल किया जाने लगा है। इस प्रकार पिछले 60 वर्षों में लगभग 1000 शाकनाशियों की खोज की गई है जिन्हें विभिन्न फसलों में कृषि-क्रियाओं के अनुसार इस्तेमाल किया जाता है। खरपतवारनाशियों को मुख्य रूप से खरपतवारों की प्रकृति के अनुसार वर्गीकृत किया गया है। इसमें वरणात्मक खरपतवारनाशी वे हैं जो किसी विशेष जाति के खरपतवारों को नष्ट करने की क्षमता रखते हैं। इन्हें तीन भागों में बांटा जाता है: संपर्क में आने वाले, अंतरित होने वाले तथा जड़ों द्वारा लिए जाने वाले। संपर्क में आने वाले शाकनाशी केवल खरपतवारों के पौधों के विभिन्न भागों पर अपना प्रभाव दिखाते हैं। साथ ही जड़ों के ऊपर इस्तेमाल किए जाने वाले खरपतवार बोआई से पहले तथा बोआई के बाद एवं खड़ी फसल में दिए जाते हैं। ये खरपतवारनाशी विशेष खरपतवारों को ही नष्ट करते हैं तथा मुख्य फसल पर इनका प्रभाव नहीं होता है। अवरणात्मक खरपतवारनाशी अपने संपर्क में आने वाली सभी वनस्पतियों को नष्ट कर देते हैं। खाली खेतों, नहर, सड़कों, रेल की पटरी के किनारे, बंजर भूमियों पर उगे खरपतवारों को इस प्रकार के खरपतवारनाशियों द्वारा नष्ट किया जाता है।

खरपतवारनाशियों का वर्गीकरण

1) खरपतवारनाशियों का वर्गीकरण- इस पद्धति में शाकनाशियों को दो वर्गों अकार्बनिक रसायनों एवं कार्बनिक रसायनों में बांटा जाता है।

क) अकार्बनिक शाकनाशी : ऐतहासिक दृष्टि से इनका महत्व सबसे पहले प्रयोग में लाए गए शाकनाशियों के रूप में है। भस्म, नमक आदि का प्रयोग खरपतवार-नियंत्रण हेतु आदिकाल से ही किया जा रहा है।

रसायन उद्योग के अनेक उपोत्पादों का प्रयोग भी शाकनाशियों की भाँति किया जाता है, जैसे स्मेल्टर वेस्ट, आर्सेनिक ट्राइऑक्साइड, आयरन सल्फेट आदि। कॉपर सल्फेट का उपयोग भी अनाजों की फसलों में खरपतवारों को नष्ट करने के लिए किया जाता था। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में आर्सेनिक युक्त यौगिक, विशेषकर आर्सेनिक ट्राइऑक्साइड का उपयोग मृदा को निर्जर्मीकृत करने के लिए किया जाने लगा। निर्जर्मीकरण हेतु इनकी बहुत अधिक अर्थात् 200 से 400 किलोग्राम प्रति एकड़, मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। अमोनियम सफामेट एक अपेक्षाकृत नया अकार्बनिक शाकनाशी है जो अधिकतर झाड़ियों व काष्ठीय पौधों को नष्ट करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। बोरेट यौगिक भी काफी समय तक उपयोग में लाए गए थे। सल्फ्यूरिक एसिड, सोडियम क्लोरेट इत्यादि भी शाकनाशियों के रूप में प्रयोग किए गए हैं।

कुछ अकार्बनिक शाकनाशियों की सूची इस प्रकार है:

अमोनियम सल्फामेट

अमोनियम थायोसाइनेट

कैल्सियम सायनेमाइड

क्यूप्रिक सल्फेट

हाइड्रोक्लोरिक अम्ल

सोडियम आर्सेनाइट

सोडियम टेट्राबोरेट

सोडियम क्लोरेट

सोडियम क्लोराइड

सल्फ्यूरिक अम्ल

ख) **कार्बनिक शाकनाशी :** शाकनाशी के रूप में पेट्रोलियम तेल पदार्थों का प्रयोग एक लंबे अर्से से हो रहा है। कार्बनिक शाकनाशियों का प्रयोग

सर्वप्रथम 1932 में डी एन ओ सी (3, 5-डाइनाइट्रो ऑर्थो क्रीसॉल) से प्रारंभ हुआ। कार्बनिक शाकनाशियों के प्रारंभिक इतिहास की प्रमुख घटना 2, 4-डी की खोज है, क्योंकि यह रसायन बहुत कम मात्रा में प्रयोग किया जाता है तथा क्रिया भी बहुत ही वरणात्मक है। 2, 4-डी के बाद कई अन्य कार्बनिक शाकनाशियों पर भी क्रमबद्ध कार्य प्रारंभ हुआ। इनमें से कुछ का विवरण इस प्रकार है :

1) **पेट्रोलियम तेल :** पेट्रोलियम तेल अधिकतर हाइड्रोकार्बनों का मिश्रण होता है। इसमें कुछ मात्रा में नाइट्रोजन और गंधयुक्त रसायन भी पाए जाते हैं। इनमें असंतृप्त शृंखला वाले यौगिक, ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बन की ऐल्केन शृंखला के यौगिक भी पाए जाते हैं। पेट्रोलियम पदार्थ कई ग्रेडों में मिलते हैं, जैसे पेट्रोल, मिट्टी का तेल, डीजल इत्यादि। पेट्रोलियम हाइड्रोकार्बन संपर्क शाकनाशी होते हैं और अधिकतर संपूर्ण वनस्पति को नष्ट करने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। इनका अणु भार व असंतृप्तता का अंश बढ़ने के साथ-साथ पौधों पर इनकी विषाक्तता भी बढ़ती जाती है। आम संपर्क खरपतवारनाशी तेल आमतौर पर असंतृप्त व ऐरोमैटिक यौगिकों के बने होते हैं। पेट्रोलियम तेल पौधे की पत्तियों में गैस विनिमय को रोक देते हैं तथा ऊतकों में प्रवेश करके उन्हें बंद कर देते हैं।

2) **फीनॉल :** इस में डी एन ओ सी, डी एन बी पी तथा पी सी पी मुख्य हैं। ये कार्बनिक रसायनों में सबसे पहले पहचाने व उपयोग में लाए गए थे। पी सी पी एक वरणात्मक, संपर्की, पत्तियों पर छिड़का जाने वाला शाकनाशी है। यह पत्तियों पर जिस स्थान पर गिरता है, वहाँ तुरंत ऊतकक्षय व निर्जलीकरण उत्पन्न करता है। यह लवण और एस्टर स्वरूपों में मिलता है। यह पौधे में जीवद्रव्य कुंचन व प्रोटीन अवक्षेपण की जैसी दशाएं पैदा करने के लिए जिम्मेदार है। चूंकि यह मृदा में शीघ्र ही अवशोषित हो जाता है इसलिए इसकी बहुत अधिक मात्रा उपयोग करनी पड़ती है। डी एन पी पी एक वरणात्मक, अत्यंत विषाक्त शाकनाशी है। मटर इत्यादि फसलों में इसका उपयोग किया जाता है। डाइनाइट्रोफिनोल उचित फॉस्फोनिलीकरण में रासायनिक बंधुता को

तोड़ने का कार्य करते हैं, श्वसन-दर बढ़ाते हैं। तथा प्रोटीन को विकृत करते हैं।

3) **क्लोरोफीनॉक्सी यौगिक** : कार्बनिक शाकनाशियों का यह एक बड़ा वर्ग है, जिसके सदस्य वरणात्मक व पौधों में भली प्रकार अंतरित होने वाले रसायन होते हैं। इस वर्ग के प्रमुख सदस्य हैं, 2, 4-डी, 2,4,5-टी, एम.सी पी ए, एम सी बी पी, 2,4,5-टी पी तथा 2, 4-डी बी, 2,4-डी जो अम्ल, लवण, एस्टर तथा एमाइड स्वरूपों में मिलता है। पौधों के एक व्यापक वर्ग के प्रति यह विषावत पाया गया है। द्विपत्री की अपेक्षा एकपत्री पौधे इसके प्रति अधिक सहिष्णु होते हैं। 2, 4, 5--टी काष्ठीय पौधों को नष्ट करने के लिए उपयोग में लाया जाता है, और 2, 4, 5-डी से अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। एम सी पी बी व 2, 4-डी बी बीटा ऑक्सीकरण द्वारा ऐसीटिक अम्ल में बदल कर वरणात्मक शाकनाशी की तरह प्रभाव डालते हैं। ये रसायन पौधे को किस प्रकार मारते हैं, इसे पूर्णतया समझा नहीं जा सका है। इसकी क्रियाविधि से संबंधित कई समस्याएं सामने आती हैं, जैसे श्वसन-अवक्षय, कोशिकीय प्रचुरोद्भवन, विषाक्त पदार्थों का बनना इत्यादि।

4) **प्रतिस्थापित ऐलिफैटिक अम्ल** : इस वर्ग के मुख्य रसायन टी. सी ए डालापॉन का शाकनाशी के रूप में प्रयोग लंबे अर्से से किया जा रहा है। ये रसायन विशेष रूप से घास कुल के पौधों को नष्ट करने में प्रभावशाली पाए गए हैं, किंतु ये द्विपत्री पौधों को भी नष्ट करते हैं। ये जड़ों द्वारा अवशोषित होते हैं। वैसे डालापॉन का प्रभाव पत्तियों पर छिड़कने पर अधिक पड़ता है। टी. सी. ए. प्रभावशाली प्रोटीन अवक्षेपक है। डालापान एक प्रबल अम्ल है जो पत्तियों द्वारा अवशोषित व अंतरित होता है। एक बार पौधे में पहुँचने पर वह सापेक्षतया स्थिर हो जाता है और आसानी से उपापचित नहीं होता है। किंतु पौधे के बाहर घोल रूप में रहने पर यह जल अपघटित हो जाता है और अंततः पाइरूविक अम्ल बनाता है। डालापॉन ठीक टी सी ए की भाँति क्रिया करता है, किंतु यह टी सी ए की अपेक्षा अधिक तरह से व अधिक

मात्रा में अंतरित होता है। यह फ्लोएम व जाइल दोनों के ही द्वारा तीव्र गति से अंतरित होता है।

5) **बेन्जोइक अम्ल और फिनाइल ऐसीटिक अम्ल** : इस वर्ग के मुख्य रसायन 2, 3, 6-टी बी ए, डाइकेम्बा तथा ऐमीबेन है। ये रसायन आम तौर पर प्रबल अम्ल होते हैं और जल में विलेय होते हैं। ये सर्वांगीण वृद्धि नियंत्रक पदार्थ हैं, किंतु इनकी क्रियाविधि ज्ञात नहीं है। डाइकेम्बा पर किए गए परीक्षणों से पता चलता है कि यह रोधी पौधों में उपापचित हो जाता है। एमीबेन प्रोटीन के साथ संयुग्मी पदार्थ बनाते हैं और अधिकांशतया पौधों में स्थिर हो जाता है।

6) **प्रतिस्थापित एमाइड** : इस वर्ग के मुख्य रसायन सी डी डी ए, एन पी ए, स्टाम एफ-34, एम एच, डाइफीनामिड व प्रोपानिल है। एमाइड शाकनाशी विभिन्न गुण वाले होते हैं तथा उनका परिसर प्रतिस्थापित हेली ऐसीटेमाइडों से ऐरोमैटिक एमाइडो और एन-मेथ्थैलामिक अम्ल तक होते है। इनके जैविक गुणों में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है।

सी डी डी ए घास कुल के पौधों को अंकुरण से पहले ही नष्ट कर देने वाला शाकनाशी है जो मृदा व पौधों में शीघ्र ही निम्नीकृत हो जाता है। डाइफीनामिड भी अंकुरण से पहले खरपतवारों को नष्ट करने वाला शाकनाशी है, जो अधिकतर जड़ों द्वारा अवशोषित होकर पौध अवस्था में ही पौधों को मार डालता है। प्रोपानिल अंकुरण के बाद हानि पहुँचाने वाला शाकनाशी है जो कई प्रकार के खरपतवारों को नष्ट करता है। इसका प्रभाव संस्पर्शी किस्म का होता है। यह हिल प्रतिक्रिया का एक शक्तिशाली निरोधी है।

7) **नाइट्रोऐनालीन** : इस वर्ग के रसायनों में ट्राइफ्लयूरेलिन व बेनीपिन मुख्य हैं। नाइट्रोलियन इस वर्ग का एक नया रसायन है। कुछ प्रतिस्थापित डाइनाइट्रोटील्यूडीन यौगिकों में अंकुरण से पहले की खरपतवारों को नष्ट करने की उच्च क्षमता पाई जाती है। ये पदार्थ पानी में कम विलेय होते हैं तथा मृदा में अवशोषित होने का गुण रखते हैं, जिससे उनके पानी में

घुलकर बह जाने का भय नहीं रहता है। ये दोनों रसायन पैरा-बैंगनी प्रकाश द्वारा निम्नीकृत हो जाते हैं। ये थोड़े बहुत वाष्पशील भी होते हैं। ये वरणात्मक शाकनाशी हैं और दलहनी फसलों में खरपतवारों को नष्ट करने के लिए विशेष उपयोगी है।

8) **प्रतिस्थापित यूरिया:** इस वर्ग के मुख्य रसायन मोन्यूरॉन, डाइयूरॉन, लाइन्यूरॉन, नेबूरॉन, फेन्यूरॉन इत्यादि है। अंकुरण से पहले एकवर्षी खरपतवारों को नष्ट करने के लिए इनका उपयोग मृदा निर्जलीकारकों की भाँति किया जाता है। वे मृदा में अधिशोषित हो जाते हैं और फिर पौधों की जड़ द्वारा अवशोषित होते हैं। पौधे में अंतरित होने के बाद ये प्रकाश संश्लेषण की क्रिया का निरोध करते हैं। ये सूक्ष्मजीवियों द्वारा मृदा में व पौधों से उपापचित हो जाते हैं।

9) **कार्बामेट** : प्रोफेन अथवा आइ पी सी, सी आई पी सी, टर्बुटॉल, बारवान आदि इस वर्ग के प्रमुख रसायन हैं। कार्बामेट के शाकनाशी गुणों को सबसे पहले 1945 में देखा गया था। इस वर्ग के अधिकतर शाकनाशी अंकुरण से पहले प्रभावशाली होते हैं और वरणात्मक होते हैं। कुछ शाकनाशी अंकुरण के बाद भी हानि पहुँचाते हैं। ये कोशिका-विभाजन तथा ऊतक वृद्धि को रोक देते हैं। इससे प्रभावित पौधे एकदम तो नहीं मरते, किन्तु वे कमजोर हो जाते हैं, फलत: कालांतर में फसल प्रतिस्पर्धा द्वारा नष्ट हो जाती हैं। ये अधिकतर जड़ द्वारा अवशोषित होकर जाइलम के माध्यम से पौधे में अंतरित होते हैं। इनके अणु मृदा में जीवाणुओं द्वारा निम्नीकृत होते हैं।

10) **थायोकार्बामेट** : इस वर्ग के लगभग सात रसायन आजकल शाकनाशियों के रूप में उपलब्ध हैं। जैसे ई पी टी सी, पेब्युलेट, वनोलैट मोलीनेट, डाइलेट ट्राइलेट इत्यादि। ये रसायन पौधे व मृदा में उपापचित हो जाते हैं। चूंकि वे वाष्पशील होते हैं, इसलिए इनको फसल की बोआई से पहले खेत में छिड़ककर मिट्टी में मिला दिया जाता है। मृदा में इनको जीवाणु भी उपापचित करते हैं।

11) **सममित ट्राएजीन** : इस वर्ग में अनेक रसायन है, जैसे सेमाजीन, एट्राजीन, पोपाजीन, प्रोमीट्रीन इत्यादि। इसके अनेक उपवर्ग हैं, जो गुणों के आधार पर अलग-अलग किए गए हैं, जैसे क्लोरोलिन, ट्राएजीन, मीथॉक्सी ट्राएजीन व थायोमेथिल ट्राएजीन वर्ग आदि। ट्राएजीन प्रकाश संश्लेषण की क्रिया का तीव्र निरोधी है। यह वरणात्मक प्रकृति का होता है और यह गुण पौधों द्वारा शाकनाशी की अवशोषित मात्रा को अक्रिय बनाने की क्षमता पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, मक्का के रोधी पैधों में क्लोरोट्राएजीन कोहाइड्रॉक्सी-संजात में बदलकर शाकनाशी को अक्रिय कर देने की क्षमता होती है।

12) **ट्राएजोल** : इस वर्ग का मुख्य उदाहरण ऐमीट्रोल है। यह पौधों की पत्तियों द्वारा अवशोषित होता और फ्लोएम कोशिकाओं द्वारा अंतरित होता है। यह पौधे की बढ़वार को रोकता है।

13) **प्रतिस्थापित यूरोसिल्स** : ये रसायन सबसे पहले 1962 में प्रयोग किये गए थे। इस वर्ग में दो और मुख्य रसायन हैं : ब्रोमासिल व टर्बासिल ब्रोमासिल अनेक संकरी व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नष्ट करता है। इसको मृदा पर डाल दिया जाता है तथा यह पौधों में प्रवेश करके प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया को बंद करता है। टर्बासील एक वरणात्मक शाकनाशी है जिसका उपायोग गन्ने, पुदीना, नीबूवर्गीय फसलों पर तथा कई अन्य बहुवर्षी फसलों में किया जाता है। यह भूमि में मृदा जीवाणुओं द्वारा नष्ट हो जाता है।

15) **प्रतिस्थापित पाइरीडेजीनोन** : पाइराडेजोन इस वर्ग का मुख्य उदाहरण है। यह चुकंदर की फसल में प्रयोग किया जाने वाला एक वरणात्मक शाकनाशी है जो बोने से पहले या उसके तुरंत बाद मिट्टी में छिड़क दिया जाता है। यह कई प्रकार के चौड़ी व संकरी पत्ती वाले खरपतवारों को मारता है।

16) **प्रतिस्थापित नाइट्राइट** : इस वर्ग का मुख्य रसायन डाइक्लोबेनिल है। यह सक्रिय रूप के विभाजित होने वाले विभज्योतकों का एक शक्तिशाली

निरोधी है। यह अंकुरण को भी रोकता है। यह एकपत्री तथा द्विपत्री, दोनों ही प्रकार के पौधों पर प्रभाव डालता है। इसके अतिरिक्त यह प्रकंदो, गाँठों, भूस्तारियों जैसे कायिक जननांगों के अंकुरण को भी रोकता है। यह अपघटन द्वारा जल्दी ही निम्नीकृत हो जाता है। ये पौधों अथवा, मृदा, दोनों में ही समान रूप में निम्नीकृत होता है।

17) **प्रतिस्थापित पायरीडीन** : इस वर्ग का मुख्य रसायन पिक्लोराम व पायरीक्लोर है। पिक्लोराम अत्यंत सक्रिय वृद्धि नियंत्रण रसायन है जो कई प्रकार के खरपतवारों को नष्ट करता है। लेकिन इसमें अवगुण यह है कि यह भूमि में लंबी अवधि तक टिका रहता है।

18) **बाइपाइरीडिलियम** : इस श्रेणी के दो मुख्य रसायन हैं : डाइक्वॉट व पेराक्वॉट। ये दोनों ही संपर्क वरणात्मक शाकनाशी हैं और उसको तीव्रता से नष्ट करते हैं। इनमें से कोई भी पौधें मे उपापचित नहीं होता है। ये मृदा में शीघ्रता से अवशोषित हो जाते हैं जिसके कारण एक बार मिट्टी में पहुँचने के बाद ये प्रभावशाली नहीं रहते। ये पराबैंगनी प्रकाश में अपनी शक्ति शीघ्र ही खो देते हैं।

II) प्रयोग-विधि के आधार पर वर्गीकरण -

किस समय कौन सा शाकनाशी प्रभावशाली रहेगा, यह स्थान् विशेष व शाकनाशी-विशेषी के प्रकार पर निर्भर करता है। वरणात्मक किस्म के शाकनाशियों को उपयोग के आधार पर, चार भागों में बाँटा जा सकता है- (1) बोआई से पहले, (2) बोआई के बाद, किंतु अंकुरण से पहले, (3) अंकुरण के बाद तथा (4) अंकुरण के बाद नियंत्रित छिड़काव के रूप में दिए जाने वाले शाकनाशी। बोआई से पहले व बाद और अंकुरण से पहले की दशाओं में, पत्तियों पर छिड़के जाने वाले स्थानांतरित व संपर्क शाकनाशियों का इस्तेमाल किया जाता है। उन्हें बीजशैय्या तैयार करने से पहले डाला जाता है। वरणात्मक शाकनाशियों का उपयोग अधिकतर अकृष्य क्षेत्रों में ही होता है। इसके अतिरिक्त जलीय क्षेत्रों व वन क्षेत्रों के काष्ठीय पौधों पर भी इनका उपयोग किया जाता है।

प्रयोग के समय के आधार पर शाकनाशियों का वर्गीकरण

प्रयोग का समय	पत्तियों पर छिड़के जाने वाले शाकनाशी संस्पर्शी	स्थानांतरित	मृदा पर छिड़के जाने वाले शाकनाशी
बोआई से पहले	सोडियम आर्सेनेट सल्फ्युरिक अम्ल डी एन बी पी पी सी पी, बीड आयल, पैराक्वाट एम एस एम ए	2, 4-डी, एम सी पी ए डालापान, एमीट्रोल एम एच	ई पी टी सी, बर्नोलेट, पेब्यूलेट, मोलीनेट, डाइलेट, ट्राइलेट, ट्राइ-फ्लूरेलिन, बेनीपित्त, एन्डोथाल
बोआई के बाद पर अंकुरण से पहले	सोडियम, आर्सेनेट सल्फ्यूरिक एसिड, डी एन बी पी पी सी पी, बीड आयल, पैराक्वाट एम एस एम ए	2, 4-डी एम सी पी ए डालापान, एमीट्रोल	सेमाजीन, एट्राजीन, प्रोमीट्रीन, एमीट्रीन, नाइट्रोपेन, एलाक्लोर, एलाक्लोर, ब्यूटा क्लोर, मोन्यूरॉन, डायूरॉन, ऐमीबेन, सी डी ए ए, टर्ब्यूट्रीन
अंकुरण के बाद	प्रोपेसिल फेन्मीडिफाम डी एन बी पी टर्बासिल कर्ब	2, 4-डी एम सी पीए 2, 4-डी, एम सी पी बी, 2, 4-डी, ई एम स 2, 3 6-टी बी ए, कार्बाइन टब्यूट्रीन	ट्राइशनेल सेन्क्रोट लाइन्यूरॉन टर्बासिल
अंकुरण के बाद नियंत्रित छिड़-काव के रूप में	डी एन बी पी, बीड ऑयल पेरोक्वॉट, डाइक्वॉट,एमएतएमए	2, 4-डी एम सी पी ई 2, 4-डी बी, डालापान	
अकृष्य क्षेत्र	सोडियम आर्सेनिक सोडियम क्लोराड	अमोनियम सल्फामेट आर्सेनिक युक्त यौगिकों	ई पी टी सी, सी एस

	फॉर्टिफाइड तथा ऐरोमेटिक तैल पैराक्वॉट डाइक्वॉट एम एस एम ए	के अम्ल, एमीट्रोल-टी एमीट्रोल-टी डालापान, 2, 4-डी	मोन्यूरॉन, ड्यूरॉन, सेमाजीन ऐट्राजीन, टी सी ए बोरेट सोडियम, क्लोरेऐट ब्रोमासिल
जलीय क्षेत्र	ऐरोमेटिक विलयन कॉपर सल्फेट पैराक्वॉट, एम एस एम ए	2, 4-डी	सेमाजीन, मोन्यूरॉन डायूरॉन क्लोरीनित बेन्जीन यौगिक
पेड़, काष्ठीय	-	2, 4,5-टी+2, 4-डी	-
पौधे		2, 4, 5-टी	-

III) **क्रियाविधि के आधार पर वर्गीकरण**

प्रत्येक शाकनाशी अपने-अपने ढंग से पौधों को प्रभावित करता है। कुछ शाकनाशी अपने संपर्क पौधों को जलाकर नष्ट करते हैं तो कुछ प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया को रोक कर, जिसके फलस्वरूप वे खाद्य पदार्थ नहीं बना पाते और जीवन शक्ति के अभाव में मर जाते हैं। इसलिए शाकनाशियों को इस आधार पर वर्गीकृत करने से उनकी उपयोगिता के बारे में सही जानकारी मिल सकती है।

क) **संपर्क द्वारा बढ़वार को प्रभावित करने वाले शाकनाशी:-** इस प्रकार के शाकनाशी पौधों के ऊतकों पर जलन का सा प्रभाव छोड़ते हैं, जैसे सल्फ्यूरिक अम्ल 5 से 70 प्रतिशत तक, आयरन सल्फेट 20 से 30 प्रतिशत तक, कॉपर सल्फेट 1 से 5 प्रतिशत तक तथा पैराक्वाट 100प्रतिशत तक प्रभाव छोड़ता है। ये रसायन मुख्यत: प्रोटीन को अवक्षेपित करते हैं तथा ऊतकों को विकृत करते हैं। ऐरोमैटिक तेल का मुख्य प्रभाव प्लाज्मा झिल्ली की पारगम्यता को बदलना होता है। वे पौधे पर पड़ते ही प्रकाश-संश्लेषण को रोक देते हैं यद्यपि प्रारंभ में श्वसन बंद नहीं होता।

ख) **कोशिकाओं की बढ़वार का निरोध करने वाले शाकनाशी:-** इस वर्ग में फेनिल कार्बमेट आते हैं। आई पी सी के प्रभाव पर दिए गए कार्यों से पता चलता है कि इस रसायन के छिड़काव से कोशिकाओं का विभाजन व लंबा होना बंद हो जाता है। सी आई पी सी पौधों में प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया को घटता पाया गया है, किंतु इसकी क्रिया-विधि अभी ठीक से ज्ञात नहीं है। ई पी टी सी इत्यादि रसायन जड़ों द्वारा तेजी से पौधों में अवशोषित होते हैं लेकिन कोशिका-निरोधी होने के कारण उनका घातक प्रभाव केवल जड़ विभज्योतक तक ही सीमित होता है।

ट्राइक्लोरोएसीटिक अम्ल व अन्य क्लोरल संजात कोशिकाविष कहलाते हैं। टी सी ए एफ एक प्रभावशाली प्रोटीन अवक्षेपक है। इस वर्ग के कुछ रसायनों का प्रभाव बहुगुणन और कोशिकाद्रव्यी अभिकरण के समान भी होता है। कोल्चीसीन को खोज से पूर्व कृत्रिम बहुगुणित उत्पन्न करने हेतु टी सी ए को ही प्रयोग में लाया जाता था। इसी श्रेणी का एक अन्य रसायन डालापान है जो कि घासों के लिए एक प्रभावशाली विष है। यह फ्लोएम तथा जाइलम, दोनों के ही द्वारा अंतरित होता है और जड़ों व तने की शीर्षस्थ कोशिकाओं को बढ़ने से रोकता है।

ग) **ऑक्सिन किस्म के वृद्धि-नियंत्रक शाकनाशी:-** इस वर्ग में से सब रसायन आते हैं जो प्ररोह की कोशिकाओं की लंबाई को बढ़ाते हैं। इनका प्रभाव आइ ए ए के समान होता है। ये फलों के विकास और विलगन, प्रकाशानुवर्ती और गुरूत्वानुवर्ती अनुक्रियाओं, विभज्योतक कोशिकाओं की बढ़वार, जड़ों के प्रेरण इत्यादि पर प्रभाव डालते हैं। इनका प्रभाव पादप ऑक्सिन के प्रभाव के समान होता है। इस श्रेणी में फीनॉक्सी ऐसांटिक अम्ल, फीनोक्सी प्रोपिओनिक अम्ल, फीनॉक्सी ब्यूटीरिक अम्ल, प्रति-स्थापित ऐरिलोक्सा ऐल्कोहॉल, प्रतिस्थापित बेन्जोइक अम्ल आदि आते हैं।

घ) **वृद्धि-निरोधी तथा अनुवर्ती-अनुक्रिया दर्शाने वाले शाकनाशी:-** ऐलिक हाइड्रोजाइड पौधों की बढ़वार को रोकने वाला रसायन हैं, जो विशेष रूप से श्वसन को रोकता है। यह पौधों में अंतरित होता है और विभज्योतक के लिए विषाक्त होता है। यह शीर्षस्थ प्रभाविता को भी नष्ट करता है। इनका उपयोग

मुख्यत: पौधों की बढ़वार रोकने (न कि उन्हें नष्ट करने) के लिए किया जाता है। यह आई ए ए और 2, 4-डी का प्रतिस्पर्धी निरोधक है।

गुरूत्वानुवर्ती और प्राकशानुवर्ती अनुक्रियाएँ दर्शाने वाला मुख्य रसायन नेफ्थेल थैलामिक अम्ल है परंतु इसका प्रभाव केवल इन्हीं क्रियाओं पर निर्भर नहीं है। ट्राइआइडोबेन्जोइक अम्ल भी गुरूत्वानुवर्तीन पर प्रभाव डालता है। ऐसा इसलिए होता है कि वह आई ए ए की ध्रुवता गति और सक्रियता को नियंत्रित करने की क्षमता रखता है।

ड.) **क्लोरोफिल निर्माण तथा प्रकाश-संश्लेषण का निरोध करने वाले शाकनाशी** : इस श्रेणी में जो शाकनाशी शामिल किए जाते हैं, उनमें प्रमुख हैं-

i) एमोनो ट्राएजोल - यह विभज्योतक व नए ऊतकों (कलियों के अगले सिरों, नई पत्तियों) में पहुँच कर क्रिया करता है तथा कुछ धातुओं जैसे मैगनीज पर कीलेट प्रभाव डालता है। ये धातुएँ एंजाइम-रागी होती हैं और बढ़वार को रोकती हैं। यह हरिमाहीनता की दशा उत्पन्न करता है तथा पत्तियों में प्लास्टिडों के विकास को रोकता है। इसके अतिरिक्त यह एमीनों तथा न्यूक्लीइक अम्लों के विकास को रोकता है। इसके अतिरिक्त यह एमीनों तथा न्यूक्लीइक अम्लों के जीवसंश्लेषण को भी रोकता है।

ii) प्रतिस्थापित यूरिया - इस वर्ग के रसायन पृथकित क्लोरोप्लास्टों में प्रकाश रासायनिक सक्रिया को रोकते हुए पाए गए हैं। मोन्यूरोन प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के दौरान हिल अभिक्रिया का विरोध करता है।

iii) सममित ट्राएजीन - यह रसायनों का एक ऐसा वर्ग है जो कि प्रकाश संश्लेषण की क्रिया पर प्रभाव डालता है। ट्राएजीन अधिकतर जड़ों द्वारा अवशोषित होता है और वाष्पोत्सर्जन प्रवाह द्वारा पत्तियों के सिरों और किनारों पर जमा होता है। बाद में इन स्थानों पर इसकी विषाक्त की सीमा तक बढ़ जाने के कारण यह प्रकाश-संश्लेषण को प्रभावित करता है, पर ट्राएजीन छिड़कते ही उनकी वाष्पोत्सर्जन दर कम

हो जाती है जिससे पर्णरंध्र हो जाते हैं। ट्राएजीन पत्तियों में स्टार्च व ग्लूकोज का निर्माण भी रोक देता है। पौधों में यह अवशोषित तथा जल अपघटित हो जाता है और फसल को प्रभावित नहीं करता।

लिंग प्रलोभक रासायनिक बंध्यक
(Sex lures and chemosterillents)

लिंग प्रलोभक वे प्राकृतिक रसायन है जिनकी सुगंध से नर और मादा परस्पर आकर्षित होते हैं उदाहरण के लिए मेथिल युजीनोल (Methy leugenol) आम की मादा मक्खी डेकस डोर्सेलिस (Dacus dorsalis) को अपनी ओर आकर्षित करता है। ऐसे लिंग प्रलोभक रसायनों को फीरोमोन (Pheromones) कहते हैं। ये कीटों के शरीर की बाह्यस्रावी ग्रंथियों से स्रवित होते हैं।

फीरोमोन दो प्रकार के होते हैं-

1. **मोचक** (Releaser)

इस प्रकार के फीरोमोन शीघ्र ही प्रभावी होते हैं। इससे कीटों के व्यवहार में शीघ्र ही परिवर्तन आते हैं।

2. **प्रारंभिक** (Primer)

इनसे कीटों के व्यवहार में धीरे-धीरे परिवर्तन आता है। इनसे शरीर में क्रियाओं की एक शृंखला शुरू होती है। ये सामाजिक कीटों में जाति-निर्धारण एवं जनन को नियंत्रित करते हैं।

रासायनिक बंध्यक

बंध्यक रसायन ऐसे रासायनिक पदार्थ होते हैं जो कीटों की प्रजनन शक्ति को नष्ट कर देते हैं, अर्थात् उन्हें बांझ (Sterile) बना देते हैं। नर और मादा दोनों ही प्रकार के कीटों को बांझ बनाने वाले रसायन होते हैं। मादा को बांझ बनाने का अधिक लाभ नहीं होता क्योंकि केवल वही एक ही मादा अंडे नहीं दे पाएगी,

परंतु यदि नर को बांझ बनाया जाता है तो वह मादाओं से संभोग तो करेगा, परंतु अंडों को निषेचित नहीं कर पाएगा और अगली पीढ़ी पैदा ही नहीं होगी।

नर को बांझ बनाने की तकनीक को साठ के दशक (1955 में स्क्रूवर्म फ्लाई) (Cochliomyia hominivorax), फलमक्खी (Dacuscucurbita) को बांझ बनाने के लिए सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया। इस क्रिया में कृत्रिम तरीके से नर को बांझ बनाया जाता है। ये अन्य स्वस्थ नर के समान सक्षम होते हैं। इन्हें प्रकृति के अन्य कीटों में मोचित कर दिया जाता है। इसके परिणामस्वरूप मादाएं निषेचित और जीवनक्षम अंडे देने से वंचित रह जाती हैं और हानिकारक कीटों की एक निश्चित जनसंख्या पैदा ही नहीं हो पाती और धीरे-धीरे पीढ़ी समाप्त हो जाती हैं। इस तकनीक से निम्नलिखित गुणों वाले कीटों को बांझ बनाया जा सकता है-

1) यह तकनीक सीमित क्षेत्र में रहने वाले कीटों पर आसानी से प्रयोग की जा सकती है।

2) यह तकनीक उन कीटों पर आसानी से प्रयोग की जा सकती है जो कृत्रिम रूप से बड़ी संख्या में पैदा किए व पाले जा सकें।

3) कीट की जनसंख्या की गतिकी एवं उनके लैंगिक अथवा यौन व्यवहार का पूरा ज्ञान होना चाहिए।

4) इस विधि से कम संख्या वाले हानिकारक कीटों को नियंत्रित करने की अधिक संभावनाएं होती हैं। यदि हानिकारक पीडक अधिक संख्या में हों, तो पहले अन्य विधियों द्वारा उनकी संख्या कम कर लेनी चाहिए।

5) सड़े-गले पदार्थ खाने वाले कीट आसानी से पाले जा सकते हैं। इनका जीवन चक्र छोटा होता है तथा भोजन भी सादा होता है।

6) तिलचट्टे, घरेलू मक्खी तथा मच्छर के लिए यह तकनीक अच्छी रहती है।

बांझ बनाने की विधियाँ :

1) **प्रक्षेत्र विधि**- खेतों में फसलों पर इन रसायनों को छिड़का जाता है जिसके संपर्क में आने पर वे बांझ हो जाते हैं।

2) **भोजन द्वारा**- कीटों को भोजन के साथ-साथ रसायन प्रलोभक की तरह खिला कर बांझ बनाया जाता है।

3) **संपर्क द्वारा**- बंध्यक रसायनों के संपर्क में आने से नर या मादा जननांग स्पर्श द्वारा प्रभावित होते हैं।

4) **प्रयोगशाला विधि**- प्रयोगशाला में कीटों को कांच के बर्तनों में बंध्यक रसायनों द्वारा उपचारित करते हैं जैसे बीकर, टेस्ट ट्यूब, जार आदि में पहले बंध्यक रसायन डाला जाता है। इसे बर्तन में पूरी तरह हिलाकर चारों ओर फैला देते हैं फिर कीट इसमें छोड़ दिए जाते हैं। कीट के नर या मादा जननांगों से ये रसायन छू जाते हैं और वे बांझ बन जाते हैं। यदि केवल नर को बांझ बनाना हो तो केवल नर ही बर्तन में डाले जाते हैं।

5) **विकिरण द्वारा**- गामा किरणों को नर के ऊपर डालकर उनके जननांगों को बांझ बना देते हैं।

बंध्य बनाए गए नर को अधिक से अधिक बार मादा से संपर्क करना चाहिए जिससे जनसंख्या कम हो जाएगी, क्योंकि मादा निषेचित अंडे नहीं दे पाएगी। कुछ प्रमुख बंध्यक कीट, स्क्रूवर्म, कपास का गुलाबी कीट, सोन मक्खी आदि हैं।

कुछ प्रमुख बंध्यक रसायन तेपा, मेटापा, थायोटेपा, एफोलेट, हेम्पा कोल्चीसन तथा फ्यूरोडेन्टिन आदि हैं।

कानूनी नियंत्रण

प्रारंभिक दिनों में जब बहुत से खाद्यान्न, पौधे तथा उनके भाग एक देश से दूसरे देशों में भेजे और मँगवाए जाते थे, तो उनके साथ बहुत से हानिकारक

जीव, व्याधियाँ अथवा खरपतवार एक देश से दूसरे देश अथवा एक भौगोलिक क्षेत्र से दूसरे भौगोलिक क्षेत्रों में प्रवेश कर जाते थे।

सन् 1860 ई. में अंगूर की बेल (कलम) के साथ अमेरिका से फाइलोजेरा (Phylloxera) नामक कीट फ्रांस में प्रवेश कर गया और इससे वहां पर इतना अधिक नुकसान हुआ कि वहाँ अंगूर की खेती ही समाप्त हो गई। ऐसी स्थिति में यह सोचा गया कि संसार के समस्त देशों में अंगूर के इस कीट को रोकने के लिए कुछ किया जाए ताकि यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर न जा पाए।

इस प्रकार 19वीं शताब्दी के अंत में अमेरिका में सेनजोस स्केल (Sanjose scale) नामक कीट फैल गया और सन् 1905 ई. में वहां पर इस संबंध में कानून बनाने पड़े। हमारे देश में कानूनी नियंत्रण के लिए पादप संरक्षण के लिए निदेशालय की स्थापना की गई है।

इसी प्रकार सरकार कानून बनाकर कीट व रोगग्रस्त सामग्रियों को बाहर से अपने देश में आने अथवा देश के अंदर एक भाग से दूसरे भाग में जाने पर कुछ प्रतिबंध लगाती है। विगत वर्षों में आलू का पिछैता झुलसा सेब का सेनजोस स्केल, आलू का पतंगा, व जलकुंभी विदेशों से हमारे देश में आए हैं। इसी प्रकार गेहूँ का नया खरपतवार गाँहूआ (फैलेरिस महूनर) भी मैक्सिको से हमारे देश में गेहूं की विदेशी जातियों के साथ आया है। दार्जिलिंग के आस-पास पाया जाने वाला आलू का वार्ट रोग अथवा केरल का पनामा रोग कानूनी नियंत्रण के अभाव में देश के अन्य भागों में फैल सकता है। अतएव सरकार ने कानून द्वारा इन क्षेत्रों से उनकी प्रसारण सामग्रियों को अन्य क्षेत्रों में जाने पर प्रतिबंध लगा दिया है। सरकारी कानूनों द्वारा इस प्रकार की व्यवस्था, फसल शत्रुओं के नियंत्रण में अत्यंत उपयोगी है। इसके अतिरिक्त विभिन्न कृषि रक्षा रसायनों के निर्माण, मिश्रण, प्रयोग आदि से संबंधित बातें भी कानून द्वारा नियंत्रित की जाती हैं। केंद्र व राज्य सरकारों ने इस संबंध में अनेक कानून बनाए हैं और उनके कार्यान्वयन हेतु कुछ संगठनों व विभागों की स्थापना भी की गई है।

संगरोध कानून (Quarantine Laws)

सर्वप्रथम कैलिफोर्निया (उत्तरी अमेरिका) की सरकार ने सन् 1871 ई. में

व्याधियों व खरपतवारों इत्यादि के एक देश से दूसरे देश में कीटों द्वारा प्रवेश को रोकने के लिए कुछ नियम और बाद में सन् 1912 ई. में इनको वनस्पति संगरोध अधिनियम (Plant Quarantine Aet) के रूप में देश में कार्यान्वित किया। भारत में इस प्रकार के प्रथम अधिनियम सी कस्टम्स एक्ट 1878 के अंतर्गत 1906 ई. में मैक्सिकन कॉटन की बॉल वीविल (Mexican eotton boll weevil)के भारत में प्रवेश पर रोक लगाने के प्रयास किए गए। इसके अंतर्गत नाशक कीट व पीडक, पादप रोग और हानिकर अपतृण अधिनियम (Destructive Inseets and Pests. Plant Diseases and Noxious Weed Act No-2) 3 फरवरी 1914 ई. को मुंबई चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स के अनुरोध पर बना। इस से विदेशों से आने वाले हानिकारक कीटों एवं पदार्थों के आगमन पर पूर्ण रोक लग गई। मद्रास सरकार ने विदेश से आने वाली कपास को बचाने के लिए इस कानून को सन् 1919 ई, में लागू किया। इसी कानून में 1अक्टूबर, सन् 1931 ई. को अधिसूचना नं. 1581 द्वारा परिवर्तन कर अमेरिका तथा वेस्ट इंडीज से कपास के आयात पर रोक लगाने का प्रावधान किया गया। इसके बाद प्रदेश सरकारों और केंद्र शासित सरकारों को यह अधिकार दे दिया कि इस कानून द्वारा राष्ट्रपति या राज्यपाल की आज्ञा से देश व विदेश से आने वाले पदार्थों पर नियंत्रण लागू कर सकें। अब विदेश से आने वाले सभी पौधों व बीजों का बंदरगाहों (कोलकाता, मुंबई, चेन्नई, कोच्चि, विशाखापट्नम तथा भावनगर आदि) या हवाई अड्डों (पालम, दिल्ली, कोलकाता, मुंबई, चेन्नई, अमृतसर, त्रिचिरापल्ली कोच्चि) तथा स्थल-मार्ग से भारत-बर्मा के बीच गुवाहाटी एवं भारत व पाकिस्तान के बीच बाघा सीमा चौकी पर विशेषज्ञों द्वारा कीटों के अंडों, जीवाणुओं, कवक तथा अन्य रोगों के लिए निरीक्षण किया जाता है। इसके बाद इनका धूमन करके इन्हें संगरोध में रखा जाता है। तदुपरांत सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्रयोग के लिए प्रमाणपत्र आबंटित किया जाता है।

बहुत अवधि तक इस कानून के अनुपालन का कार्य मुंबई सरकार पर रहा, परंतु सन् 1953 ई. में इसे केंद्रीय सरकार ने खाद्य व कृषि मंत्रालय के अधीन पादप संरक्षण, संगरोध तथा भंडारण निदेशालय (Derectorate of Plant Protetion, Quarantine and storage) को सौंप दिया जिसका मुख्यालय फरीदाबाद (हरियाणा) में है। इसके मुख्य कार्य इस प्रकार हैं-

1) जिस स्थान से माल चला हो वहाँ पर इसकी जांच सुनिश्चित कराना।

2) जिस स्थान, देश या स्थान पर माल पहुंचे वहाँ पर उसकी जांच करना तथा

3) गंतव्य स्थान पर माल पहुंचने के बाद उसकी जांच करना।

वैधानिक कानून चार प्रकार के होते हैं-

1) विदेशों से हानिकारक कीटों के देश में प्रवेश पर रोक के लिए कानून।

2) देश में ही पहले से विद्यमान हानिकारक कीटों को देश में फैलने से रोकने के लिए कानून।

3) कीट नियंत्रण के अधिसूचित अभियान के लिए कानून।

4) कीट नियंत्रण में प्रयोग आने वाले यंत्रों एवं कीटनाशियों में मिलावट तथा इनके अनुचित प्रयोग को रोकने के लिए कानून।

इस कानूनों के बाद बिना ओटी हुई कपास का आयात बंदरगाह पर धूमन एवं विसंक्रमण करने के बाद लागू किया गया। वैज्ञानिक खोजों के लिए वानस्पतिक पदार्थों का हवाई जहाज द्वारा आयात भारत सरकार की पूर्व अनुमति एवं संगरोध जांच के बाद ही संभव होता है।

इसी प्रकार अफगानिस्तान से फल तथा सब्जियों का आयात किसी सक्षम अधिकारी द्वारा पादप आरोग्य प्रमाण पात्र (Phyto Sanitary Certificate) के आधार पर किया जा सकता है। कुछ बीजों जैसे कपास, इजिप्शियन क्लोवर, पटसन, रबर, काफी, सूर्यमुखी, सेनजोस शल्क कीट (एस्पिडियोटस पर्निसिअस) द्वारा ग्रसित चीन से आयतित सेब तथा नाशपाती, कॉटनी कुशनशल्क कीट (Icerya purchasi) द्वारा ग्रसित नींबू, सूब व नाशपाती के कीट (Eriosoma lanigerum) से ग्रसित यूरोपीय सेब व नाशपाती, जलकुभी, लेन्टाना, केले के बँची टॉप रोग, गोल्डन निमेटोडा एवं वार्टरोग से ग्रसित आलू के बाहर से आयात पर पूर्ण रोक लगा दी गई है। देश में भी रोग ग्रसित बीजों, पौधों आदि के एक स्थान से दूसरे में अंतरण पर निरीक्षण करके नष्ट करने के आदेश लागू किए गए हैं। इस प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करने वाले व्यापारी को दंडित करने का प्रावधान भी इस कानून के अधीन लागू कर दिया गया है।

अध्याय 5

समन्वित/एकीकृत पीड़क, रोग एवं खरपतवार प्रबंधन

यह एक संपूर्ण गहन ज्ञान प्रणाली है जो समेकित/समन्वित/एकीकृत फसल उत्पादन का एक अंग है। इसमें सभी पद्धतियों का इस प्रकार व्यवस्थित तथा अभीष्ट तरीकों से समन्वय किया जाता है जिससे पर्यावरण शुद्ध रहे तथा आर्थिक लाभ भी प्राप्त हो।

देश में कीटों के प्रकोप से फसलों को काफी नुकसान होता है और यह समस्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। कीट-नियंत्रण के लिए कीटनाशियों के वर्षों से लगातार प्रयोग के कारण कीटों में इन रसायनों के प्रति प्रतिरोधिता तथा पर्यावरणप्रदूषण जैसी समस्याएं पैदा हो रही हैं। अत: भविष्य में कीट-नियंत्रण के लिए समन्वित एकीकृत कीट-प्रबंधन प्रणाली अपनाने की आवश्यकता है। इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य कीटनाशी रसायनों पर निर्भरता को कम करना है ताकि पर्यावरण सुरक्षित रहे। इस प्रणाली के अंतर्गत उन सभी तकनीकों एवं उपायों का प्रयोग किया जाता है जिनसे हानिकारक कीटों की संख्या को एक निश्चित स्तर से नीचे रखा जा सके। यह निश्चित स्तर कीट की वह संख्या है जो संबंधित फसल को आर्थिक क्षति पहुँचाती है।

यद्यपि कीट-नियंत्रण के अन्य उपाय कीटनाशी रसायनों का स्थान नहीं ले सकते, फिर भी कीट-नियंत्रण में इसका प्रयोग उचित मात्राओं में उपयुक्त समय एवं स्थान पर करने से कीटनाशी रसायनों के प्रयोग में कुछ कमी लाई जा सकती है।

एक ओर जहां फसलों की सुरक्षा में इन रसायनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा

है, वहीं दूसरी ओर इनके प्रयोग से कई समस्याएं भी सामने आई हैं। पहली समस्या कीटों में प्रतिरोधिता का विकसित होना है अर्थात् कीटनाशी के लगातार प्रयोग से उस कीट-विशेष पर अब उस कीटनाशी का असर नहीं होता है। इस तरह कीटों में प्रतिरोधिता विकसित हो जाने के कारण फसल को तो हानि होती है, साथ ही कीटनाशी तथा छिड़काव पर किया गया व्यय भी व्यर्थ चला जाता है। दूसरी समस्या हानिकारक अवशिष्टों की है। अर्थात जिस किसी फसल पर कीटनाशियों का छिड़काव किया जाता है, उस पर कुछ मात्रा में आविषी अवशिष्ट रह जाते हैं जो बाद में मनुष्य के शरीर में पहुँच जाते हैं। तीसरी समस्या है 'मित्र' जाति के कीटों के हानिकारक कीटों को प्रभाव की। प्रकृति में कुछ लाभकारी कीट हैं जो कुछ हानिकारक कीटों को खाकर नष्ट कर देते हैं तथा फसलों में पर-परागण में मदद कर खाद्यान्नों, फलों तथा सब्जियों के उत्पादन में वृद्धि करते हैं। कीटनाशी रसायनों के प्रयोग से इन पर प्रतिकूल असर पड़ता है। चौथी समस्या पर्यावरण के प्रदूषण की है। कीटनाशियों के अधिक प्रयोग से जल, मृदा, वायु तथा खाद्य सामग्री प्रदूषित हो जाती है। इससे मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

फसलों में एकीकृत पीड़क प्रबंधन का वांछित लाभ प्राप्त करने के लिए उपयुक्त फसल-चक्र अपनाने के साथ-साथ प्रतिरोधी किस्मों को भी उगाना चाहिए। किसी क्षेत्र में कीट विशेष का प्रकोप होने पर उसकी प्रतिरोधी किस्मों की बुआई करना उपयुक्त रहता है। उपयुक्त फसल-चक्र अपनाने से भी कीटों के जीवन-चक्र को पूरा होने में बाधा उत्पन्न होती है। विलंब से बोई गई फसलों पर कीट व रोगों का अपेक्षाकृत अधिक प्रकोप होता है। अत: फसलों की बोआई समय से करना उचित होता है।

एकीकृत पीड़क प्रबंधन प्रणाली में कृषि-क्रियाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। फसल उत्पादन के लिए आवश्यक कृषि-क्रियाओं जैसे- जुताई, निराई, गुड़ाई, सिंचाई, खरपतवार-नियंत्रण से कीटों की रोकथाम में सहायता मिलती है। दीमक, कटुआ आदि कीटों का नियंत्रण इन कृषि-क्रियाओं द्वारा किया जा सकता है। फसल कटाई के बाद ग्रीष्मकालीन जुताई से मिट्टी में तथा फसलों के अवशिष्ट में छिपे कीट एवं इनके अंडे, लार्वा आदि नष्ट हो जाते हैं।

कीटों के अंडों व लार्वा को यांत्रिक विधि द्वारा चुन-चुनकर नष्ट किया जा सकता है। कीट-पतंगों की रोकथाम के लिए प्रकाश-प्रपंचों का उपयोग लाभप्रद होता है।

एकीकृत पीड़क प्रबंधक में जैविक साधनों का भी बहुत महत्व है, जिसमें विभिन्न प्रकार के ऐसे परजीवी/परभक्षी कीट, कवक, जीवाणु, विषाणु व अन्य जीव जंतु है जिनके द्वारा फसलों के हानिकारक कीटों व रोगों का निदान किया जाता है। गन्ने का पायरिला कीट एवं काला चिकटा, चने का फली-बेधक एवं जलकुंभी का सफल नियंत्रण जैविक साधनों द्वारा किया जा सकता है।

कीट-नियंत्रण हेतु सिर्फ कीटनाशी रसायनों पर निर्भरता के कारण इसके अनेक दुष्परिणम उभरकर सामने आए हैं। अत: कीट नियंत्रण के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि कृषि उत्पादकता सही दिशा में अग्रसर रहे।

समन्वित/एकीकृत पीड़क प्रबंध की विधियां

1) किसान-परिवारों का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर समझना।

2) फसल उत्पादन : खेत की तैयारी, रोग-रहित बीज, बोआई का समय, उचित मात्रा में खाद एवं उर्वरक, समुचित पानी, पौधों से पौधों की दूरी सफाई की देखरेख।

3) पर्यावरण (हैबिटेट) विश्लेषण : हानिकारक पीड़कों एवं मित्र कीट, सूत्रकृमि एवं सूक्ष्मजीवों की पहचान एवं पर्यावरण, ताप, नमी, वर्षा के साथ उनकी संख्या में कमी-बढ़त व उनका रख-रखाव।

4) मित्र कीट, पक्षी, जीव-जंतु, सुक्ष्मजीव एवं परागण करने वाले कीटों का संरक्षण और उनकी संख्या को बढ़ाना।

5) जैविक कीट, वनस्पतिक कीटनाशी, ट्रांस जैविक तथा ऊतक संवर्धन से पैदा की गई पौध, जैविक पदार्थ एच. एन. पी., बी. टी.वी. और सेक्स फीरोमोन का प्रयोग।

6) कीटनाशी के प्रयोग की सही मात्रा, स्प्रेयर एवं कीट की अवस्था तथा फसल की आर्थिक स्थिति।

7) पीड़क एवं लाभकारी जीव, कीटनाशी का प्रादेशिक भाषाओं एवं चित्रों वाला सरल साहित्य।

8) सरकारी, गैर-सरकारी, स्वयं सेवी, ग्राम पंचायत, किसान, युवाओं, महिलाओं एवं औद्योगिक घरानों का मिलाजुला सम्मिलित प्रयास।

9) प्रसार अधिकार तथा कृषक प्रशिक्षण।

10) कार्यक्रम के प्रभाव का विश्लेषण एवं मूल्यांकन तथा प्रचार एवं प्रसार नीचे से ऊपर के माध्यम से।

11) पुराने ज्ञान और तरीकों को बढ़ावा देना जिससे इनकी उपयोगिता समाप्त न हो।

12) मौसम के आधार पर पीड़क के प्रकट होने की अग्रिम चेतावनी एवं सलाह।

प्रणाली की जानकारी -

इस देश में 20 कृषि-मौसम के क्षेत्र हैं और अलग-अलग समय पर समुद्र तल से लगाकर ऊंचे पहाड़ों तक खेती होती है। इस समयबद्ध कार्यक्रम में पौधों तथा हवा, पानी, जमीन, जैविक, कीट, सूक्ष्मजीव सबका एक दूसरे से संबंध तथा एक दूसरे पर निर्भर रहना एक प्राकृतिक क्रिया है। इनको समझना तथा जिस स्तर पर कोई कमी मौजूद हो उसका लाभ फसल उत्पादन तथा पीड़क प्रबंधन में कैसे किया जाए यह एक महत्वपूर्ण विषय है। कई रोग तथा कीट उच्च-ताप या तेज धूप की रोशनी और हवा में अपने कुप्रभाव को नहीं बढ़ा पाते हैं। वहीं कई परजीवी अपने अपने फायदे के लिए मौजूद रहते हैं।

सस्य कार्यक्रम

इसके अंतर्गत गर्मियों में जमीन की गहरी जुताई करके उसे इस प्रकार रख छोड़ना है कि उसके अंदर छिपे पीड़क उच्च ताप तथा सूरज की तेज धूप से बढ़ न सकें। पक्षियों द्वारा इनकी संख्या कम करना भी लाभकारी है। प्रतिरोधी किस्मों के बीजों का इस्तेमाल करना चाहिए। बोआई के समय में 10-15 दिन आगे-पीछे करके कीट और व्याधियों के प्रकोप को कम किया जा सकता है। देखा गया है कि सरसों की जल्दी बोयी फसल में माहू कीट के प्रकोप और हानि से छुटकारा पाया जा सकता है। आलू की फसल को जल्दी लेकर पछेता झुलसा रोग से फसल को बचाया जा सकता है। बोआई के समय पौधे के बीच में उचित दूरी रख करके अच्छी रोशनी तथा उसके हवा, ताप और नमी को निचले स्तर पर कम होने से रोका जाता है क्योंकि अगर दूरी कम है तो नमी ज्यादा होने से बीमारी और कीटों की संख्या बढ़ जाती है। संतुलित खाद-नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश का संतुलित रखना आवश्यक है। अगर नाइट्रोजन की मात्रा अधिक है तो कई कीट ज्यादा लगते हैं। इसी प्रकार पोटाश की मात्रा कीट-नियंत्रण से सीधे संबंधित है। उचित समय पर पानी देकर तथा खेत में सफाई रखकर कीट-व्याधियों को बढ़ने से रोका जाता है। फसल का एक के बाद दूसरे साथ तालमेल रखना आवश्यक है जिससे एक फसल के पीड़क दूसरी फसल पर जाकर न बढ़ सकें जैसे टमाटर, बैंगन, गोभी-गोभी तथा आलू-आलू तथा अन्य मिश्रित फसल एक समूह की न लगाकर अमेरिकन वर्म, झुलसा, सफेद, मक्खी, विषाणु रोगों के प्रकोप कम हो जाते हैं।

प्राकृतिक परजीवी और शिकारी कीट तथा सूक्ष्म जीवाणुओं का संरक्षण एवं उपयोग

कई प्रकार के परजीवी कीट जो किसान के हितैषी हैं उनकी पहचान तथा ये किन कीटों पर अपना जीवन यापन करके उनकी संख्या कम करते हैं, इसकी जानकारी कृषकों के लिए महत्वपूर्ण हैं। पूरे फसल में उनका एक प्राकृतिक स्तर बनाए रखना चाहिए। कई बार कीटनाशियों के अंधाधुंध प्रयोग से ये मर जाते हैं या इनकी संख्या कम हो जाती है। जैसे लेडी बर्ड बिटिल जो माहू या चेंपा को

खाता है। इसके अलावा क्राईसोपरला शिकारी कीट और हेलीकोबर्पा विषाणु आदि लाभकारी हैं और उनकी क्षमता तथा संख्या बढ़ाकर लाभ उठाया जा सकता है।

परजीवी और शिकारी कीटों का प्रयोग

हानिकारक कीटों के नियंत्रण के लिए कई प्रकार के परजीवी तथा शिकारी कीटों को फसल में छोड़कर आर्थिक नुकसान कम करने में सहायता मिलती है। वर्तमान समय में कई परियोजनाओं में अंतराष्ट्रीय स्तर पर इन लाभकारी कीटों को एक देश से दूसरे देश में लाकर प्रयोगशाला में इनको पाल कर संख्या बढ़ा ली जाती है। जब हानिकारक कीटों की संख्या आर्थिक स्तर पर पहुँच रही हो तो लाभकारी कीटों को खेतों में छोड़ना चाहिए। यह प्रक्रिया फसल के दौरान कई बार करनी चाहिए या जो लाभकारी कीट पर्यावरण में लंबे समय तक मौजूद रह सकते हैं, उनको एक बार छोड़ना चाहिए। ये लाभकारी कीट जैसे ट्राइकोग्रामा की प्रजातियां, क्राइसोपरला एक बड़े पैमाने पर हानिकारक कीट जैसे, हेलीकोवर्पा आरमीजेरा, माहू एवं कई तना फल छेदक कीटों के प्रबंध के लिए कपास, धान सब्जियों की फसलों में प्रयोग में आ रहे है।

फीरोमोन तथा अन्य विपाश (ट्रैप)

कई कीटों की नर प्रजातियां अपने प्रजाति के मादा कीट की तरफ आकर्षित होकर प्रजनन करती है। उनको कृत्रिम फीरोमोन विपाश लगाकर एकत्र करके नष्ट कर लिया जाता है तथा इसके अलावा चिपकने वाले विपाश तथा पीले रंग से रंगे हुए पानी के विपाश में भी माहू आदि की भारी संख्या पकड़ सकते हैं और उनकी संख्या का अनुमान लगा सकते हैं।

कीटनाशी का प्रयोग

जब कीट तथा रोग किसी भी फसल में इस स्तर पर पहुँच जाए कि उससे होने वाला नुकसान आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण हो जाए तो उचित प्रमाणित सही घोल को अच्छे फव्वारे से आवश्यकता-अनुसार अंतराल पर प्रयोग करें। बिना आवश्यकता के कीटनाशियों का प्रयोग करके पर्यावरण को नुकसान तथा खाद्यान्नों पर हानिकारक प्रभाव न पड़ने दें।

मानव-संसाधन एवं किसान प्रशिक्षण

कृषि विशेषज्ञों, मास्टरों, प्रशिक्षकों तथा किसानों और महिलाओं को इस समेकित पीड़क प्रबंधन तकनीक और ज्ञान को प्रशिक्षण द्वारा परिचित कराने की प्रक्रिया चल रही है। इसमें विभिन्न संगठन एवं विभाग सम्मिलित हैं। इस प्रकार इस गहन ज्ञान को किसानों तक पहुंचाकर तथा उनके साथ वार्ता करके उनसे प्राप्त जानकारी तथा ज्ञान को इस प्रशिक्षण में भी शामिल करके इस कार्यक्रम का लाभ उठाना चाहिए। प्रमुख फसलों के विषय में यह प्रशिक्षण अलग-अलग स्थानों पर दिया जा रहा है।

कृषि साहित्य

इस दिशा में भी पुस्तक, पुस्तिका, फिल्म, रेडियो, दूरदर्शन तथा (हानिकारक कीट एवं लाभकारी मित्र कीटों की पहचान) पुस्तिकाओं का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। प्रांतीय भाषाओं में तैयार साहित्य को उत्पादकों को उपलब्ध कराकर उन्हें उन गतिविधियों से परिचित कराना चाहिए जिनसे पीड़क प्रबंधन में सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त किसान मेला, प्रदर्शनी, गोष्ठी, किसान पाठशाला आदि भी निरंतर योगदान के साधन हैं।

महत्वपूर्ण कदम

1) सभी संस्थाओं को मिलकर, एक बड़े पैमाने पर समेकित पीड़क प्रबंधन की विधियों पर मुख्य कीट का रोग-युक्त क्षेत्रों पर प्रदर्शन करना चाहिए जिसमें किसान भी निर्णय लेने में शामिल हों। इस विषय में रा. स. ना. प. केंद्र दिल्ली में कपास एवं बासमती चावल में सफलतापूर्ण कार्य कर रहा है।

2) प्रतिरोधी फसल की किस्मों के बीज बड़े पैमाने पर और आसानी से उपलब्ध कराना।

3) परजीवी शिकारी कीट तथा जैविक कीटनाशियों की गुणवत्ता तथा उपलब्धता सुनिश्चित करना।

4) फसल पर पीड़क के प्रकोप होने के पहले, अलग-अलग क्षेत्रों के मौसम के आधार पर अग्रिम चेतावनी एवं सलाह देना।

5) विषय-सामग्री, साहित्य एवं प्रशिक्षण पर बल देना।

6) नई कीट व्याधियों पर निगरानी रखना।

7) तकनीक सरल एवं प्रभावी होनी चाहिए और केवल महत्वपूर्ण जानकारी पर ही अमल किया जाए।

लाभ

1. यह आर्थिक रूप से टिकाऊ एवं पर्यावरण की दृष्टि से लाभकारी है।

2. यह दूरगामी कार्यक्रम है।

सीमाएं

1. यह फसल और स्थानीय रूप से ही संबंधित कार्यक्रम है।

2. इसके प्रभाव बहुत लंबे अंतराल के बाद ही दिखाई पड़ते हैं।

3. लोगों को इस पर विश्वास नहीं होता क्योंकि उनकी निर्भरता कीट नाशियों से होने वाले तुरंत लाभ पर आधारित है।

4. फसल प्रणाली की बहुतायत, पर्यावरण की विविधता तथा छोटी जोत का होना।

दलहनी फसलों में समन्वित/एकीकृत पीड़क प्रबंधन

दलहनी फसलों की उत्पादकता घटाने में, अजैविक (बारानी क्षेत्रों में खेती, अनिश्चित वर्षा एवं प्रबंध/संस्थागत अवरोध) एवं जैविक (कीट एवं बीमारी) कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिसमें जैविक कारक का योगदान बहुत होता है। लगभग तीन सौ से अधिक प्रजातियों के कीड़े-मकोड़े एवं कई रोग

दहलनी फसलों को नुकसान पहुँचाते हैं। लेकिन कुछ ही कीट एवं रोग अलग-अलग दलहनी फसल में व्यापक रूप से हानि पहुँचाते हैं। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि इन पीड़कों का प्रबंध समन्वित/एकीकृत विधि से किया जाए ताकि पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने न पाए। विभिन्न दलहनी फसलों में फसल की अवस्था के अनुसार इन विधियों के उपयोग का विवरण इस प्रकार है :-

अरहर

अरहर में चने का फली-भेदक एवं धब्बेदार फली-भेदक (लेपिडोप्टेरा) ग्रीन बग, (हेमीप्टेरा), फली मक्खी (डिप्टेरा), दाल के घुन (कोलियोप्टेरा) एवं दीमक (आईसोप्टेरा) गण के कीट अधिक हानि पहुँचाते हैं। हानिकारक कीटों के साथ ही बीमारियाँ जैसे- उकठा, फाइटोफ्थोरा, ब्लाइट और बांझ रोग एवं खरपतवार से रोकथाम के लिए निम्न आई.पी.एम. के घटकों को क्रम से प्रयोग करना चाहिए।

अ) फसल बोने से पूर्व

1) चने के फली-भेदक का प्यूपा, दीमक एवं निमेटोड से रोकथाम के लिए गर्मी में गहरी जुताई एवं नीम की खली (नीम केक) या नीम के पत्ते की सड़ी हुई खाद या अरंडी की खली का प्रयोग करना चाहिए।

2) पारदर्शी पालिथीन द्वारा कम से कम 15 दिन तक भूमि का सौर उपचार करने से उकठा रोग का नियंत्रण होता है।

3) मिश्रित या अंतर-सस्य के रूप में ज्वार/बाजरा/मक्का/लोबिया उगाने से फली-भेदक का आक्रमण कम होता है।

4) फली मक्खी से प्रभावित क्षेत्र में अगेती अरहर की प्रजाति जैसे उपास 120 उगानी चाहिए एवं खरपतवारों, विकल्प, पोषक पौधों और फसल अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए।

5) चने का फली-भेदक, फली मक्खी, धब्बेदार फली-भेदक, उकठा एवं

बांझ रोग से प्रतिरोधी प्रजातियों का चयन सारणी-1 के अनुसार करना चाहिए।

आ) बीज एवं पौधों की अवस्था में

1) उकठा रोग से बचाने के लिए जैविक उपचार, ट्राइकोडरमा विरिडी (प्रतिराधी कवक) 4 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से बीजोपचार करना चाहिए।

2) फसल को फाइटोफ्थोरा ब्लाइट से बचाने के लिए रासायनिक बीज उपचार एप्रोन 5 ग्राम प्रति किग्रा. बीज से उपचारित करना चाहिए।

3) कार्बोसल्फान 3 प्रतिशत से बीज उपचारित करने से बांझ रोग एवं निमेटोड की समस्या से बचा जा सकता है।

4) खरपतवार के नियंत्रण हेतु समुचित मात्रा में बीज, खाद, उर्वरक एवं सिंचाई का प्रयोग करना चाहिए।

इ) वानस्पतिक अवस्था में

1) चने के फली-भेदक के आर्थिक क्षति स्तर का पता लगाने के लिए फीरोमोन विपाश प्रयोग करना चाहिए।

2) खरपतवार बढ़ने पर हाथ द्वारा निराई-गुड़ाई करते रहना चाहिए।

3) फाइटोफ्थोरा ब्लाइट का प्रकोप होने पर राइडोमिल एम.जेड 72 का 0. 25 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

ई) पुष्प एवं फली की अवस्था में

1) पीड़कों एवं प्राकृतिक शत्रुओं के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए परजीवियों, परभक्षियों एवं प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण एवं संवर्धन करना चाहिए।

2) फली मक्खी (पॉड फ्लाई) के नियंत्रण हेतु नीम के बीज का 5 प्रातशत सत या मोनोक्रोटाफास (250 ग्राम सक्रिय तत्व/हे.) या डायमेथोएट (375 ग्राम सक्रिय तत्व/हे.) का छिड़काव करना चाहिए।

3) चने के फली-भेदक की रोकथाम हेतु निम्नलिखित आई.पी.एम.मॉड्यूल का 15 दिन के अंतराल पर प्रयोग करना चाहिए-

1. नीम के बीज का 5 प्रतिशत सत-प्रोफेनफॉस 1 मि. ली. प्रति लि. पानी।
2. बी. टी. (बैसीलस थूरिनजिएन्सिस)- इंडोसल्फान (2 मि. ली. प्रति ली. पानी)।
3. हेलिकोवरपा एन. पी. वी. (वायरस) 250 एल. ई. (लारवा तुल्यांक)- इंडोसल्फान (0.35%)।
4. नीम के बीज का 5 प्रतिशत सत।

नीम के बीज का 5 प्रतिशत सत बनाने के लिए 50 ग्राम बीज (गिरी) को पीसकर पानी में 24 घंटे तक भिगोना चाहिए, तदुपरांत उसे पीसकर अच्छे तरीके से घोलने के बाद कपड़े से छानकर छिड़काव करना चाहिए। इसकी गुणवत्ता बढ़ाने के लिए इसमें साबुन मिला देना चाहिए।

उ) फसल कटाई के बाद

1) बीमारी एवं निमेटोड से प्रभावित पौधों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए।

2) दलहनों को घुन के प्रकोप से बचाने के लिए भंडारण प्रबंध की आवश्यकता होती है। कुशल भंडारण प्रबंध में कोई विशेष लागत नहीं लगती है, केवल कुछ सावधानियों एवं उपायों के द्वारा उपज को घुन से बचा सकते हैं। ये सावधानियां इस प्रकार हैं :-

1) दानो में नमी की मात्रा 7-8 प्रतिशत होने पर घुन का प्रकोप नहीं होता है। दांत से दाना तोड़ने पर यदि आवाज के साथ टूटे तो समझना चाहिए कि नमी उपयुक्त है।

2) बरसात के दिनों में उपज को कम से कम बाहर निकालें क्योंकि दाने वायुमंडल से नमी सोख लेते हैं। गर्मियों या सर्दियों में दलहनों को वायुरोधी बर्तनों जैसे ड्रम, टिन, कुठला लोहे के कुठलों (मेटेलिक बिन) में आवश्यकतानुसार रखें। यदि बोरे में रखने हों तो पालिथीन लगे हुए बोरों में भंडारण करना चाहिए।

3) दलहनों को दाल बनाकर रखना अधिक सुरक्षित है। अत: गर्मियों में आवश्यकतानुसार दलहनों को दाल में परिवर्तित कर समय-समय पर धूप में सुखाते रखना चाहिए।

4) मेटिलिक बिन को धूप में अच्छी प्रकार सुखाकर प्रयोग में लाना चाहिए ताकि कोई भी जीवित घुन न बचे। मिट्टी के कुठलों को, जो धूप में नहीं लाए जा सकते, नीम की पत्ती जलाकर धूमित कर दें ताकि घुन मर जायें अथवा 1 प्रतिशत नूवान कीटनाशी को छिड़ककर कुठले बंद कर देना चाहिए। नूवन के स्थान पर 1 प्रतिशत मैलाथियान तरल का भी प्रयोग किया जा सकता है।

5) जुट के बोरों में भंडारण करने के लिए मैलाथियान या इंडोसल्फान या डेल्टामेथन 20 मिली प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर बोरों को अच्छी प्रकार से तर करके निर्जर्मीकृत कर लेना चाहिए।

6) यदि दलहनों का भंडारण कम मात्रा में करना हो तो किसी भी खाने के तेल (नारियल, मूंगफली, सरसों अथवा सूरजमुखी) को 10 मि.लि. प्रति किलोग्राम दाने के साथ मिलाकर रखना चाहिए। इसे खाने व बोने दोनों में प्रयोग कर सकते हैं। यदि केवल बोने के लिए रखना हो तो नीम, अरंडी, करंज या महुआ का तेल भी प्रयोग कर सकते हैं।

7) दोनों को बोरे में रखने के लिए चूना चूर्ण को कपड़े से छानकर, 15-20 ग्राम. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से, दोनों में मिला कर रखना चाहिए। बोरों को हमेशा पॉलिथीन की चादर पर रखना चाहिए।

8) कुठले या मेटेलिक बिन में अच्छी प्रकार से सूखे हुए दानों को रखने के बाद इसमें पारद टिक्की नामक दवा की 2 गोलियां प्रति क्विंटल के हिसाब से रखने पर घुन नहीं लगता।

9) अगर दानों को धूमित करना हो तो एथिलीन ब्रोमाइड का 3 मि.ली. का ऐम्प्यूल प्रति 100 कि.ग्रा. बीज की दर से प्रयोग करना चाहिए। उपर्युक्त दोनों दवाइयों का बीज के जमाव पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। खाने में इस्तेमाल करने से पहले धोकर एवं धूप में अच्छी प्रकार से सुखाकर ही प्रयोग करना चाहिए।

चना

चने की फसल को चार दर्जन से अधिक कीड़े-मकोड़े क्षति पहुंचाते हैं। इन सभी में चने के फली-भेदक (हेलिकोवरपा आर्मीजेरा) द्वारा 60-90 प्रतिशत क्षति होती है, एवं आज यह स्थिति है कि मच्छर की तरह इसकी भी रोकथाम कृषि वैज्ञानिकों के लिए चुनौती बना हुआ है। उकठा के द्वारा भी चने में बहुत नुकसान होता है। इस फसल में पीड़कों से बचने के लिए निम्नलिखित तकनीक अपनानी चाहिए :

अ) फसल बोने से पूर्व

1. चने के फली-भेदक एवं दीमक के नियंत्रण हेतु गर्मी में गहरी जुताई करनी चाहिए।
2. नीम की खली (नीम केक) या नीम के पत्ते की सड़ी हुई खाद के प्रयोग के कटुआ कीट, दीमक एवं फली-भेदक का प्रकोप कम होता है।
3. उकठा रोग के फफूंद को मारने के लिए पारदर्शक पालिथीन द्वारा भूमि का सौर उपचार कम से कम 15 दिन तक करना चाहिए।
4. अंतर-सस्य के रूप में अलसी/धनियां/सरसों/गेहूं/ज्वार (रबी) एवं चने को मध्य अक्टूबर में बोने से फली-भेदक का प्रकोप कम होता है।

5. गेंदा (मैरीगोल्ड), चने के फली-भेदक के लिए फांसू फसल (ट्रेप क्राप) एवं निमेटोड के लिए प्रतिरोधी फसल के रूप में उगाना चाहिए।

6. उकठा, एस्कोकाइटा ब्लाइट, जड़ सड़न, बाटराटिस ग्रेमोल्ड एवं फली भेदक के लिए प्रतिरोधी प्रजातियों का चयन करना चाहिए।

बीज एवं पौध की अवस्था में

1) अच्छी प्रकार से ग्रंथियों के विकास के लिए राइजोबियम संवर्धन के एक पैकेट (250 ग्राम) को 10 किग्रा. बीज के हिसाब से प्रयोग करना चाहिए।

2) पौध संख्या अधिक होने पर विरलन (थिनिंग) कर देने से दीमक का प्रकोप कम होता है।

3) उकठा से बचने के लिए ट्राइकोडरमा विरिडी (प्रतिरोधी कवक) 4 ग्राम प्रति किग्रा बीज के हिसाब से बीज उपचार करना चाहिए।

4) कर्बान्डाजिम+थीरम (1 ग्राम+1 ग्राम) प्रति किग्रा. बीज के हिसाब से बीज उपचार करने से निमेटोड एवं उकठा का प्रकोप नहीं होता है।

5) समुचित मात्रा में बीज, खाद, उर्वरक एवं सिंचाई के प्रयोग से फसल की अच्छी वृद्धि खरपतवारों के विकास को कम करती है।

इ) वानस्पतिक अवस्था में

1) हाथ द्वारा निराई-गुड़ाई करके खरपतवार निकाल देने चाहिए।

2) वेधक का आर्थिक क्षति स्तर पता लगाने के लिए बराबर निगरानी करते रहना चाहिए।

3) परभक्षी कीड़े-मकोड़ों, जैसे ततैयों, मकड़ियों, पक्षियों एवं परजीवियों का संरक्षण करते रहना चाहिए।

4) चने के फली-वेधक की संख्या आर्थिक देहली स्तर (Economic Threshold level) 6-7 शलभ/फीरोमोन विपाश/रात्रि, लगातार तीन रात्रि

तक होने के बाद ट्राइकोग्राम काइलोनिस 1-1.5 लाख प्यूपा या प्रौढ़ प्रति हैक्टेयर एक सप्ताह के अंतराल पर चार बार प्रयोग करना चाहिए।

5) एस्कोकाइटा ब्लाइट के रासायनिक नियंत्रण के लिए ट्राइडिमार्फ 1 प्रतिशत या हेक्साकैप 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

ई) पुष्प एवं फली की अवस्था में

1) परजीवियों, परभक्षियों एवं प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण एवं बढ़ावा करना चाहिए।

2) चने के फली-भेदक की संख्या आर्थिक देहली (1-2 लारवा प्रति 10 पौधों) से अधिक होने के बाद निम्न उपाय करने चाहिए :

1) क्राइसोपरला कारनिया एक लाख प्रथम इन्सतार लारवा प्रति हेक्टेयर, 15 दिन के अंतराल पर दो बार प्रयोग करना चाहिए।

2) फली-भेदक (हेलिकोवरपा) एन. पी. वी. 350 एल. ई. (लारवा तुल्यांक) को प्रयोग करना चाहिए। हेलि. एन. पी. वी को, किसान घर पर भी आसानी से बना सकते हैं। एन. पी. वी. से ग्रसित लारवा का शरीर पिलपिला हो जाता है। हल्की सी माचिस की तीली लगाने से उसके शरीर से लसलसा बदबूदार स्राव निकलता है। एक मुख्य पहचान यह भी है कि ग्रसित लारवा हमेशा शरीर के पिछले भाग की सहायता से पत्तियों या टहनियों पर लटका रहता है। एन. पी. वी. बनाने के लिए ग्रसित लारवा को सड़ाकर कूटने पीसने के बाद पानी में घोल बनाकर पौधों पर छिड़क देना चाहिए। घोल में गुड़ एवं टीनोपॉल मिला देने से एन. पी. वी. की गुणवत्ता बढ़ जाती है। इस तरीके से स्वयं का बनाया हुआ एन पी वी उस कृषि-पारिस्थितिक-तंत्र (Agroecosystem) में अधिक प्रभावशाली होता है। पहली बार छिड़काव करके किसान को न्यूक्लियस कल्चर बनाकर ग्रसित लारवा की संख्या को बढ़ाना चाहिए। इसके बाद 350 लारवा तुल्यांक (350 लारवा से बना हुआ) घोल दो बार फसल पर छिड़कना चाहिए।

3) चूहों की रोकथाम के लिए बिलों में बोमैडियोलोन (0.005%) का प्रयोग करना चाहिए।

उ) फसल कटाई के बाद

1. रोग-ग्रसित पौधों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए।
2. दानों को घुन से बचाने के लिए अरहर में ऊपर सुझाए गए उपायों के अनुसार भंडारण करना चाहिए।

मूंग एवं उड़द

लगभग पाँच दर्जन से भी अधिक प्रकार के कीड़े-मकोड़े मूंग एवं उड़द की फसल को नुकसान पहुंचाते हैं। इस फसल को कीड़े-मकोड़े एवं बीमारियों से बचाने के लिए प्राकृतिक संसाधननों को नुकसान पहुँचाए बिना निम्न तरीके से खेती करनी चाहिए :

1. पीला (चितेरी रोग) (येलो वेन मोजैक) एवं चूर्णी मिल्डयू से प्रतिरोधी प्रजातियों का चयन करना चाहिए।
2. गर्मी में पहले बोआई करने से मूंग में थ्रिप्स एवं उड़द में गेलुरिसिड बीटिल और जैसिड का आक्रमण कम होता है।
3. मूंग या उड़द के साथ ज्वार/बाजरा/तिल को अंतरासस्य के रूप में उगाने से जैसिड की संख्या घट जाती है।
4. यदि संभव हो सके तो स्पोडोप्टोरा प्रजाति, माइलाब्रिस प्रजाति एवं क्लेविग्राला प्रजाति के अंडों एवं अपरिपक्व अवस्थाओं को हाथ द्वारा चुनकर नष्ट कर देना चाहिए।
5. थ्रिप्स से फसल को बचाने के लिए समय-समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए।

6. फसल को पौध एवं वानस्पतिक अवस्था में आक्रमण करने वाले कीड़े-मकोड़े से बचाने के लिए 2 प्रतिशत कार्बोफ्यूरान से बीजोपचार करने के बाद दानेदार फोरेट या कार्बोफ्यूरॉन 1-1.5 किग्रा- (सक्रिय तत्व) द्वारा प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि का उपचार करना चाहिए।
7. रोयेंदार सूंडियों को एकत्रित करके नष्ट कर देना चाहिए।
8. फली-भेदक एवं अन्य कीड़ों से रोकथाम हेतु मेथिल डेमेटान (0.0252%) या डेल्टामेथ्रिन (0.001%) या फेनवैलेरेट (0.004%) का पर्णीय छिड़काव करना चाहिए।
9. घुन से बचाने के लिए अरहर के लिए वर्णित उपायों के अनुसार दानों का भंडारण करना चाहिए।

रबी फसलों में रोग प्रबंधन

रबी की फसलों में गेहूँ, जौ, चना, तोरिया (लहिया), राही/सरसों, अलसी, कुसुम, चना, मटर एवं मसूर मुख्य हैं। इन फसलों के मख्य रोग कीट एवं उनकी रोकथाम निम्नवत् हैं -

गेहूँ :

अ) बीज-जनित रोग :

1) पहाड़ी बंट या दुर्गन्धयुक्त कंडुआ :

पहचान :

रोगी पौधों की बालियों में दाने कंडुआ की काले रंग की गांठों में बदल जाते हैं जिसके कारण बालियां फैली हुई सी दिखाई देती हैं। इसमें सड़ी मछली जैसी दुर्गंध आती है।

2) करनाल बंट :

पहचान :

रोगी दाने आंशिक रूप से काले चूर्ण में बदल जाते हैं। यह रोग दूषित बीज तथा भूमि द्वारा फैलता है।

रोकथाम :

इस रोग की आंशिक रोकथाम पहाड़ी बंट रोगी की भांति बीज को शोधित करके ही की जाती है। बीज पैदा करने के लिए बाली आने पर 2.5 कि.ग्रा. मैनकोजेब 1000 लिटर पानी मे घोलकर छिड़ाकव करने से बीज में करनाल बंट की रोकथाम की जा सकती है।

3) अनावृत कंडुआ :

पहचान :

इस रोग में बालियों में दानों के स्थान पर काला चूर्ण बन जाता है। बाद में रोगजनक असंख्य बीजाणु (काला चूर्ण) हवा द्वारा फैलते हैं और स्वस्थ बालियों में फूल आते समय उन्हें संक्रमित करते हैं।

रोकथाम :

यह रोग आंतरिक बीज-जनित है। अत: सर्वांगीण फफूंदीनाशी रसायन जैसे कार्बेन्डाजिम अथवा कोरबाक्सीन के 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से शोधित करके बीज बोना चाहिए। सर्वांगीण फफूंदीनाशक रसायन के प्रयोग से पहाड़ी बंट व करनाल बंट की रोकथाम हो जाती है।

4) गेहुँ का इयर कॉकल (से हूँ रोग) :

पहचान :

यह रोग 'ऐग्वीना ट्रिटिसाई' नाम सूत्रकृमि द्वारा होता है। इस रोग से ग्रसित

पौधों की पत्तियाँ मुड़ तथा सिकुड़ जाती हैं। प्रकोपित पौधे बौने रह जाते हैं तथा उनमें स्वस्थ पौधों की अपेक्षा अधिक शाखाएँ निकलती हैं। रोगग्रस्त बालियां छोटी एवं फैली हुई होती हैं और इनमें अनाज की जगह भूरे या काली रंग की गांठें बन जाती है। जिसमें सूत्रकृमि रहते हैं।

रोकथाम :

इस रोग के निदान के लिए स्वच्छ एवं इयर कॉकल गांठयुक्त बीजों (जो सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त बीज वितरण केंद्रों पर उपलब्ध होते हैं) का प्रयोग करें। इयर कॉकल गांठ मिश्रित बीज को कुछ समय के लिए 2 प्रतिशत नमक के घोल में डुबाएं ताकि सूत्रकृमि-ग्रसित काली गांठे हल्की होने के कारण घोल के ऊपर तैरने लगें। ऐसी गांठों को आसानी से निकाल कर नष्ट कर दें। नमक के घोल में डुबोने के बाद बीज को सावधानी से दो-तीन बार धोकर सुखा लेने के पश्चात् ही बोने के काम में लाए।

(ब) पत्तियों पर लगने वाले रोग :

1. आल्टरनेरिया झुलसा रोग :

पहचान :

निचली पत्तियों पर कुछ पीले व कुछ भूरापन लिए हुए अंडाकार धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बे बाद में किनारों पर कत्थई भूरे रंग के तथा बीच में हल्के भूरे रंग के हो जाते हैं।

रोकथाम :

इनकी रोकथाम के लिए मैंकोजेब 2 कि.ग्रा. अथवा जिनेब 75 प्रतिशत विलेय चूर्ण 2.5 कि.ग्रा. अथवा जिरम 80 प्रतिशत विलेय चूर्ण 2.0 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से 1000 लीटर पानी में घोलकर रोग के लक्षण दीखने पर पहला छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर दूसरा छिड़काव 7-10 दिन के अंतर पर करना चाहिए।

2. गेरुई या रतुआ रोग :

पहचान :

गेरुई भूरे, पीले अथवा काले रंग की होती है। पत्तियों पर कवक के फफोले पड़ जाते हैं, जो बाद में बिखरकर अन्य पत्तियों को भी ग्रसित कर देते हैं। काली गेरुई तना तथा पत्ती दोनों पर लगती है।

रोकथाम :

इस रोग का नियंत्रण मैंकोजेब या जिनेब 2 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर 1000 लिटर पानी में घोलकर छिड़काव करके किया जा सकता है। पहला छिड़काव रोग दिखाई देते ही, तथा दूसरा छिड़काव 10 दिन व तीसरा छिड़काव 15 दिन के अंतर करना चाहिए।

3. हेल्मेन्थोस्पोरियम झुलसा रोग :

पहचान :

इस रोग में पत्तियों पर भूरे रंग के बेलनाकार धब्बे बनते हैं।

रोकथाम :

इस रोग की रोकथाम गेरुई या रतुआ रोग के उपचार की भाँति ही करें।

गेहूँ के कीट :

असिंचित क्षेत्रों में भूमिगत कीटों जैसे दीमक और गुजिया का प्रकोप होता है। अत: इन्हें नष्ट करने के लिए खेत की आखिरी जुताई पर या खड़ी फसल पर प्रकोप होने पर सिंचाई के साथ (कीटों की किस्म के अनुसार) निम्न प्रकार से भूमि को शोधित कर लेना चाहिए :

1. दीमक :

पहचान :

यह सफेद मटमैले रंग का बहुभक्षी कीट है, जो कई प्रकार का होता है जैसे- श्रमिक, सैनिक, पंखदार प्रौढ़ नर तथा पंखहीन रानी। दीमक जमीन की सतह के अंदर या टीले बनाकर रहते हैं।

रोकथाम :

दीमक की रोकथाम हेतु बोआई से पहले खेत में बी.एस.सी. 10% चूर्ण का प्रयोग 25-30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से करना चाहिए अथवा क्लोपाइरीफॉस 20 ई.सी. को तीन चार मिली. प्रति कि.ग्रा. बीज के साथ मिलाकर बोआई करनी चाहिए।

2. गुजिया :

पहचान :

यह कीट भूरे मटमैले रंग का 5-6 मि.मी. लंबा एवं 2-3 मि.मी. चौड़ा होता है, जो जमीन में ढेलों या दरारों में छिपा रहता है। यह उग रहे पौधों को जमीन की सतह से थोड़ा नीचे काटकर हानि पहुंचाता है।

रोकथाम :

खड़ी फसल में गुजिया लगने पर गामा बी.एस.सी. 20 ई.सी. 3.75 लिटर अथवा क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. 2-3 लिटर प्रति हेक्टेयर की दर से सिंचाई के पानी के साथ प्रयोग करना चाहिए।

3. माहूं :

पहचान :

यह छोटे कोमल शरीर वाले हरे रंग के कीट होते हैं जो पत्तियों,

पुष्प-विन्यास तथा पौधे के अन्य कोमल भागों में चिपके रहते हैं तथा रस चूसकर पौधों को कमजोर करके नुकसान पहुंचाते हैं।

रोकथाम :

माहूं कीट की रोकथाम के लिए इंडोसल्फान 35 ई.सी. 1.25 लिटर अथवा मेथिल-ओ-किपेटान 25 ई.सी. 1.0 लिटर प्रति हेक्टेयर की दर से 1000 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

जौ :

जौ के रोग:

1. आवृत कंडुआ :

पहचान :

बालियों में दानों के स्थान पर कवक के काले बीजाणु बन जाते हैं जो एक मजबूत झिल्ली से ढके रहते हैं।

रोकथाम :

बीज को 2.5 ग्राम थिरम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से शोधित करके बोना चाहिए।

2. अनावृत कंडुआ :

पहचान :

इस रोग में स्वस्थ बालियों के स्थान पर रोगी बालियां निकलती हैं जो सफेद रंग की झिल्ली से ढकी रहती हैं। बाद में झिल्ली फट जाती हैं और कवक के असंख्य बीजाणु हवा में फैल जाते हैं जो स्वस्थ पौधों में बाल निकालने के समय पुष्पावस्था में स्वस्थ पौधों पर संक्रमण करते हैं।

3. पत्ती का धारीदार रोग :

पहचान :

इस रोग में नसों के बीच हरापन समाप्त होकर पीली धारियां बन जाती हैं जो बाद में गहरे भूरे रंग में बदल जाती हैं और जिस पर कवक के असंख्य बीजाणु बनते हैं।

रोकथाम :

बीज को थिरम 2.5 कि.ग्रा. प्रति किलोग्राम बीज की दर से शोधित करके बोना चाहिए।

4. पत्ती का धब्बेदार रोग :

पहचान :

इसमें पत्तियों के किनारे पर अंडाकार भूरे रंग के धब्बे पड़ते हैं जो बाद में पूरी पत्ती पर फैल जाते हैं और आपस में मिलकर धारियां बना लेते हैं।

रोकथाम :

इस रोग की रोकथाम पत्ती के धारीदार रोग की भांति ही करें।

जौ के कीट :

गेहूँ की ही भांति जौ की फसल में भी दीमक, गुजिया तथा माहूँ कीट लगते हैं जिनकी पहचान उसी प्रकार की जाती है जैसे गेहूँ में।

तोरिया (लहिया) :

रोग :

1. झुलसा रोग :

पहचान :

इस रोग में पत्तियों तथा फलियों पर गहरे कत्थई रंग के धब्बे बनते हैं जिनमें गोल छल्ले स्पष्ट दिखाई देते हैं। यह रोग अल्टरनेरिया जाति की कवक से होता है।

रोकथाम :

झुलसा रोग की रोकथाम के लिए जिंक मैंगनीज कार्बामेट 75% कि.ग्रा. अथवा थिरम 80% 2 कि.ग्रा. अथवा जिनेब 75 प्रतिशत 2.5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से 800-1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर इन्हीं कवकनाशियों का छिड़काव 10-10 दिन के अंतर पर पुनः करना चाहिए।

2. सफेद गेरूई :

पहचान :

इस रोग में पत्तियों की निचली सतह पर फफोले बनते हैं और बाद में पुष्प-विन्यास विकृत हो जाता है।

रोकथाम :

इस रोग की रोकथाम झुलसा रोग के लिए संस्तुत कवकनाशियों में से किसी एक का छिड़काव करके करना चाहिए।

3. तुलासिता रोग :

पहचान :

इस रोग में पत्तियों की निचली सतह पर सफेद रोएंदार कवक तथा ऊपरी सतह पर पीलापन मिलता है।

रोकथाम :

इस रोग की भी रोकथाम झुलसा रोग की भाँति करनी चाहिए।

कीट :

1. आरा मक्खी :

पहचान :

इसकी गिडारें सरसों कुल की सभी फसलों को हानि पहुंचाती हैं। ये काले रंग की होती हैं और पत्तियों को बहुत तेजी से किनारों पर अथवा विभिन्न आकार के छेद बनाती हुई खाती हैं, जिससे पत्तियां बिल्कुल छलनी हो जाती हैं।

रोकथाम :

इसकी रोकथाम निम्नलिखित कीटनाशी रसायनों में से किसी एक का प्रति हेक्टेयर प्रयोग करके की जा सकती है।

(1) मैलाथियान 5 प्रतिशत चूर्ण 20-25 कि.ग्रा., (2) कार्बारिल 10 प्रतिशत चूर्ण 20 कि.ग्रा., (3) डी.डी.वी.पी. 76 ई.सी. 0.5 लीटर, (4) इंडोसल्फान 35 ई.सी. 1.25 लीटर, (5) मैलाथियान 50 ई.सी. 1.5 लीटर, (6) इंडोसल्फान 4 प्रतिशत धूल 20 कि.ग्रा. तथा (7) क्यूनालफास 1.5 प्रतिशत धूल 20 कि. ग्रा.।

2. माहूँ :

पहचान :

यह छोटा, कोमल शरीर वाला हरे मटमैले भूरे रंग का कीट होता है जिसके झुंड पत्तियों, फूलों, डंठलों एवं फलियों आदि पर चिपके रहते हैं और रस चूसकर पौधे को कमजोर करते हैं।

रोकथाम :

इस कीट की रोकथाम के लिए प्राय: आरा मक्खी कीट के नियंत्रण के लिए प्रयोग में आने वाले कीटनाशी रसायन ही प्रयोग होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कीटनाशी रसायन जैसे : फॉस्फेमिडान 85 ई.सी. 0.25 ली अथवा मिथाइल-ओ-डिपेटान 25 ई.सी. 1.00 लिटर या मोनोक्रोटोफास 36 ई.सी. 0.75 लिटर प्रति हेक्टेयर की दर से 800-1000 लिटर पानी में घोलकर छिड़काव करते हैं।

3. बालदार गिडार :

पहचान :

इस भुड़ली के शरीर का रंग पीला अथवा नारंगी होता है परंतु सिर व पीछे का भाग काला होता है तथा शरीर पर घने काले बाल होते हैं।

रोकथाम :

प्रथम अवस्था में गिडार झुंड में पाई जाती है। उस समय उन पत्तियों को तोड़कर एक बाल्टी मिट्टी के तेलयुक्त पानी में डालने से गिडार मर जाते हैं। द्वितीय अवस्था में गिडारों की रोकथाम हेतु मेथिल पैराथियान 2 प्रतिशत धूल 20 कि.ग्रा. या क्यूनालफॉस 1.5 धूल 20 कि.ग्रा. अथवा बी.एस.सी. 50 प्रतिशत विलेय चूर्ण 4 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से बुरकाव/छिड़काव करना चाहिए।

पूर्ण-विकसित गिडारों की रोकथाम हेतु डाईक्लोरवास या डी.डी.वी.पी. 75 ई.सी. 625 मि.ली. अथवा क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. 1.25 लिटर अथवा क्यूनालफॉस 1.25 लिटर प्रति हैक्टेयर की दर से 800-1000 लिटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

4. पेन्टेड :

पहचान :

यह नारंगी रंग का धब्बेदार कीट है जिसके वयस्क पत्तियों, मुलायम

टहनियों तथा कलियों से रस चूसते हैं जिसके फलस्वरूप पौधों की वृद्धि रुक जाती है। कीटों का झुंड कटाई के बाद मंडाई के लिए रखे गए ढेर में भी होता है जो दानों पर आक्रमण करता है।

रोकथाम :

इस कीट की रोकथाम के लिए माहूँ के रोकथाम में वर्णित किसी एक कीटनाशी का प्रयोग करना चाहिए।

राई सरसों :

रोग एवं कीट :

राई की फसल में लगने वाले रोग/कीट की पहचान एवं नियंत्रण, तोरिया की फसल की भांति ही हैं।

अलसी :

रोग :

1. गेरुई रोग :

पहचान :

इस रोग में पत्तियों, पुष्प शाखाओं तथा तने पर गेरूई के नारंगी रंग के फफोले बन जाते हैं जिनके बीजाणु हाथ में चिपक भी जाते हैं।

रोकथाम :

इस रोग की रोकथाम जिंक मैंगनीज कार्बोनेट 2 कि.ग्रा. अथवा विलेय गंधक 3 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से 800-1000 लिटर पानी में घोलकर छिड़काव करके करते हैं।

2. चूर्णिल आसिता (चूर्णी मिल्डयू) रोग :

पहचान :

इस रोग में पत्तियों पर सफेद चूर्ण बनता है और बाद में पत्तियाँ सूख जाती हैं।

रोकथाम :

इस रोग की रोकथाम के लिए विलेय गंधक 3कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

3. उकठा रोग :

पहचान :

रोगग्रसित पौधों की पत्तियों नीचे से ऊपर की ओर पीली पड़ने लगती हैं तथा बाद में पौधा सूख जाता है।

रोकथाम :

इस रोग के बचाव के लिए दीर्घकालीन फसल-चक्र अपनाना चाहिए। इसके अतिरिक्त बीज को 2.5 ग्राम थिरम या 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम से प्रति कि. ग्रा. बीज शोधित करके बोना चाहिए।

4. झुलसा रोग :

पहचान :

इस रोग का प्रकोप सर्वप्रथम अंकुरण के पश्चात् पत्तियों पर दिखाई देता है। तत्पश्चात् सभी पत्तियों पर गहरे कथई रंग के धब्बे बनते हैं। दाने बनते समय में पत्तियां झुलस जाती हैं।

रोकथाम :

खड़ी फसल में रोकथाम हेतु मैंकोजेब 75 प्रतिशत 2 कि.ग्रा. या थिरम 80 प्रतिशत 2 कि.ग्रा. या जिनेब 75 प्रतिशत 2.5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर 800-1000 लिटर पानी में मिलाकर रोग के लक्षण दिखाई देते ही छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर दूसरा या तीसरा छिड़काव भी करें।

कीट :

1. सेमीलूपर :

पहचान :

इसकी सूंडियां हरे रंग की होती हैं जो पीठ को ऊपर उठाकर अर्धलूप बनाती हुई चलती हैं। यह पत्तियों को खाती हैं।

रोकथाम :

इसकी रोकथाम हेतु इंडोसल्फान 35 ई.सी. 1.5 लटिर अथवा मानोक्रोटाफॉस 36 ई.सी. 750 मि.ली. अथवा क्यूनालफॉस 25 ई.सी. प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

पिटिका मशकाभ (गलमिज) :

पहचान :

फसल की खिलती हुई कलियों के अंदर इस कीड़े की सूक्ष्म गिडारें पुंकेसर को खाती हैं जिससे फलियाँ नहीं बनती हैं।

रोकथाम :

इस कीट की रोकथाम के लिए फॉस्फोमिडान 85 ई.सी. -250 मि.ली. अथवा मिथाइल-ओ-डिपेटान 25 ई.सी. 1लिटर अथवा मोनोक्रोटोफॉस 35 ई.सी. 0.75 अथवा क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. 1.25 लिटर इंडोसल्फान 35 ई.सी. 1.

25 लिटर प्रति हेक्टेयर की दर से 750 लिटर पानी में घोल बनाकर पत्तियाँ बनते समय छिड़काव करें।

चना :

रोग :

1. उकठा रोग

पहचान:

इस बीमारी के लगने से पौधे मुरझाकर सूख जाते हैं। यदि पौधे के जड़ का बीच से चीर कर देखा जाए तो अंदर का रंग भूरा सा काला दिखाई देता है।

रोकथाम :

इस रोग की रोकथाम हेतु दीर्घकालीन तीन-चार वर्ष का फसल-चक्र अपनाना चाहिए। रोग की अवरोधी प्रजातियां बोनी चाहिए। अलसी के साथ सह-फसली खेती भी रोग को कम करने में लाभप्रद पाई गई है।

2. झुलसा रोग :

पहचान :

इस रोग के लक्षण फूल निकलने से पूर्व पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे के रूप में दिखाई देती है। साथ ही फलों पर भी गहरे भूरे धब्बे बनकर उसे सुखा देते हैं जिससे फलियां बनती ही नहीं और सूख जाती हैं।

रोकथाम :

इस रोग की रोकथाम हेतु जिंक मैंगनीज कार्बामेट 2.0 कि.ग्रा. अथवा जिरम 80 प्रतिशत 2 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से फूल आने के पूर्व एक छिड़काव तथा उसके 10 दिन बाद दूसरा छिड़काव करना चाहिए।

कीट :

1. कटुआ कीट :

इस कीट की गिडारें रात्रि के समय पौधों को जमीन की सतह से काटती हैं।

रोकथाम :

इसकी रोकथाम के लिए बोआई से पूर्व खेत में 10 प्रतिशत बी.एच.सी. चूर्ण 30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से मिट्टी में मिलाना चाहिए।

2. पत्ती छेदक कीट :

पहचान :

इस कीट की गडारें फलियों में छेद करके अपने सिर को फलियों के अंदर डालकर दानों को खाती हैं।

रोकथाम :

इसकी रोकथाम के लिए फली बनना शुरू होते ही पहला छिड़काव निम्न किसी भी एक रसायन को 600-800 लिटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें। इंडोसल्फान 35 ई.सी. 1.5 लिटर अथवा मोनोक्राटोफॉस 36 ई. सी. 750 मि.ली अथवा क्यूनालफॉस 25 ई.सी. 1.25 लिटर।

3. अर्धकुंडलक कीट (सेमी लूपर)

पहचान :

इसकी गिडारें हरे रंग की होती हैं, जो अर्धलूप बनाती हुई चलती हैं। ये गिडारें चने की पत्तियों, फलों एवं कोमल पत्तियों को खाती हैं।

रोकथाम :

इस कीट की रोकथाम फली छेदक कीट की रोकथाम की भांति ही करें।

मटर :

रोग :

1. बुकनी रोग :

पहचान :

इसमें पत्तियों, फलियों तथा तने पर सफेद चूर्ण सा फैलता है और बाद में पत्तियाँ काली होकर मरने लगती हैं।

रोकथाम :

1. अवरोधी किस्मों का प्रयोग करें 2 खड़ी फसल में विलेय गंधक 3 कि.ग्रा. या डासनों केप 48 ई.सी. 600 मि.ली. या कार्बोन्डिाजिम 500 ग्राम या ग्राम या ट्राइडोमार्क 80 ई.सी. 500 मि.ली. प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। दूसरा छिड़काव 10 दिन के अंतर पर करें।

2. रतुआ रोग :

पहचान :

इस रोग में पत्तियों तथा चने पर पीले रंग के फफोले बनते हैं।

रोकथाम :

इसकी रोकथाम बुकनी रोग में प्रयुक्त कवकनाशियों में से किसी एक का छिड़काव करके करें।

3. उकठा रोग :

पहचान :

इस रोग की प्रारंभिक अवस्था में पौधों की पत्तियाँ नीचे से ऊपर की ओर पीली पड़ने लगती हैं और पूरा पौधा सूख जाता है।

रोकथाम :

चने की भांति करें।

4. तुलासिता रोग :

पहचान :

इस रोग में पत्तियों की ऊपरी सतह पर प्रारंभिक अवस्था में पीले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं जिसके नीचे सफेद रूई के समान कवक की वृद्धि दिखाई देती हैं।

रोकथाम :

इस रोग की रोकथाम रतुआ रोग की भांति ही करें।

5. झुलसा रोग :

पहचान :

इस रोग की पहचान एवं रोकथाम चने की भांति ही है।

कीट :

1. तना मक्खी कीट :

पहचान :

यह काले रंग की मक्खी होती है। इसकी गिडारें फसल की प्रारंभिक अवस्था में तने में छेद करके अंदर से खाती हैं, जिससे पौधे सूख जाते हैं।

रोकथाम :

1) अक्टूबर मे बोआई न करें। (2.) इसके कीट की रोकथाम हेतु बोआई से पूर्व 10 प्रतिशत फोरेट ग्रेन्यूल 5 कि.ग्रा. अथवा 3 प्रतिशत कार्बोफ्यूरान ग्रेन्यूल 15 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। खड़ी फसल में प्रकोप होने पर इसकी रोकथाम के लिए फॉस्फोमिडान 85 ई.सी. 250 मि.ली. अथवा डायमिथोएट 30 ई.सी. 1.00 लिटर प्रति हेक्टेयर की दर से इस प्रकार छिड़काव करें कि पूरा पौधा ऊपर से नीचे तक पूरी तरह से भीग जाए।

2. पर्ण सुरंगकर (लीफ माहनर) :

पहचान :

इस कीट का आक्रमण पौधे की प्रारंभ अवस्था में शुरू हो जाता है। कीट की गिडारें पत्तियों में सुरंग बनाकर कोशिकाओं को खाती हैं।

ये सुरंगे पत्तियों पर दिखाई देती हैं।

रोकथाम :

इसकी रोकथाम हेतु फसल पर डायमेथोएट 30 ई.सी. या मेथिल ओ-डेमेटान 25 ई.सी. 1.00 लिटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

मसूर :

रोग :

1. उकठा रोग :

पहचान :

इस रोग की पहचान एवं रोकथाम चने या मटर की भांति ही करें।

2. रतुआ रोग :

पहचान :

पत्तियों पर पीले रंग के गोलाकार फफोले पड़ते हैं जो बाद में भूरे रंग के हो जाते हैं।

रोकथाम :

इसकी रोकथाम मटर की भांति ही करें।

3. बुकनी रोग :

पहचान :

इस रोग की पहचान एवं रोकथाम मटर की भांति ही है।

कीट :

1. माहूँ :

पहचान :

यह कीट, समूह में पत्तियाँ तथा पौधों के अन्य कोमल भागों से रस चूसकर फसल को नुकसान पहुंचाता है। इस कीट का रंग काला होता है।

रोकथाम :

इसकी रोकथाम सरसों कुल की फसलों की भांति ही करें।

2. फलीबेधक कीट :

पहचान :

इसकी पहचान एवं रोकथाम मटर की भांति है।

खरपतवार-प्रबंधन

खरपतवारों का निरोध : निरोध का अर्थ है, किसी स्थान-विशेष पर उस खरपतवार को न जाने देना, जिससे वह स्थान तब तक ग्रस्त न हो। निरोध की विभिन्न विधियों का उपयोग खेत को नए खरपतवारों द्वारा ग्रस्त होने से रोकना है। निरोधक विधियों से खरपतवारों की प्रबलता को कम तो किया जा सकता है, लेकिन वह नियंत्रण का कोई ऐसा कार्यक्रम भी नहीं है जो खेत में निकले हुए विभिन्न खरपतवारों का उन्मूलन कर सके। अत: निरोध कार्यक्रम की सफलता खरपतवारों की जाति और नियंत्रण के प्रयासों पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, अगर कोई किसान किसी खेत से सिरसियम आर्वेन्स (कंटीली) को नष्ट करना व उसे फैलने से रोकना चाहे तो अकेले उसी की कोशिशों से काम नहीं चलेगा क्योंकि इसके कायिक प्रजनन अंग व बीज अन्य स्थानो से भी उसके खेत में पहुँच सकते हैं। ऐसी अवस्था में यदि खरपतवार प्रबन्धन की किसी प्रभावशाली प्रणाली को प्रयोग में लाया जाए तो खरपतवारों की संख्या में कमी आती है। फैलने के लिए खरपतवार अधिकतर बाहरी साधन-शक्तियों पर निर्भर रहते हैं। खरपतवारों में प्रजनन की अधिक क्षमता, प्रकीर्णन में सहायक विशिष्ट गुण, प्रसुप्ति काल और अंकुरण क्षमता आदि खरपतवार-नियंत्रण की समस्या को जटिल बनाने में कुछ कारक है।

खरपतवारों के निरोध की विधियां

खरपतवारों के निरोध में सफलता तभी मिलती है, जब समस्या की प्रकृति का समुचित ज्ञान हो। इसके लिए खरपतवारों के पौधे, बीज, या अन्य जननांगो आदि का पूरा ज्ञान होना आवश्यक है। खरपतवार को पौध अवस्था में पहचानना भी आवश्यक होता है, क्योंकि नियंत्रण की विधि, पौधे की प्रारंभिक बढ़वार के समय ही अधिक प्रभावशाली होती है। इसके अलावा रोग ग्रस्तता की संभावित

बढ़वार का पता होना भी आवश्यक है। यह भी जानना चाहिए कि खेती की कौन कौन सी पद्तियाँ खरपतवारों की समस्या को बढ़ाती हैं उदाहरणार्थ, किसान की यह मालूम होना चाहिए कि कौन-कौन से खरपतवार फसलों के बीजों के साथ ही फैलते हैं।

भली-भांति स्थापित खरपतवारों पर उन्मूलन व नियंत्रण की विधियों का उपयोग एक दूसरे से संबंधित होता है और इन पारस्परिक संबंधों को महत्व दिया जाना चाहिए।

खरपतवारों की रोकथाम का कोई भी उपाय तब तक संपन्न नहीं हो सकता, जब तक उसे भली-भांति एवं पूरी तरह से अपनाया नहीं जाता। अनेक बार बहुवर्षी खरपतवारों को मंहगे मृदा निर्जर्मीकारकों द्वारा नष्ट करने की चेष्टा की जाती है और उनका प्रभाव देखते ही यह समझा जाने लगता है कि समस्या समाप्त हो गई है। किंतु शाकनाशी के भूमि में से विसरित होते ही प्रसुप्त बीज व कायिक प्रजनन अंग पुन: निकल कर हानि पहुंचाने लगते हैं। इसलिए बहुवर्षी खरपतवारों के प्रभावशाली नियंत्रण के लिए उन्मूलन कार्यक्रम को कई वर्षों तक चलाना पड़ता है। कार्य प्रबंध के अच्छे तरीके खरपतवार निरोध में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। साफ जीवनक्षम और सु-अनुकूलित बीज यदि ठीक समय पर बोए जाएं तो वे खरपतवारों की प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता को काफी हद तक कम कर देते हैं। फसल खरपतवार निरोध के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए -

1. शुद्ध एवं साफ बीज का उपयोग

खरपतवार निरोध का पहला सिद्धांत केवल, साफ बीज को ही उपयोग में लाना है। अशुद्ध बीज के विक्रय एवं उपयोग से खरपतवारों को नये क्षेत्रों में फैलने में बढ़ावा मिलता है। इसको ध्यान में रखते हुए कानूनी नियमों और बीज अधिनियमों में बीज के साथ खरपतवारों के बीजों की अधिकतम मिलावटी मात्रा निर्धारित कर दी जाती है ताकि शुद्ध एवं साफ बीज बोने के फलस्वरूप खेतों में नए खरपतवारों की समस्या खड़ी न हो।

हालांकि बीज का अंकुरण और शुद्धता परीक्षण बहुत महत्वपूर्ण होता है, किंतु ऐसा देखा गया है कि अधिकतर यह जॉव बोआई से पहले नहीं कराई जाती। अच्छे व शुद्ध बीज के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना जरूरी है :

i) बीज के थैले पर लेबल में उसका अंकुरण प्रतिशत देखकर कर लेना चाहिए।

ii) बोने के लिए अनुकूल किस्म का प्रमाणित बीज ही लेना चाहिए।

iii) यदि अप्रमाणित बीज का उपयोग किया जा रहा है तो उसमें खरपतवार के बीजों की जांच कराना आवश्यक होता है जिससे यह पता चल जाए कि कौन कौन से बीज खरपतवार से ग्रसित है।

iv) अप्रमाणित बीज को भली भांति साफ कर लेना चाहिए और बोआई से पहले देख लेना चाहिए कि फसल का बीज खरपतवार के बीज से युक्त तो नहीं है।

v) फार्म उपकरण की सफाई: पानी के जहाज, हवाई जहाज, रेल, मोटरकार आदि स्वचालित वाहन, खरपतवारों को फैलाने में सहायक होते हैं। खरपतवारों के बीज इन वाहनों की सतह पर चिपक कर एक से दूसरे स्थान पर पहुंच जाते हैं। ऐसे कृषि यंत्र जो एक खेत से दूसरे खेत में आते जाते हैं, अपने साथ मिट्टी में उपस्थित खरपतवार के बीजों को भी एक से दूसरे स्थान तक ले जाने में बड़े कारक होते है। बहुवर्षी खरपतवारों के कायिक जननांग कर्षण क्रिया के समय उपकरणों से छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में कट जाते हैं तथा इन्हीं उपकरणों के माध्यम से अन्य स्थानों पर पहुंच जाते हैं।

बोआई, कर्षण और संसाधन के कुछ यंत्र व उपरकण आसानी से साफ किए जा सकते है, किंतु कम्बाइन जैसे बड़े उपकरण को साफ करने में अत्यंत कठिनाई होती है, क्योंकि उनकी छलनी व कैनवास अंदर की ओर स्थित होती है। काफी दबाव की वायु डालकर ही इनहें साफ किया जा सकता है। उपकरणों की सफाई के समय इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए कि सफाई करने के स्थान से अन्य स्थानों द्वारा संदूषण न फैले।

2. पशुओं द्वारा फैलने वाले संदूषण से बचाव

अनेक खरपतवारों के बीज पशुओं की खाल, बाल व खुरों में चिपक कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलते हैं। पशु अपने चारे के साथ कई बार खरपतवारों के बीज भी खा जाते हैं और मल के रूप में यहाँ-वहाँ उन्हें निकालकर दूसरे खेतों को खरपतवार-ग्रस्त कर देते हैं। घरेलू पशुओं, जंगली जानवरों, चिड़ियों इत्यादि पर हुए परीक्षणों से पता चला है कि उनके पाचन-पथ में से गुजरने के बाद भी कई खरपतवारों के बीज अंकुरणक्षम बने रहते हैं। चिड़ियां भी अनेक खरपतवारों के बीजों को एक से दूसरे स्थान पर पहुंचाती है। यद्पि चिड़ियों के आने-जाने पर रोक लगाना बहुत कठिन है, फिर भी जहां तक हो सके, इनसे बचाव की विधियाँ अवश्य अपनानी चाहिए।

3. कच्ची खाद को उपयोग में न आना

कच्ची खाद में खरपतवारों के बीज अंकुरणरक्षम अवस्था में रहते हैं जबकि भली-भाँति सड़ी हुई खाद में अंकुरणक्षम बीज कम संख्या में पाए जाते हैं। एक परीक्षण में एक माह पुरानी खाद में उपस्थित खरपतवार के बीज अंकुरित हुए, लेकिन 6 माह तक सड़ाई हुई खाद में कोई भी बीज अंकुरित नहीं हुआ। ऐसा पाया गया है कि यद्पि काफी बीज पाचन पथ से गुजरने और खाद बनने के दौरान नष्ट हो जाते हैं, फिर भी सड़ी हुई खाद को खेत में डालने के बाद खरपतवार के बहुत से बीज अंकुरित होकर फसल को ग्रस्त करते हैं।

4. मृदा अंतरण द्वारा फैलने वाले खरपतवारों से बचाव

खेत की मिट्टी के वहने के साथ खरपतवारों के छोटे आकार के बीज भी एक से दूसरे स्थान पर पहुंच जाते हैं। यह समस्या अधिकतर छोटे बीजों की ही होती है। कई बार जब नर्सरी क्यारियों व गमलों में पौधे उगाने, लॉन के चौरस करने अथवा गड्ढे वगैरह करने के लिए मिट्टी एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जाती है तो इस प्रकार की समस्या सामने आती है क्योंकि इसमें मिट्टी के साथ-साथ खरपतवारों के बीज भी अंतरित हो जाते हैं।

5. सिंचाई व निकास नालियाँ द्वारा होने वाले प्रकीर्णन को रोकना

सिंचित क्षेत्रों में सिंचाई की नहरों-नालियों के किनारे अधिक खरपतवार उगते हैं जो धीरे-धीरे खेतों में भी फैल जाते हैं। इन खरपतवारों के बीज, कंद, प्रकंद और अन्य कायिक प्रजनन अंग हल्के होते हैं तथा नहर, नालियों के पानी की सतह पर तैरते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने की क्षमता रखते है। ऐसे स्थानों पर नहर विभाग से संबंधित लोग और नहरों का उपयोग करने वाले किसान यदि आपस में सहयोग करें तो खेतों व नहरों को साफ रखा जा सकता है एवं खरपतवरों को काफी हद तक बढ़ने से रोका जा सकता है। कोई अकेला किसान अपने खेत को साफ तो रखा सकता है, किंतु जब तक उसके आस-पास के अन्य किसान भी अपने खेतों को साफ नहीं रखेंगे तब तक इस विधि से खरपतवार निरोध में सफलता प्राप्त नहीं हो सकेगी।

निकासी वाले स्थानों में, जहाँ से वर्षा का बहता हुआ, अतिरिक्त जल या सिंचाई का फालतू पानी निकलता है, खरपतवारों की समस्या और भी विक्ट होती है। वहां निरोध के उपर्युक्त उपायों को अवश्य प्रयोग में लाना चाहिए।

6. कर्षण क्रिया से बच निकलने वाले पौधों का निरोध

विदेशी पौधे, जो शोभाकारी या परीक्षणात्मक पौधों के रूप नए वातावरण में लाए जाते हैं, यदि नियंत्रण के साथ न उगाए गए तो वे कालांतर में संभावित खरपतवार बन जाते हैं। इसी तरह कई पौधे घटनावश या अनजाने ही परीक्षणात्मक पौधों या उनके बीजों के रूपों में एक देश से ऐसे दूसरे देशों में चले जाते हैं जहाँ के वे देशज नहीं होते। यही पौधे बाद में खरपतवार के रूप में फसलों को ग्रस्त करते हैं।

ऐसी अनचाही बाहरी जातियों के पौधों के लिए, जो कि बहुत जल्दी फैलती है, निरंतर सतर्कता व जाँच की आवश्यकता होती है। इनकी पहचान जल्दी की जानी चाहिए ताकि शीघ्रातिशीघ्र इनके निरोध व उन्मूलन के उपाय अपनाए जा सकें।

7. अनुपयोगी स्थानों में खरपतवारों को रोकना

ये वे स्थान हैं जिन पर खरपतवार बिना किसी रोकथाम के बढ़ते हैं व बीज पैदा करके आस पास के खेतों को ग्रस्त करते हैं उदाहरणार्थ, सड़कों के किनारे, रेल की पटरी, खेतों की मेड़ें, इत्यादि। इनके अतिरिक्त ये खरपतवार रोग व कीटों के वैकल्पिक परपोषी बन कर उनके फैलने में सहायक होते हैं। यह आवश्यक है कि इन स्थानों पर खरपतवारों के पुष्पन के पहले ही नष्ट कर दिया जाए।

अध्याय-6

बीज शोधन

रोगाणुओं एवं कीटों के आक्रमण से बीजों का मुक्त होना अत्यंत आवश्यक है। बीज द्वारा फैलने वाले रोगों के रोगाणु बीजों पर आक्रमण करके उनकी अंकुरणक्षमता कम या कभी-कभी समाप्त भी कर देते हैं। ऐसे बीजों को प्रयोग करने का अर्थ है- रोग-ग्रस्त पौधे पैदा करना। इसी प्रकार भंडारण के समय बहुत से कीड़े बीजों में लगकर उन्हें भीतर से खोखला बना देते हैं। ऐसे बीजों में जीवन-क्षमता का सर्वथा अभाव हो जाता है। बीजोढ़ (seed borne) रोगों के रोगाणुओं को नष्ट करने के लिए बीजों का उपचार आवश्यक होता है।

प्राय: सभी फसलों के अनेक रोगों का प्रारंभिक संक्रमण बीज या भूमि अथवा दोनों के माध्यम से होता है। रोग कारक कवक व जीवाणु, बीज से लिपटे रहते हैं या भूमि में पड़े रहते हैं। वे बीज की सतह पर या सतह के नीचे या बीज के अंदर प्रसुप्तावस्था में उपस्थित रहते हैं। भूमि में उनकी प्रसुप्त व सक्रिय दोनों अवस्थायें हो सकती हैं। बीज बोने के बाद वे अपने स्वभाव के अनुसार उगते बीज, अंकुर या पौधे के विभिन्न भागों पर आक्रमण करके रोग उत्पन्न करते हैं जो बीज-जन्य, भूमि-जन्य या दोनों प्रकार के हो सकते हैं। इन रोगों से फसल को बचाने के लिए बीज-शोधन ही एक मात्र उपाय है।

बोने के पूर्व बीज में उपयुक्त रसायनों का मिलाना ही बीज-शोधन या बीजोपचार कहा जाता है। बीज-शोधन के लिए प्रयोग में आने वाले सभी प्रचलित रसायन संपर्क विष होते हैं जो बीज की सतह पर अथवा भूमि में विद्यमान रोग को नष्ट कर देते हैं, परंतु बीज के अंदर पाए जाने वाले रोगकारक तत्वों पर उनका प्रभाव नहीं पड़ता है। इस कारण बीज की सतह पर बीज-शोधक रसायन की एकसमान व पतली पर्त का जमा होना आवश्यक है। इससे बीज की सतह

पर विद्यमान कवक आदि विष के संपर्क से नष्ट तो हो ही जाते हैं, साथ ही साथ बीज के आसपास की मिट्टी में पड़े कवक व जीवाणुओं की संख्या में भी कमी हो जाती है।

बीजशोधन से लाभ

सामान्यतया बीज-शोधन करने से निम्नलिखित लाभ होते हैं -

1) बीज की सड़न में कमी

बीज को सड़ाने वाली कवक, भूमि में पाई जाती है। बीजोपचार करने से बीज की सतह पर चिपका हुआ रसायन उसके आसपास की मिट्टी में विद्यमान कवक को नष्ट कर देता है।

2) बीज का अच्छा व समान अंकुरण

बीज-शोधन के पश्चात् बीज बोने से अंकुरण समान रूप से होता है। इसका कारण एक तो यह है कि बीज सड़ने से बच जाता है जिससे स्वस्थ व उगने वाले बीजों की संख्या बढ़ जाती है। दूसरे, उगते हुए अंकुर पर आक्रमण करने वाले कवक की संख्या भी कम हो जाती है, जिससे अधिक मात्रा में अंकुरण होता है।

3) बीज-जन्य रोगों में कमी -

बीज शोधन के पश्चात् बीज बोने से बीज-जन्य रोगों के फैलने की संभावना कम हो जाती है। यह बात बीज की सतह पर पाए जाने वाले रोगों (बाह्य रूप से बीज-जन्य) के संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

4) फसल का स्वस्थ होना

फसल सुदृढ़ व स्वस्थ होती है, क्योंकि पौधे, विशेष कर उनकी जड़ व अंकुर, रोग के आक्रमण से मुक्त होने के कारण शीघ्रता से अपने को स्थापित कर लेते हैं।

बीज शोधन की विधियां

बीज-शोधन के लिए निम्नलिखित तीन विधियाँ अधिक प्रचलित हैं:

1) शुष्क बीज-शोधन

इस विधि में सूखे रसायन को सूखे बीज में मिलाते हैं, अर्थात् रसायन व बीज दोनों का उपचार के समय सूखा होना आवश्यक है। शुष्क पारायुक्त रसायन, थीरम, कैप्टान, डायथेन एम 45 आदि का प्रयोग गेहूँ, मूँगफली, जौ, कपास, मक्का, ज्वार, चना, मटर आदि में इसी प्रकार से किया जा सकता है। बीज में दवा मिलाने के लिए बीज-शोधक यंत्र का प्रयोग किया जाता है। इस यंत्र में तीन-चौथाई तक बीज भर कर उसके ऊपर निश्चित मात्रा में दवा का चूर्ण डाल देते हैं। फिर यंत्र को हाथ से 40-50 बार धीरे-धीरे घुमाते हैं। इस प्रकार दवा बीज की सतह पर एक पतली पर्त के रूप में जमा हो जाती है। यंत्र के अभाव में घड़े का प्रयोग भी बीज-शोधन के लिए किया जा सकता है। घड़े में इसी प्रकार बीज व दवा भर कर उसका मुँह कपड़े से बाँध दिया जाए। 4-5 मिनट तक घड़े को घुमाने से दवा बीज में उचित प्रकार से मिल जाती है।

2) लेप विधि

इस विधि द्वारा बीज-शोधन के लिए विलेय चूर्ण का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतया मक्का, ज्वार व बाजरा, कैप्टान या थीरम द्वारा बीजोपचार के लिए इसी विधि का अनुसरण किया जाता है। दवा को पहले थोड़े पानी में घोल कर उसकी गाढ़ी लेई बना ली जाती है। इस लेई में थोड़ा-सा पानी मिला कर उसका गाढ़ा लेप बना लिया जाता है जिसे बीज पर छिड़क कर बीज में भली-भांति मिलाया जाता है। एक कुंतल बीज के लिए डेढ़ लिटर लेप पर्याप्त है।

3) घोल में डुबाना

इस विधि में विलेय पारायुक्त रसायनों जैसे सेरेसान वेट, एगलाल या एरीटान आदि का प्रयोग किया जाता है। इन्हें पहले पानी में घोलने के बाद उसमें

बीज को निश्चित अवधि के लिए डुबाया या भिगोया जाता है। आलू, गन्ना, लहसुन, प्याज, अनन्नास, अदरक, आदि में इसी विधि का अनुसरण किया जाता है। अंतिम दोनों विधियों को क्लेदित बीजोपचार (wet seed treatment) भी कहा जाता है।

बीजोपचार के लिए जो कवकनाशी रसायन प्रयोग में लाए जाते हैं, उन्हें दो वर्गों में बांटा जाता है- (i) पारारहित रसायन, और (ii) पारायुक्त रसायन।

पारारहित रसायन, भूमिगत रोगाणुओं से रक्षा करते हैं, परंतु बीजोढ़ रोगाणुओं को नष्ट करने में समर्थ नहीं होता। इन रसायनों का प्रयोग मक्का, सेम, मूंगफली एवं सब्जियों के बीज-सड़न एवं क्लेद गलन (damping off) रोगों से रक्षा करने के लिए किया जाता है। इन रसायनों में सक्रिय पदार्थ के रूप में थीरम, केटटान एवं क्लोरोनिल रहते हैं।

कार्बनिक *पारायुक्त रसायन* बीजोढ़ रोगाणुओं को पूरी तरह से नष्ट कर देते हैं, साथ ही भूमिगत रोगाणुओं से रक्षा भी करते हैं। ऐसे रसायनों में एग्रोसेन जी. एन., सेरेसान जैसे यौगिकों का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। गेहूँ, जौ एवं जई के आवृत कंड रोग (covered smut) (गेहूँ के बंट रोग, धान के झुलसा रोग तथा ज्वार के दाने के कंड रोग (grain smut) आदि के नियंत्रण के लिए इन रसायनों का प्रयोग किया जाता है।

सारणी- 6.1 कुछ प्रमुख बीजशोधन रसायनों की मात्रा एवं प्रयोगविधि

	बीज	दवा का नाम व मात्रा प्रति हेक्येटयर बीज हेतु	प्रयोग-विधि
1.	धान बौनी जाति	सेरासन वेट 45 ग्राम स्टेप्टो साइक्लीन 4¼ ग्राम, जिंक सल्फेट 180 ग्राम।	45 लिटर पानी में घोलकर 25 कि.ग्रा. बीज को 10-12 घंटे तक भिगोएं
2.	स्थानीय धान	एग्रोसन जी एन. 3 ग्राम प्रति किलो	यह सूखा चूर्ण है। बीज-शोधक ड्रम द्वारा मिलाएं।

3.	संकर मक्का व ज्वार	थीरम 3 ग्राम या कैप्टान 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से।	थोड़े पानी में गाढ़ा लेप बनाकर बीज में खूब मिलाएं।
4.	सोयाबीन	थीरम 4-5 ग्राम प्रति किलो बीज।	शुष्क या गाढ़ा लेप बना कर शोधन करें।
5.	आलू	6 प्रतिशत टफासान या एरीटान 125 ग्राम या 3 प्रतिशत एगलाल 125 ग्राम, एक हेक्टेयर बीज हेतु।	125 लिटर पानी में घोल कर प्रति हेक्टेयर के लिए बीज को 5 मिनट तक डुबाएं।
6.	गन्ना	6 प्रतिशत टफासान या एरीटान 250 ग्राम या 3 प्रतिशत एगलाल 500 ग्राम एक हेक्टेयर बीज हेतु।	250 लिटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर के लिए गन्ने के टुकड़े को 20 मिनट तक डुबाएँ।

अध्याय-7

अन्न भंडारण एवं चूहानियंत्रण

निश्चित रूप से कृषि में उन्नत प्रौद्योगिकी को अपनाने से खाद्यान्न उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई है। उत्पादन में इस वृद्धि का पूरा लाभ तभी प्राप्त हो सकता है जब इनका उचित भंडारण सुनिश्चित हो और उपभोक्ता तक फसल-उत्पाद ठीक स्थिति में पहुंचे। फसल कटने के पश्चात् उचित ढंग से भंडारण न होने से 10-20 प्रतिशत अनाज की हानि हो जाती है तथा भार में 5-25 प्रतिशत कमी तथा जीवत-क्षमता 20-25 प्रतिशत कम हो जाती है। अनाज को मुख्यत: निम्नलिखित कारणों से हानि होती है-

1. नमी

अक्सर यह देखा गया है कि दाने के अंदर की नमी तथा बाहर की नमी दोनो ही भंडारित अनाज को हानि पहुंचाती हैं। अधिक नमी से अनाज में कीड़ों का प्रकोप अधिक होता है क्योंकि नमी उनकी वृद्धि के लिए अनुकूल होती है। नमी से अनाज सड़-गल जाता है तथा अंकुरित हो जाता है, अनाज के दाने एक दूसरे से जुड़ जाते हैं, इनसे दुर्गंध आने लगती है तथा कवक भी लग जाती है, जिससे अनाज काला व सफेद पड़ जाता है।

2. कीड़े-मकोड़े

अधिकांश कीड़े, अनाज के भडारों के अंदर अनाज के साथ ही रहते हैं तथा नुकसान पहुंचाते हैं। ये कीड़े अनाज को बाहर और अंदर से खाकर खोखला कर देते हैं तथा अनाज की मात्रा व पोषक तत्वों के गुणों को भी कम करते हैं। साथ ही ये अनाज को अगली बुवाई के योग्य नहीं छोड़ते।

अनाज को मुख्य रूप से निम्न कीड़े हानि पहुंचाते हैं-

i) खपरा भृंग

यह गोदाम में रखे अनाजों का सबसे बड़ा दुश्मन है। इसके बच्चे दानों के भ्रूण को खाकर हानि पहुंचाते हैं। इसके आक्रमण से ग्रसित बोरियों से चूर्ण बाहर निकलने लगता है। यह सूंडी मुख्यत: गेहूँ, जौ, जई, ज्वार, बाजरा आदि को हानि पहुंचाती है।

(ii) अन्न व आटे की सूंडी (सुरेरी) :

इसके लारवा हानिकारक होते हैं जिसके काटने-चबाने वाले मुखांग होते है। इसकी सूंडी दाने में सूक्ष्म छिद्र करके अंदर घुसकर खाती रहती है। यह सूंडी गेहूँ, धान, मक्का, ज्वार आदि को हानि पहुंचाती है।

iii) दालों का घुन (ढोरा)

यह दालों का सबसे बड़ा दुश्मन है। इसके प्रौढ़ व ग्रव दोनों हानिकारक होते हैं। अंडों से बच्चे निकलकर दानों में छेद करके खाते हैं जबकि प्रौढ़ अंदर से खाते हैं। ये घुन चना, मटर, अरहर, लोबिया, मसूर आदि दालों को नुकसान पहुंचाते हैं।

iv) चावल की सूंडी:

यह सूंडी चावल, गेहूँ, जौ, मक्का, ज्वार आदि को अधिक हानि पहुंचाती है। यह मुख्य रूप से चावल व गेहूँ को नुकसान पहुंचाती है।

भंडार में कीट के पहुंचाने के स्रोत :

- कुछ कीट अनाज, दालों व फलियों पर अंडे देने से गोदामों तक पहुंच जाते हैं।
- खलिहान व कूड़े-करकट में छिपे कीट दानों के साथ गोदामों में पहुंचते हैं।
- अनाज ढोने वाले वाहन में छिपे कीट अनाज के साथ मिलकर गोदामों में चले जाते हैं।

- पुराने बोरों से कीट नये अनाज में आ जाते हैं।
- गोदामों की दीवारों की दरारों या बिलों में कीट छिपे रहते हैं जो नये अनाज में आकर मिल जाते हैं।

3. चूहे :

चूहे भंडार-गृहों में अनाज को सर्वाधिक क्षति पहुंचाते हैं। चूहे जितना अनाज खाते हैं उससे अधिक काटकर बरबाद कर देते हैं। ऐसा अनाज न तो उग सकता है और न ही खाने के योग्य रहता है।

4. कवक तथा जीवाणु

अनाज या गोदाम में नमी की अधिकता से कवक और जीवाणु तेजी से पनपते हैं। इस कारण भी अनाज बरबाद हो जाता है।

असुरक्षित अन्न-भंडारण से हानियां

उचित प्रकार से अन्न भंडारण न करने से निम्नलिखित प्रकार की हानियां होती हैं:

1) अनाज के पौष्टिक तत्व नष्ट हो जाते हैं।

2) अनाज की मात्रा कम हो जाती है।

3) अगली बोआई के लिए अच्छा बीज नहीं मिलता है।

4) फसल-उत्पाद के अच्छे दाम नहीं मिलते हैं।

5) खराब हुए अनाज के साथ और अधिक श्रम करना पड़ता है।

भंडारण संबंधी सावधानियां

उपर्युक्त सभी प्रकार की हानियों से बचने के लिए निम्नलिखित प्रकार से सावधानियां बरतनी चाहिए-

क) अनाज को भंडारण में रखने से पहले की सावधानियां।

ख) भंडारण में रखते समय की सावधानियां

ग) भंडारण में रखने के बाद की सावधानियां

क. अनाज को भंडारण में रखने से पहले की सावधानियां

1. भंडार-गृह को खलिहान एवं मड़ाई के स्थान से दूर रखना चाहिए, क्योंकि कीट खेतों और खलिहानों में पहुंच कर आगामी फसल की बालियों पर बने रहते है जो अनाज के दानों के साथ पुन: भंडार गृह में पहुँच जाते हैं।

2. थ्रेसर/कटाई/मड़ाई जैसे यंत्रों को भलीभांति साफ करके प्रयोग में लाना चाहिए अन्यथा उनमें पहले से ही उपस्थित छिपे कीट किसी न किसी रूप में अनाज को संक्रमित कर सकते हैं।

3. ढुलाई के संसाधन, जैसे बैलगाड़ी, ट्रैक्टर आदि को उपयोग में लाने से पूर्व उन्हें कीट-रहित कर लेना आवश्यक है।

4. अनाज भंडारण से पूर्व गोदामों को अवश्य साफ कर लेना चाहिए। दरारों और छिद्रों को सीमेंट से बंद करना आवश्यक है। जालों आदि को भी साफ कर लेना चाहिए।

5. भंडार-गृह में चूने की पुताई भंडारण के पूर्व ही कर लेनी चाहिए।

6. भंडार-गृह चूहों, चिड़ियों से मुक्त एवं नमी-अवरोधी स्थान का चयन करके ही बनाना चाहिए।

7. मैलाथियान 50 (ई.सी.) 3 लिटर/100 वर्ग मीटर की दर से भंडार-गृह में छिड़काव करें। यह भी ध्यान दें कि अनाज भरने वाले बोरों का भी कीट-रसायन से उपचार कर लिया जाए क्योंकि ऐसा न करने से हानिकारक कीट एवं जीव पूर्व, से ही उपस्थित रहकर अनाज को क्षतिग्रस्त कर सकते हैं। इसके लिए मैलाथियान 50 ई.सी. के एक भाग व पानी के 500 भाग

के घोल में 10 मिनट तक भिगोएं व बोरियों को छाया में सुखा लें। तत्पश्चात इन्हें अनाज भरने के काम में लाएं।

ख. अनाज को भंडारण में रखते समय की सावधानियां

1) अनाज की छान-बीन अवश्य कर लें। कटे, टूटे, चटके दाने अनाज में संक्रमण को बढ़ावा दे सकते हैं।

2) कीट-संक्रमित अनाज की छनाई नियमित रूप से करें तथा छीजन या छनाई के उपरांत बचे अवशेष को नष्ट कर दें, अन्यथा कीट पुन: रेंग कर भंडार-गृह तक पहुंच सकते हैं। ध्यान रहे कि उपरोक्त सभी कार्य भंडार-गृह से दूर करना ही उचित होगा।

3) अनाज को अच्छी तरह साफ करके सूखा लेना चाहिए। इसकी जाँच दाने को दांत के नीचे काटने से की जाती है। यदि कट की आवाज आती है तो अनाज में नमी नहीं है।

4) सुखाने के बाद गर्म अनाज को तुरंत नहीं रखें।

5) अनाज को खुला नहीं रखना चाहिए। खुले अनाज में नमी, धूल, कीड़े-मकोड़े व चूहों द्वारा नुकसान का भय रहता है।

6) अनाज की भरी बोरियां सीधे जमीन व दीवार से सटाकर नहीं रखनी चाहिए। उन्हें लकड़ी के तख्तों पर या बांस की चटाई पर थोड़ी ऊचाई पर रखें।

ग. भंडारण में रखने के बाद की सावधानियां

1) अन्न-भंडारण के बाद भी समय-समय पर अनाज को देखते रहें। यदि अनाज में ढेले बन गए हों या सफेद चूर्ण सा निकलता हो या अनाज का रंग बदल गया हो तो यह समझा जाता है कि अनाज खराब हो रहा है। ऐसी दशा में तुरन्त सावधानी बरतें।

2) खुले अनाज को जहां तक संभव हो, धूप और हवा दिखाते रहना चाहिए।

3) बरसात के समय अनाज को सुखाने के लिए गोदाम से बाहर नहीं निकालना चाहिए तथा दरवाजे और खिड़कियां बंद कर देनी चाहिए।

4) यदि अनाज में कीड़े लग गए हो तो उनका समय पर नियंत्रण करना चाहिए।

कीट लगने के बाद नियंत्रण

सभी सावधानियां रखने के बाद भी कीड़ों का आक्रमण हो जाने के पश्चात् निम्न दवाओं का प्रयोग करें:

- ऐलुमिनियम फॉस्फाइड की एक गोली प्रति मैट्रिक टन के हिसाब से प्रयोग करें।
- ई.डी.सी.टी. मिश्रण 500 ग्राम प्रति मैट्रिक टन के हिसाब से प्रयोग करें।
- ई.सी.बी. ऐम्प्यूल 3 मिली. प्रति क्विंटल अनाज के हिसाब से प्रयोग करें।
- सैल्फॉस, डीलोतिया एवं फासराक्सीन में धुआं करें। एक हजार घन फुट स्थान वाले भंडार में 20 ग्राम की 10 गोलियां फैला कर डाल दें

उपर्युक्त दवाईयों के प्रयोग के तुरंत पश्चात् भंडार घर को अच्छी प्रकार से बंद करे। दरवाजों एवं खिड़कियों के जोड़ों पर गीली मिट्टी लगा दें ताकि अंदर की हवा बाहर न आ सके। भंडारण को एक सप्ताह के लिए बंद रखें और खोलने के तुरंत बाद इसके अंदर नहीं जाएं।

- भंडार न होने की स्थिति में अनाज का ढेर फर्श पर लगाकर तिरपाल या पॉलिथीन से ढक कर, चार गोली 12 ग्राम प्रति टन की दर से डालकर तिरपाल के किनारों को मिट्टी से ढकें और तीन दिन तक इसी प्रकार रहने दें।

धातु के डिब्बों में एक गोली प्रति टन की दर से डालकर सभी जोड़ों को अच्छी तरह बंद कर दें।

गोदाम में ध्यान देने योग्य बातें :

- गोदाम के फर्श एवं दीवारों का प्रतिदिन निरीक्षण करें। यदि गंदगी नजर आए तो तुरंत सफाई करें।
- गोदाम के झाड़न व खराब सामग्री को एकत्रित कर तत्काल नष्ट करें।
- गोदाम में बिखरे हुए अनाज को एकत्रित कर उसे छान लें तथा उसे एक अन्य बोरी में रखें।

आधुनिक भंडार-गृहों का निर्माण

1. भंडार गृह

अनाज भंडारण का यह सर्वोत्तम तरीका है जिसमें किसी कमरे के अंदर एक ऊंचा फर्श बनाकर नमी से बचाने के लिए बांस की चटाई या लकड़ी के तख्ते या पालिथीन शीट पर बोरों की छलनी लगाई जाती है। यह छलनी इस तरह लगाई जाती है कि दीवारों से सीलन अनाज के बोरों में न आ सके, साथ ही आने-जाने का रास्ता भी खुला रहे। छलनियों की पारस्परिक दूरी भी इस प्रकार बनाई जाए कि गोदाम के अंदर अनाज की देख-रेख भी आसानी से की जा सके। कम खर्च पर ज्यादा अनाज रखने का यह उत्तम तरीका है।

2. पक्की कोठी

मध्यवर्गीय किसान अपने अनाज का भंडारण करने के लिए इस विधि का प्रयोग करते हैं जो उपयुक्त भी है। इसके लिए 1.9 घनमीटर पक्की कोठी में 2 मीट्रिक टन अनाज भरा जा सकता है। कमरे के एक कोने में यह पक्की बुखारी ईंट, सीमेंट, बालू आदि से बनाकर दीवारों को तथा नीचे की सतह को पॉलिथीन शीट की पर्त लगा देने से कोठी की नमी अवरोधक बन जाती है। अनाज भरने के लिए स्टील के बने इनलेट तथा निकालने के लिए आउट लेट बनाए जाते हैं।

3. धातु (टीन) की बखारी

भंडारण के लिए 1/2 टन, 1 टन तक की क्षमता वाली बखारी

आवशयकतानुसार बनाई जाती है जो छोटे किसानों या घरेलू उपयोग के लिए जन साधारण गृह-स्वामियों के लिए उपयुक्त होती है। आसानी से इन्हें इधर-उधर हटा भी सकते हैं। नमी का प्रवेश नहीं हो सकता है। कृषक अपनी-अपनी क्षमता एवं आवश्यकतानुसार उपर्युक्त में से किसी एक विधि का चयन कर लेते हैं। तत्पश्चात पूर्व में बताई गई इन सावधानियों को ध्यान में रखें :

i) अनाज सूखाना, छानना, भंडार गृह की अच्छी सफाई, पुताई एवं कीटनशियों से शोधन (मैलाथियान 50% ई.सी., 5% घोल 3 लीटर/100 वर्गमीटर की दर से छिड़काव करें।

ii) यथा संभव नए बोरों का प्रयोग करें। पुराने बोरों मेलाथियान 50% क 5% घोल से मिलाकर उसका शोधन करें।

iii) घरों में अन्न भंडारण की दशा में केवल ई.डी.बी. ऐंप्यूलों का ही प्रयोग किया जाए, क्योंकि ऐलुमिनियम फॉस्फाइड अत्यधिक रूप से विषैला है। अत: आवास से दूर गोदाम में ही इनके प्रयोग की संस्तुति की जाती है।

iv) धूमन का कार्यक्रम कम से कम दो बार करना चाहिए, अर्थात् अनाज भरते समय तथा दूसरी बार एक माह बाद यदि वर्षा ऋतु में मौसम साफ रहे तो एक बार निरीक्षण अवश्य कर लें।

v) धूमन हेतु सुनिश्चित कर लें कि गोदाम वायु-अवरोधी है अथवा नहीं। रोशनदान, दरवाजे, खिड़की आदि को धूमन करने के बाद बंद करके गीली मिट्टी से दरारें बंद कर देनी चाहिए जिससे अंदर की जहरीली गैस बाहर न आ सके।

vi) अनाज के भंडारण में मैलाथियन का प्रयोग अनाज के साथ नहीं करना चाहिए।

अन्न भंडारण हेतु रसायनों का प्रयोग एवं प्रयोग विधि।

1) ई.डी.बी. ऐम्प्यूल

यह बहुत ही सफल एवं अपेक्षाकृत सुरक्षित रसायन है। हवा से छह गुना

भारी होने के कारण अनाज में ऊपरी सतह पर प्रयोग करने पर ही नीचे की ओर विषैली गैसों की गति होती है। इस कारण यह प्राय: बहुत आसानी से लीक नहीं होती। इसलिए उन पात्रों में भी, जो पूर्णतया वायु-अवरोधी नहीं हो पाते हैं इनका प्रयोग प्रभावकारी परिणाम दे सकता है। इसके प्रयोग से कीट तो मरते ही हैं, साथ-साथ अंडे भी नष्ट हो जाते हैं।

विभिन्न प्रकार के कांच के ऐप्यूल 30, 15 एवं 6 एवं 3 मि.ली. के रूप में उपलब्ध है। प्रति क्विंटल अनाज के लिए 3 मि.ली. दवा की जरूरत पड़ती है। एक लकड़ी के लंबे डंडे पर 2-2 फुट की दूरी पर इसे अच्छी तरह बांध देते है और फिर उसे तोड़ देते हैं। इस छड़ को अनाज में धंसा देते हैं यदि केवल एक क्विंटल अनाज में रखता है तो इसे सँडाती या प्लास में फंसा कर अनाज में धँसा देते है, फिर उसे दबा कर वहीं तोड़कर छोड़ देते हैं। अंत में बर्तन के मुंह को मिट्टी से लेपकर बंद कर देते हैं।

यदि अनाज बोरों में रखा है तो उसे बोरी की छलनी बनाकर उसके ऊपर ई.डी.बी. एंप्यूल की 10 मि.ली./घनमीटर मात्रा के हिसाब से तोड़कर छोड़ देते हैं। तत्पश्चात् एक बड़ी पलिथिन शीट लेकर उससे बोरों की छलनी बंद कर देते हैं एवं फर्श तथा पॉलिथीन शीट के निचले सिरे पर गीली मिट्टी लगाकर अथवा बालू से बंद कर देते हैं।

यह ध्यान रखें कि तैलीय बीज जैसे मूंगफली, सरसो, आदि तथा आटे का धूमन नहीं किया जाना चाहिए।

2) ऐलुमिनियम फॉस्फाइड

घुन, चूहे आदि को मारने के लिए इस रसायन का प्रयोग किया जाता है। जो बड़े-बड़े भंडार-गृह आवास से दूर होते हैं उनमें या व्यापारिक भंडारण-गृहों में इस रसायन का प्रयोग एक या दो टिकिया प्रति मैट्रिक टन के हिसाब से किया जाता है। जैसे ही इसकी टिकिया खोलकर हवा में बाहर निकाली जाती है, उसके हवा के संपर्क में आते ही इसमें फॉस्फीन गैस तैयार होने लगती है जो अत्यंत जहरीली होती है। थोड़ी सी असावधानी से यह गैस प्राणघातक हो सकती है। इसी कारण घरों में इसका प्रयोग वर्जित होता है। इन टिकियों की संख्या अनाज की

मात्रा के हिसाब से गोदाम में बिखेर दी जाती है। यदि एक स्थान पर यह टिकिया पड़ी रह जाती है, तो आग लगने का भंय रहता है। दवा का प्रयोग करने के उपरांत वायु-अवरोधी गोदाम को बंद कर देना चाहिए।

3. जिंक फॉस्फाइड:

आवास से दूर गोदामों में चूहों से सुरक्षा हेतु जिंक फॉस्फाइड की 1:39 के अनुपात में भुने दानों अथवा आटे के साथ मिलाकर चारा तैयार कर लेना चाहिए। साथ में थोड़ा मीठा तेल (उसकी आकर्षी गंध के कारण) मिला देना चाहिए। इस प्रकार बने चारे की 15 ग्राम पुड़िया बनाकर गोदामों में इधर-उधर चूहों के चलने-फिरने के रास्ते में यत्र-तत्र रख देनी चाहिए। तथा बिलों में भी पुड़िया रखकर उन्हें गीली मिट्टी से बंद कर देना चाहिए।

4. वारफैरिन

यह एक धीमा जहर है। इसे खाकर चूहे कई दिनों बाद मरते हैं। अत: चूहों का पूरा परिवार धीरे-धीरे इसके प्रभाव में आ जाता है। यह मनुष्यों और पालतू जानवरों के लिए अपेक्षाकृत सुरक्षित है। इस दवा को भी 1:39 के अनुपात में दानों अथवा मीठे आटे के साथ मिलाया जाता है। साथ में चीनी भी मिलाते हैं। आकर्षी पदार्थ के रूप में मीठा तेल भी मिलाया जाता है।

25 ग्राम दवा, 450 ग्राम आटा, 15 ग्राम चीनी, 10 ग्राम मीठा तेल, 500 ग्राम विषैला चारा बनाकर 100 ग्राम चारा किसी छिछली प्लेट आदि में रखकर चूहे के रास्तों में रख दें। 15 दिन तक इसका प्रभाव देखें। चूहे 8-10 दिन में धीरे-धीरे मरना शुरू हो जाते है।

किसान या व्यापारी इन उपर्युक्त दी गई आधुनिक विधियों का ध्यान से उपयोग करेगे तो निश्चित ही भंडारण में किसी प्रकार की हानि नहीं होगी और अनाज सुरक्षित रह सकेगा।

चूहा नियंत्रण

अनाज को चूहों से बचाने के लिए चूहामार रसायनों का प्रयोग किया जाता

है। चूहामार रसायनों में जिंक फॉस्फाइड, बेरियम कार्बोनेट, ऐलुमिनियम फास्फाइड तथा बारफेरिन प्रमुख है। इनके प्रयोग करने की विधि इस प्रकार है -

(1) जिंक फॉस्फाइड

एक भाग जिंक फॉस्फाइड तथा 45 भाग खाद्यान्न (चना, मक्का, ज्वार, बाजरा या गेहूँ के दाने) को भिगोकर आवश्यकतानुसार अलसी या मूंगफली का तेल लेकर इन सबको मिला दिया जाता है। इस तरह विषैला चारा तैयार हो जाता है जिसके खाने से चूहे मर जाते हैं।

(2) बेरियम कार्बोनेट

खाद्यान्न के दानों को पानी में भिगोकर दूसरे दिन इसके 6 भाग के साथ 1भाग बेरियम कार्बेनेट चूर्ण तथा 2-3 भाग गुड़ मिलाकर विषैला चारा तैयार करते हैं, जिसके खाने से चूहे मर जाते हैं।

(3) ऐलुमिनियम फॉस्फाइड

यह दवा सेल्फॉस फास्टाविक्सन इत्यादि नामों से बाजार में मिलती है। चूहों के बिलों का पता लगाकर बिलों के मुंह को मिट्टी से बंद कर देना चाहिए। अगले दिन बिल का मुंह खुला दिखने पर उसमें 0.5 ग्राम वाली गोली रख देनी चाहिए। घरों व गोदामों में रखे गए अनाज के लिए 7-10 टिकियां 28 घनमीटर स्थान के लिए पर्याप्त होती है। दवा डालने के बाद 7 दिन तक भंडार को बंद रखना चाहिए।

(4) वारफेरिन

यह बहुत ही प्रभावशाली विष है। इसका एक भाग खाद्यान्न में 19 भाग के साथ मिलाकर वनस्पति तेल डालते हैं। इससे चूहों के भीतर रक्तस्राव होने लगता है। इस विष में कोई स्वाद या गंध नहीं होती। अत: चूहे आसानी से खा जाते हैं। बाजार में यह रोडेथ-55 नाम से भी बिकता है।

यदि चूहे मरे हुए मिलें तो उन्हें गड्ढे में डालकर अच्छी तरह दबा देना

चाहिए क्योंकि कुत्ते और बिल्ली आदि जानवर जो चूहों का विनाश करने में हमारी मदद करते हैं, वे यदि इन मरे हुए चूहों को खा लेंगे तो उनकी मौत भी हो सकती है।

चूहा नियंत्रण में सावधानियां

1) विष तथा विषयुक्त चारे को सदैव बच्चों की पहुंच से दूर रखना चाहिए।

2) विष चारा बनाते समय इस बात का ध्यान रखें कि विष सांस के साथ अंदर न जाए या शरीर की त्वचा पर न लगे।

3) जिंक फॉस्फाइड वाला चारा अच्छे हवादार कमरें में बनाएं, लेकिन कमरे में तेज हवा नहीं आनी चाहिए।

4) पूरा काम समाप्त करने के बाद, चम्मच, कढ़ाई या विष मिलाने में काम आने वाली सभी चीजों को अच्छी तरह साफ कर लें।

5) हाथों को साबुन से अच्छी तरह धो लें तथा अंगुलियों के नाखून भी साफ कर लें।

6) विष के सभी बरतनों पर विष का लेबल लगा दें। हो सके तो दस्तानों का प्रयोग करें।

अध्याय-8

विष एवं उनके उपचार

निरंतर बढ़ती जनसंख्या के भरण पोषण हेतु अधिक उत्पादन के लिए अथवा फसलों की रक्षा के लिए कृषि में बोने से तैयार भंडारण तक रक्षाकारी रसायनों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। इसमें से अधिकांश रसायन मनुष्यों व अन्य प्राणियों के लिए भी विषैले होते हैं, परंतु सुमचित सावधानी अपनाकर उनके विषैले प्रभाव से बचा जा सकता है।

रसायनों का रखरखाव

पादप सुरक्षा के रसायनों को सदैव, शुष्क, ठंडे व बंद स्थानों पर रखना चाहिये और उनका भंडारण नमी, वर्षा, तेज धूप व आग से दूर करना चाहिए। ऐसा न करने से वे शीघ्र ही प्रभावहीन हो जाते हैं। खोलने के बाद दवाइयों के डिब्बों या पैकटों को ठीक से बंद करके रखना चाहिए। उचित प्रकार से भंडारण करने से चूर्ण व विलेय चूर्ण डेढ़ से दो वर्ष तक, ई.सी.दो से तीन वर्षों तक, कवकनाशक लगभग 5 वर्षों तक प्रभावकारी बने रहते हैं। डी.डी.टी., लिन्डेन, एल्ड्रीन, डाइल्ड्रीन, इन्ड्रिन आदि अपेक्षाकृत अधिक स्थायी होते हैं। पायरेथ्रिन रसायनों, विशेषकर पायरोबेस्ट का प्रभाव, खोलने के छः माह के अंदर कम हो जाता है। धूमक विषों को खोलने के बाद शीघ्रातिशीघ्र प्रयोग करना चाहिए।

कीटनाशियों का अर्ध आयु मात्रा

कीटनाशियों की अर्ध आयु मात्रा का विषैलापन दो प्रकार का होता है- (1) तीव्र विषैलापन, तथा (2) जीर्ण (उत्तरोत्तर) विषैलापन

तीव्र विषैलापन

यह मिलीग्राम प्रति किलोग्राम शरीर भार में प्रकट किया जाता है। यह विष की वह कम से कम मात्रा है जो एक बार में खिलाने पर 50 प्रतिशत परीक्षा किए गए स्तनधारी (चूहे, खरगोश) को मार डालें। इसे मध्यम नष्टकारक अथवा घातक खुराक ($MLD = LD_{50}$ dose) कहते हैं। यह परीक्षण में लाए गए स्तनधारी को मुख से भोजन के साथ खिलाकर अथवा त्वचा में इंजेक्शन लगाकर किया जाता है। इनके आधार पर सभी को चार श्रेणियों में रखा गया है और पहचान के लिए उनके डिब्बों की नाशक जीवनाशियों पेंकिंग पर विशेष प्रकार का चौकोर की दो बराबर त्रिभुजों में बटा चिह्न बना रहता है।

सारणी- 8.1 कीटनाशियों का विषाक्तता के आधार पर वर्गीकरण

स्तर	अर्ध आयु मात्रा मिलीग्राम प्रतिकिलो शारीरिक भार		डिब्बे/पैकिंग अथवा लेवल पर बने तिकोन का रंग/ पहचान चिह्न
	मौखिक	त्वचीय	
तीव्र विषैला	1-50	1-200	दो आड़ी हड्डियों के बीच शिर कंकाल। गहरा लाल
अति विषैला	51-500	201-2,000	पीला (विष)
मध्यम विषैला	501-5,000	2001-20,000	गहरा नीला (खतरा)
कम विषैला	5,000 से अधिक	20,000 से अधिक	हरा रंग (सावधान)

साधारणतया कम अर्ध आयु वाले विष अधिक हानिकारक होते हैं, परंतु असावधानी बरतने पर कम विषैले नाशक जीवनाशी भी उतने ही हानिकारक हो सकते हैं।

जीर्ण (उत्तरोत्तर) विषैलापन- इसे भी मिलीग्राम प्रति किलोग्राम शरीर भाग में दर्शाया जाता है। यह विष की वह कम से कम मात्रा है जो प्रतिदिन भोजन में खिलाये जाने पर परीक्षणाधीन 50 प्रतिशत स्तनधारियों में निश्चित समय में

हानिकारक सिद्ध हो। इसी प्रकार विषैले रसायन की अधिक से अधिक वह मात्रा भी जानी जा सकती है जो प्रतिदिन भोजन में खिलाने से परीक्षणाधीन स्तनधारी पर कोई बुरा प्रभाव न पड़े और इसी आधार पर मनुष्यों के लिए विष की निरापद सहनसीमा आंकी जाती है।

निरापद सहन सीमा

यह विषैले पदार्थ की वह अधिक से अधिक मात्रा है जो भोज्य पदार्थ में एक निश्चित स्थिति में, जैसे फसल काटते समय, भंडारण करते समय अथवा खाते समय, रहने दी जाती है। यह सीमा परीक्षित स्तनधारी से प्राप्त आंकड़ों से आंकी जाती है। मनुष्य के भोजन की मात्रा और प्रकार तथा विषैले रसायनों के प्रति उनकी अति संवेदनशीलता के कारण परीक्षित जानवरों से प्राप्त आंकडों के 100 वें भाग को मनुष्य के सहयता हेतु ग्राह्य किया जाता है। इसे मिलीग्राम प्रति किलोग्राम शरीर भार या पी पी एम में प्रदर्शित किया जाता है।

प्रतीक्षा काल

छिड़कने के पश्चात कीट रसायन कुछ समय तक क्रियाशील रहते हैं। कुछ रसायन एक सप्ताह, कुछ 2 सप्ताह और कुछ 3 या 4 सप्ताह तक कीटों को मारने की क्षमता रखते हैं। फसलों/भोज्य पदार्थों में नाशक जीवनाशी की मात्रा सहनशीलता सीमा से नीचे रखने के लिए हर एक जीवनाशी के लिए प्रतीक्षा अवधि निश्चित की जाती हैं। अंतिम बार नाशक जीवनाशी छिड़कने के पश्चात् और फसल काटने के बीच के कम से कम अवकाश को, प्रतीक्षा काल कहते हैं।

सारणी 8.2 कीटनाशक मध्यम मृत्यकारक या घातक मात्रा, सहन सीमा एवं प्रतीक्षा काल

नाशक जीवनाशी का नाम	मध्यम मृत्युकारक मात्रा (मि.ग्रा./कि.ग्राम)		सहन सीमा	प्रतीक्षा काल दिन में
	मौखिक	त्वचीय		
आल्ड्रिन	40-60	>200	0.01-0.2	10-20
डाइल्ड्रिन	40	>100	0.01-0.2	20-30

कार्ब्रेरिल	400	>500	0.2-10.0	8-10
क्लोरडेन	335	840	0.05-0.3	14
डी डी टी	300	2500	1.25-3.5	10-20
डाइजीनोम	300-600	500-1200	0.05	12-50
डी डी वी पी	25-30	75-900	0.1-0.5	2-7
डायमिथोयेट	200-300	700-1150	2.0	7-14
इन्डोसल्फान	35	74-680	0.2-2.0	12-14
फिनाइलट्रिथियोन	130-200	700	0.1-0.25	15
हेप्टाक्लोर	100	195	1.0-8	5.7
लिन्डेन	200	500-1000		3-7
मेलाथियान	1400	4000	0.2-1.0	10-20
पेराथियान	13	21	0.05-0.2	10-20
मेथिल पेराथियन	12-16	67		20-30
फॉस्फामिडान	15	125	0.5-1.0	20-30
फोरेट	2-3	7	0.1-2.0	30

पीड़कनाशी रसायनों से प्रदूषण

फसल पर डाले जाने वाले रसायन की पूरी की पूरी मात्रा फसल में नहीं पहुंचती है। कुछ भाग वाहित हो कर पास की दूसरी फसल पर गिरता है और कुछ भाग खेत में भूमि पर गिरता है और वर्षा के पानी के साथ नदी, नालों में पहुंच जाता है जिससे मछलियों पर विषैला प्रभाव पड़ता है। जीवनाशियों से उपचारित फल और बीज खाने से पक्षी मर जाते हैं और फसल के फूलों से मधु संचित करते समय तथा परागण के समय मधुमक्खियां नष्ट हो जाती हैं जिसका फसलोत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यदि निरापद सह्यता मात्रा से अधिक विष भोज्य पदार्थों मे रह जाए और उसे मनुष्य खाएं तो उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है, यहां तक कि अन्य बीमारियों को ठीक करने वाली औषधियां

अपना काम नहीं करती बहुत सी कीटनाशी दवाएं पानी और भूमि में लंबी अवधि तक बनी रहती हैं।

सारणी 8.3– कीटनाशियों का अवशिष्ट (समयावधि के अनुसार)

यौगिक	मूल यौगिक प्रतिशत (समयावधि में) 0 समय	1 सप्ताह	2 सप्ताह	4 सप्ताह	8 सप्ताह
क्लोरिनित हाइड्रकार्बन एवं साइक्लोडाइन					
बी एच सी	100	100	100	100	100
हेप्टाक्लोर	100	25	0	0	0
आल्ड्रिन	100	100	80	40	20
हेप्टाक्लोर एपोक्साइड	100	100	100	100	100
टिलोड्रिन	100	25	10	0	0
इन्डोसल्फान	100	30	5	0	0
डायआल्ड्रिन	100	100	100	100	100
डी डी ई	100	100	100	100	100
डी डी टी	100	100	100	100	100
डी डी डी	100	100	100	100	100
क्लोरडेन (टेकनिकल)	100	90	85	85	85
आर्गोफॉस्फोरस					
पेराथियान	100	50	30	5	0

मेथिल पेराथियॉन	80	25	10	0	0
मेलाथियान	100	25	10	0	0
ईथिऑन	100	90	75	50	50
ट्रीथिऑन	90	25	10	0	0
फेनथ्रीऑन	100	50	10	0	0
डायमिथोयेट	100	100	85	75	50
मरफास	100	50	30	10	5
एजोड्रिन	100	100	100	100	100
कार्बामेटस					
कार्बेरिल	90	5	0	0	0
जेकट्रेन	100	15	0	0	0
मेटासिन	100	60	10	0	0
बेगान	100	50	30	10	5
मोनूरान	80	40	30	20	0
फेनुरॉन	80	60	20	0	0

कीटनाशी सांद्रता 10 माइक्रोग्राम प्रति लिटर

पीड़कनाशी रसायनों के प्रयोग के समय सावधानियां

रसायनों के प्रयोग में विशेष सावधानी चाहिए। मानव-शरीर पर भी इसका कुप्रभाव पड़ता है। मानव शरीर में इनका प्रवेश निम्न प्रकार से होता है:

1) **नाक द्वारा** - दूषित वातावरण में साँस लेने से दवा नाक द्वारा प्रवेश कर जाती है। उदाहरण के तौर पर, कीटनाशी के गोदाम में अगर दूषित वायु को बाहर निकालने का उचित प्रबंध नहीं है तो गोदाम में उनका धूम भर जाता है और ऐसे वातावरण में अगर बिना गैस मास्क के नाक बंद किए बहुत समय तक रहा जाए तो गंदी वायु सांस द्वारा शरीर में प्रवेश कर जाती है जो बहुत ही घातक सिद्ध होती है। इसी प्रकार दवा को सीधे सूँघने या बिना गैस मास्क के छिड़काव करने से दवा का गंदा घातक धूम शरीर में प्रवेश कर जाता है और तरह-तरह के विकार पैदा कर सकता है। इसी प्रकार से आबादी के पास वाले क्षेत्र में वायुयान द्वारा छिड़काव से दूषित वायु में सांस लेने से यह शरीर में प्रवेश कर सकता है।

2) **मुँह द्वारा** - दूषित भोजन ग्रहण करने से कीटनाशी मुँह द्वारा शरीर में प्रवेश कर जाता है। छिड़काव के बाद बिना हाथ-मुँह धोएं भोजन करने से भोजन के साथ रसायन पेट में चला जाता है। इसी प्रकार फसलों, सब्जियों एवं फलों पर छिड़काव के बाद प्रतीक्षा काल से पहले ही उन्हें खाने से जहर मुंह द्वारा पेट में चला जाता है। इसी प्रकार गलत ढंग से दवा प्रयोग करने से जो गेहूँ दूषित हो जाता है उसे खाने से या झरनों, कुंओं, आदि के पास छिड़काव से दूषित जल पीने से रसायन पेट में चला जाता है। जमीन में अधिक दवा प्रयोग करके उत्पन्न सब्जियों व दूषित जल में पाली गई मछलियाँ खाने से जहर भोजन के साथ पेट में चला जाता है।

3) **त्वचा द्वारा** - दवा त्वचा से भी सीधे शरीर में प्रवेश कर जाती है। घोल बनाते समय, डिब्बों को खोलते समय, उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय या छिड़काव के समय अगर रसायन शरीर पर पड़ जाते है तो वे त्वचा के रोम-छिद्रों द्वारा शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त तरीकों में से किसी एक या अधिक तरीकों द्वारा शरीर में पहुंच कर शरीर के विभिन्न अवयवों को विषाक्तता का शिकार होना पड़ता है। दवा का यह प्रभाव (विषाक्तता) दो प्रकार का होता है।

क) **तीव्र विषाक्तता** - जब कोई रसायन एक ही बार में शरीर में इतनी मात्रा में पहुंच जाता है कि वह घातक सिद्ध हो तो उसे तीव्र विषाक्तता कहते हैं। इस प्रकार की विषाक्तता जानबूझ कर आत्महत्या के लिए जहर पीने से, तथा छिड़काव के बाद किसी फल या सब्जी को खाने

से या धोखे से दवा पीने से हो जाती है। इसी प्रकार त्वचा पर अज्ञानतावश कीटनाशी के सांद्र अधिक मात्रा में पड़ने से भी तीव्र विषाक्तता हो जाती है। मुंह तथा त्वचा द्वारा होने वाली तीव्र विषाक्तता को क्रमश: तीव्र मुख विषाक्तता एवं तीव्र त्वचा विषाक्तता कहते हैं।

ख) **मंद विषाक्तता** – जब रसायनों के शरीर में धीरे-धीरे बहुत समय तक प्रवेश करने के बाद उनकी विषाक्तता प्रकट होती है तो उसे मंद विषाक्तता कहते हैं। इस प्रकार की विषाक्तता दूषित भोजन को बहुत समय तक खाने या कीटनाशी के व्यवसाय से संबधित रहने या संपर्क में रहने से या करने के कारण धीरे-धीरे विष का संचय होने से होती है।

शरीर में ये विष पहुंच कर शरीर के विभिन्न अवयवों, विभिन्न शारीरिक कोशिकाओं, जीवद्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) एवं शरीर द्रव में अन्य सूक्ष्म कणों पर क्रिया करके, उनकी नियमित कार्यप्रणाली पर कुप्रभाव डालकर क्षति पहुंचाते हैं। उदाहरण के तौर पर निकोटीन, क्लोरीनित हाइड्रोकार्बन, आर्गेनोफॉस्फेट व कार्बामेट रसायन स्नायु-संस्थान पर क्रिया करते है। फ्लुओरीन के घटक बहुत से आवश्यक एन्जाइम पर क्रिया करके पाचन-संस्थान, श्वसन-क्रिया एवं अन्य शारीरिक क्रियाओं की क्षति पहुंचाते हैं। रोटेनोन, आर्सेनिक व डाइनाट्रेट रसायन, शरीर-क्रियाओं में आवश्यक शक्ति व प्रजनन-क्रिया को किसी न किसी प्रकार से अवरुद्ध करते हैं। इस प्रकार हम देखते है कि रसायन शरीर के किसी न किसी अंग पर बुरा प्रभाव डालते हैं। जिसके परिणामस्वरूप, विभिन्न संस्थान जैसे पाचन, श्वसन, स्नायु संस्थान, विभिन्न ग्रंन्थियों और फलत: संपूर्ण स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।

रसायनों के जहर से बहुत दिनों ग्रसित होने पर उपभोक्ताओं में हृदय रोग, दमा, सनकीपन, पागलपन व बांझपन के लक्षण पाए गए है, कीट-नाशी के अधिक मात्रा में एक साथ शरीर में प्रवेश होने से जी मिचलाना, उल्टी, सिर दर्द, धबराहट, शरीर का नीला या पीला पड़ना, बुखार होना, अंधापन, लडखड़ाना, साँस टूटना, लार टपकना, समूचे शरीर की मांसपेशियों में ऐंठन, पुतलियों का फैल जाना, टट्टी आना, उत्तेजित होना, बेहोशी आना आदि लक्षण प्रकट होते हैं और 24 घंटे के अन्दर मृत्यु की संभावना भी रहती है:

इस प्रकार रसायन जो कृषि के लिए वरदान सिद्ध हो रहे है, असावधानी और अज्ञानता पूर्वक प्रयोग करने पर प्राण घातक भी सिद्ध हो सकते हैं। अत: उनसे बचाव के लिए उनके रख-रखाव, घोल बनाते समय, छिड़कते समय एवं रसायन को छिड़कने के बाद कुछ विशेष सावधानियां बरतनी चाहिए जो इस प्रकार है।

क) भंडारण:- कीटनाशी रसायनों को जहां तक हो, आवश्यकतानुसार ही खरीदना चाहिए। कभी भी आवश्यकता से अधिक रसायन लेकर नहीं रखना चाहिए।

2) रसायनों को इनके ही डिब्बों में रखना चाहिए। कभी भी टॉनिक आदि की शीशियों में नहीं रखना चाहिए, क्योंकि भूल से कोई उसे टॉनिक समझकर पी भी सकता है।

3) जहां तक हो सके, इन्हें बच्चों की पहुंच से दूर, ताले में बंद करके ऊंचे स्थान पर रखना चाहिए।

4) अपने रहने के मकान में विशेषकर उस कमरे में जहां आप सोते हैं, इन रसायनों को कभी नहीं रखना चाहिए क्योंकि इनकी विषैली गंध स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

ख) 1) घोल बनाते समय:- घोल हमेशा खुली हवा में बनाना चाहिए। बंद कमरे में बनाने से उसकी विषैली हवा कमरे में भर जाती है जो श्वास द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश करके हानिकारक सिद्ध होती है।

2) घोल बनाने में जो बर्तन प्रयोग किए जाएं वे इस प्रकार के हों जो घर में प्रयोग न होते हों।

3) घोल बनाते समय उचित मात्रा ही आवश्यक पानी की मात्रा में मिलानी चाहिए। कभी भी कीटनाशी की मात्रा ज्यादा नहीं होनी चाहिए क्योंकि ज्यादा सांद्रता में पौधों के जलने का डर रहता है।

4) घोल बनाते समय शीशियों या डिब्बों को बहुत सावधानी से खोलना चाहिए। कभी भी सांद्र घोल शरीर के ऊपर नहीं पड़ना चाहिएं।

5) घोल को मिलाने के लिए कभी भी हाथ का प्रयोग न करें। हमेशा लकड़ी के डंडे या लोहे की छड़ आदि से उसे चलाएं।

6) घोल बनाते समय या छिड़काव के समय अगर रसायन शरीर पर पड़ जाए तो तुरंत साबुन से साफ कर डालना चाहिए।

7) कीटनाशियों की शीशियों या डिब्बों को, जो खाली हो गई हो, तोड़कर जमीन में गाड़ देना चाहिए उनको किसी अन्य उपयोग में नहीं लाना चाहिए।

ग) **छिड़काव के समय**

1) छिड़काव के समय पूरे कपड़े, कोट, रबर के दस्ताने, गमबूट और गैस मास्क अवश्य पहनने चाहिए, विशेषकर जब इस प्रकार के निर्देश शीशी के लेबल पर लिखे हों।

2) शरीर पर खुले घाव नहीं होने चाहिए। यदि घाव हों तो छिड़काव के समय इन पर मोटी पट्टी बांध लेनी चाहिए।

3) कभी भी हवा का विपरीत दिशा में छिड़काव नहीं करना चाहिए।

4) छिड़काव शाम तथा बुरकाव सुबह के समय करना चाहिए। छिड़काव करते समय पत्तियों पर ओस या पानी की बूंदे नहीं होनी चाहिए जब कि बुरकाव के लिए यदि पत्तियों पर ओस पड़ी रहे तो अच्छा रहता है।

5) तलाब, कुएं, एवं चारागाह के समीप छिड़काव करते समय विशेष सावधानियां रखनी चाहिए। कभी भी दवा को उड़कर कुएं, तालाब या चारागाह में नहीं जाना चाहिए।

6) सब्जियों व फलों पर इस प्रकार के कीटनाशी प्रयोग न करें जिनका असर ज्यादा दिनों तक रहता हो। अच्छा है कीटनाशी छिड़कने से पूर्व सब्जी-तोड़ ले (जैसे बैंगन, भिंडी, टमाटर आदि में) और उसके बाद छिड़काव करें तथा उपयुक्त समय के बाद ही उनका उपयोग करें।

7) कीटनाशी छिड़कते समय बीड़ी, सिगरेट, तंबाकू आदि बिल्कुल न पिएं और न ही कुछ खाएं।

8) छिड़काव के समय यदि मशीन खराब हो जाए तो उसे दस्ताने पहनकर ही ठीक करना चाहिए। यदि किसी कारण दस्ताने उतारने पड़ जाएं तो पहले उनको अच्छी तरह धो लेना चाहिए और फिर उतारना चाहिए। मशीन को ठीक करने के बाद हाथों को अच्छी तरह धो लेना चाहिए, फिर दस्ताने पहनने चाहिए।

घ) **छिड़काव के बाद**

1) छिड़काव के बाद जिस खेत में छिड़काव किया है उसमें बोर्ड लगा देना चाहिए कि कीटनाशी का प्रयोग हुआ है।

2) जो घोल छिड़काव के बाद बच जाए उसे अन्य व्यक्ति को दे देना चाहिए जिसे छिड़काव करना है। यदि उसका कोई उपयोग न हो तो बेकार जगह में गड्ढा खोदकर घोल दबा देना चाहिए और उसके चारों तरफ कांटेदार झाड़ी लगा देना चाहिए।

3) छिड़काव के बाद साबुन से स्नान करना चाहिए। कपड़ों को साफ करके धूप में सुखाना चाहिए। स्नान के बाद ही भोजन आदि करना चाहिए।

अन्य सावधानियां

1) कीटनाशी का छिड़काव कभी भी बीमार या कमजोर आदमी, बच्चा, दूध पिलाती हुई मां और गर्भवती महिला को नहीं करना चाहिए।

2) छिड़काव करने वाले व्यक्ति को एक दिन में 5 घंटे से अधिक काम नहीं करना चाहिए और सप्ताह में 15 घंटे से ज्यादा छिड़काव नहीं करना चाहिए।

3) छिड़काव करने वाले व्यक्ति को समय-समय पर डाक्टरी जांच करवाते रहना चाहिए।

4) अगर छिड़काव करते समय या घोल बनाते समय किसी पर दवा का कुप्रभाव हो जाये तो उसे तुरंत डाक्टरी सहायता दिलानी चाहिए और डाक्टर को जहर के असर की पूरी जानकारी देनी चाहिए।

प्रभावित व्यक्ति की प्राथमिक चिकित्सा

विषैले रसायनों के प्रयोग में पूरी सावधानियां रखने के बावजूद, कभी-कभी थोड़ी सी असावधानी से उनका प्रयोग करने वाले व्यक्ति या अन्य संबंधित व्यक्तियों में कीटनाशी का कुप्रभाव होते देखा गया है। ऐसी स्थिति में कीटनाशी प्रकोप के लक्षण शुरू होते ही डाक्टर को तुरंत उपचार के लिए बुलाना चाहिए। डाक्टर के आने तक निम्नलिखित प्राथमिक उपचार करना चाहिए।

सभी अवस्थाओं में उपचार

1) रोगी को उस जगह से हटा देना चाहिए जहाँ से वह ग्रसित हुआ हो। उसे खुली हवा में सुरक्षित स्थान में ले जाकर लिटा देना चाहिए।

2) अगर सांस चलना बंद हो तो उसे कृत्रिम सांस देनी चाहिए।

3) जब रोगी बेहोशी की अवस्था में हो, उस समय कोई भी दवा न दें।

विष खा जाने का उपचार

1) अगर विष खा लिया गया है तो जितनी जल्दी हो सके, रोगी का पेट खाली करा देना चाहिए। ऐसा करने के लिए गुनगुने पानी में पिसी हुई सरसों एवं नमक मिलाकर देना चाहिए। रोगी को उल्टा लिटा कर गले में अंगुली डालकर भी उल्टी करवाई जा सकती है।

2) अगर रोगी ने कोई कार्बनिक घोल, पेट्रोलियम पदार्थ, अम्ल या क्षार पी लिया हो, तो उसे उल्टी करबाने से पूर्व पर्याप्त मात्रा में कच्चा अंडा, दूध, आटे का घोल मक्खन या पिसा हुआ आलू दें।

3) उल्टी तब तक करवाएं, जब तक पूरा विष न निकल जाए।

4) उल्टी करवाने के बाद रोगी को शुद्ध जल या दूध में एनिमल चारकोल मिलाकर दे। यह पेट के अंदर बचे हुए विष को सोख लेगा।

5) यदि उल्टी न हो रही हो तो मरीज को तुंरत अस्पताल ले जाए।

त्वचा पर कीटनाशी पड़ने पर उपचार

1) अगर शरीर पर अधिक विष पड़ गया है, तो तुरंत कपड़े उतार देने चाहिए। इन कपड़ों को अच्छी तरह धोकर साफ कर लिया जाए।

2) अगर विष का असर हाथों को रसायन-घोल में डालने से हुआ हो तो उन्हें गरम पानी से तुरंत साफ कर लें। नाखुनों के नीचे वाली त्वचा को भी साफ कर ले।

आंख में विष पड़ने का उपचार

1) पलकों को तुरंत ऊपर उठाकर आँख को शीतल जल से धोएं।

2) आँख को लगभग 15 मिनट तक धोते रहिए।

3) आँख में किसी प्रकार की दवा या मलहम न लगाएं क्योंकि इससे अधिक क्षति होने की आशंका रहती है।

4) धोने की क्रिया शीघ्रताशीघ्र करनी चाहिए।

इस प्रकार प्राथमिक चिकित्सा के समुचित उपाय अपनाकर प्रभावित व्यक्तियों को पीड़कनाशी रसायनों के दुष्प्रभाव से बचाया जा सकता है।

अध्याय - 9

पादप सुरक्षा उपकरण

पादप सुरक्षा हेतु पीडकनाशी रसायनों को आसानी से और कम समय में छिड़काव के लिए धूमन हेतु, अनेक प्रकार के यंत्र/उपकरण प्रयोग में लाए जाते हैं। कीटों व रोगों आदि के नियंत्रण के लिए उचित प्रकार के उपकरणों का चुनाव, उनके सही प्रयोग और रख-रखाव संबंधी जानकारी का होना, नितांत आवश्यक है। जिन यंत्रों की सहायता से रसायनों के प्रयोग द्वारा या अन्य प्रकार के फसल शत्रुओं की रोकथाम की जाती है, उन्हें फसल सुरक्षा के उपकरण कहते हैं। अधिकतर उपकरण ऐसे होते हैं जिनके द्वारा रसायनों का प्रयोग किया जाता है, परंतु कुछ उपकरण बिना रसायन के भी प्रयोग में लाए जाते हैं जैसे चूहादानी, चिड़िया फंसाने का जाल आदि। प्रयोग के अनुसार उन्हें निम्नांकित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

1. प्रधूलक (डस्टर) - इनके द्वारा रसायनों के केवल शुष्क चूर्ण का भुरकाव किया जाता है।

2. फुहारक - इनके द्वारा घोल या द्रव का छिड़काव किया जाता है।

3. वायुयान - बहुत बड़े क्षेत्रों में भुरकाव या छिड़काव के लिए वायुयानों को प्रयोग में लाया जाता है।

4. विविध - ऐसे उपकरण, जिनका प्रयोग विशेष कार्यों के लिए किया जाता है, जैसे बीज शोधक, ज्वाला प्रक्षेपक, वाष्पित्र आदि व चूहादानी, जाल, कुहरा या धूम जनित्र, बर्ड स्केयरर इत्यादि।

स्मरण रहे, हमेशा मान्य कंपनी द्वारा निर्मित व परीक्षित यंत्रों का प्रयोग करना चाहिए। इन पर कृषि विभाग द्वारा छूट भी मिलती है।

1559 HRD/10—16A

यंत्रों/उपकरणों का वर्गीकरण

क) प्रधूलक (डस्टर)

अ) हाथ से चलाये जाने वाले

1) धमन प्रधूलक (बेलो डस्टर)

2) प्लंजर डस्टर

3) घूर्णी (रोटेटरी) प्रधूलक क्रेंक प्रधूलक

आ) यंत्रचालित प्रधूलक

1) यंत्रचालित प्रधूलक

2) मिस्ट ब्लोवर

ख) फुहारक

अ) हस्त फुहारक

1) ऑटोमाइजर

2) स्लाइड पंप

3) कम्प्रेस्ड एयर स्प्रेयर

4) नेपसेक पंप

5) पाद फुहारक

6) दोलन (रॉकर) फुहारक

7) स्टिरप फुहारक

8) चार्ज पंप

1559 HRD/10—16B

आ) शक्ति चालित यंत्र

1) द्रवचालित पावर स्प्रेयर

2) धूमन फुहारक (ब्लोअर स्प्रेयर)

ग) धूमन पंप

1) साइनोगैस पंप

2) मृदा अंत:क्षेपक गन

घ) ज्वाला प्रक्षेपक

ङ) सीड ड्रैसिंग ड्रम

च) वायुयान एवं हैलिकॉप्टर

प्रधूलक

वे सभी यंत्र जो धूल (चूर्ण) को भुरकने/छिड़कने के काम में प्रयोग किए जाते हैं प्रधूलक कहलाते हैं। प्रधूलक हस्तचालित अथवा इंजन चालित दो प्रकार के होते हैं। हस्तचालित प्रधूलक में घूर्णी या क्रैंक प्रधूलक अधिक प्रचलित है। चूर्ण भरने का डिब्बा, निकास नली, पंखा, क्रैंक व गियर एजिटेटर और भरण नियंत्रक (फीड रेगुलेटर) इनके प्रमुख भाग होते हैं। बनावट के अनुसार इन्हे कंधे, पीठ या पेट पर लटकाकर हाथ से चलाया जाता है।

पंखों के चलने से निकास नली में तीव्र वायु-वेग उत्पन्न हो जाया करता है जिसके कारण चूर्ण नॉजल द्वारा बाहर फैल जाता है। डस्टरों का प्रयोग कम ऊंचाई वाली सब्जियों की फसलों और छोटी झाड़ियों आदि पर भुरकाव के लिए किया जाता है।

शक्ति चालित प्रधूलकों का पंखा इंजन या ट्रैक्टर से चलता है। पंखे की गति अत्यधिक होने के कारण इससे प्रतिदिन 8-10 हेक्टयर क्षेत्र पर भुरकाव

किया जा सकता है। कुछ शक्तिचालित लो वॉल्यूम फुहारकों से फुहारक का भी कार्य लिया जाता है जिनकी प्रतिदिन की कार्य-क्षमता 2-3 हेक्टेयर तक हो सकती है।

फुहारक

फुहारक बंद यंत्र होते हैं जो द्रव या तरल को फुहार बनाते समय छोटे-छोटे कणों को तोड़ देता है। यह तरल सस्पेंशन, इमल्शन या घोल कुछ भी हो सकता है। द्रव के रूप में रसायनों का छिड़काव फुहारकों द्वारा किया जाता है। उनकी बनावट इस प्रकार की होती है कि वे द्रव व घोल को अति सूक्ष्म बूंदों में विभक्त करके उन्हें पत्तियों की सतह या लक्षित स्थान पर समान रूप से वितरित कर दिया करते हैं। उनके द्वारा घोल की मात्रा में नियंत्रित की जाती है जिससे दवा की बर्बादी और फसल की हानि दोनों का बचाव होता है। फुहारकों को हाथ, पैर अथवा इंजन द्वारा चलाया जाता है और उन्हे क्रमशः हस्त फुहारक, पाद फुहारक और यंत्रचालित कहते हैं। सभी प्रचलित फुहारकों को दो मुख्य वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

1. उच्च आयतन (हाई वॉल्यूम) फुहारक

इस वर्ग में सभी हस्तफुहारक, पाद फुहारक और कुछ पावर यंत्रचालित फुहारक आते है। इनके द्वारा छिड़काव करने में प्रति इकाई क्षेत्र के लिए अधिक मात्रा में घोल की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार के फुहारकों में घोल निकास-नली के बाहर दाब के कारण निकलता है। प्रचलित हस्त फुहारकों में घोल को एक वायुरोधी-टंकी में भरा जाता है और टंकी, पंप व नॉजल इनके अनिवार्य अंग होते हैं। टंकी के अंदर एक पंप लगा होता है। जो फुटबाल पंप के सिद्धांत पर कार्य करता है। घोल करने के बाद पंप द्वारा टंकी में हवा भरी जाती है जिसके दबाव से, निकास-नली से बाहर निकलने से पूर्व, घोल छोटी-छोटी बूंदों की फुहार में परिवर्तित होता है। इसी कारण इन्हें वायु दाब फुहारक भी कहते हैं।

इस प्रकार तभी उच्च आयतन फुहारकों में फुहार का निकास घोल के ऊपर पड़े दाब के कारण, हुआ करता है, परंतु सभी प्रकार के फुहारकों में दाब

और फुहार का आकार समान नहीं होता। जैसे-जैसे दाब पड़ता जाता है, वैसे वैसे नॉजल से घोल का निकास अधिक होता है और फुहार भी अधिक बारीक होती जाती है। इस दृष्टि से उच्च आयतन वाले फुहारक तीन प्रकार के होते हैं:-

क) **उच्च दाब उच्च आयतन फुहारक**

इनमें यंत्रचालित फुहारक जिनमें घोल के ऊपर 350-450 पौंड वर्ग इंच तक दाब पड़ता है। दाब अधिक होने के कारण नॉजल द्वारा घोल अधिक मात्रा में निकलता है, परंतु फुहार बारीक होती है। एक हेक्टेयर के छिड़काव हेतु 750-1250 लिटर घोल की आवश्यकता पड़ती है। इनका प्रयोग ऊंची फसलों व वृक्षों पर छिड़काव के लिए करते हैं।

ख) **मध्यम दाब उच्च आयतन फुहारक**

पाद चालित एवं रॉकर फुहारको में, जो चूषण के आधार पर कार्य करते हैं, 120-200 पौंड वर्ग इंच दाब बनता है। इनमें घोल की मात्रा कम लगती है, परंतु फुहार अधिक मोटी होती है। इनके द्वारा हेक्टेयर 600-1000 लिटर घोल छिड़का जा सकता है।

ग) **निम्न दाब उच्च आयतन फुहारक**

वायुदाब व नैपसेक फुहारक इनमें प्रमुख हैं। वायुदाब फुहारकों में प्रतिवर्ग इंच दाब की मात्रा में 50-70 पौंड हुआ करती है और नैपसेक में दाब लगभग 100-120 पौंड होता है। इनमें घोल की मात्रा कम निकलती है और फुहार अधिक मोटी होती है, लेकिन बारीक नॉजल या बूम लगाकर इनके द्वारा 300-500 लिटर घोल का प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव किया जा सकता है।

उच्च आयतन वाले फुहारकों में फुहार का आकार लगभग 400 माइक्रॉन हुआ करता है। संपर्क विषों व विलेय चूर्णों के घोल को छिड़कने के लिए, या जब पत्तियों की सतह को पूर्ण रूप से घोल द्वारा भिगोना आवश्यक हो, तो उच्च आयतन वाले फुहारकों का प्रयोग करना चाहिए। ऊंची फसलों, छोटी

झाड़ियों एवं मध्यम ऊंचाई के वृक्षों पर छिड़काव के लिए भी आमतौर से इन्हीं फुहारकों को प्रयोग में लाया जाता है। इनके द्वारा घोल के समान वितरण की अधिक संभावना रहती है, परंतु अधिक मात्रा में छिड़काव करने से पत्तियों की सतह से घोल के बह जाने का भी भय रहता है।

2. न्यून आयतन (लो वॉल्यूम) फुहारक

ऐसे फुहारक जिनके द्वारा कम घोल को अधिक क्षेत्र में छिड़का जा सकता है, न्यून आयतन या लो वॉल्यूम फुहारक कहलाते हैं। हाई वॉल्यूम फुहारकों के विपरीत लो वाल्यूम फुहारकों में फुहार दाब की बजाय, हवा के तीव्र वेग के कारण बनती है। घोल की टंकी, पेट्रोल की टंकी, इंजन, पंखा और नॉजल इसके प्रधान अंग होते हैं। इंजन द्वारा पंखा लगभग 4000-5000 चक्कर प्रति मिनट घूमता है, जिसके कारण उत्पन्न हवा, वायु नली में लगभग 150-200 किलोमीटर प्रति घंटा के वेग से बहने लगती है। वायु नली के अंतिम छोर पर लगे नॉजल के निकट एक अन्य निकास नली द्वारा घोल थोड़ी-थोड़ी मात्रा में निकलता रहता है। तीव्र गति से बहती हुई हवा की भारी मात्रा घोल में मिल कर उसे अत्यंत सूक्ष्म फुहारों (100-400 माइक्रॉन) में परिवर्तित करती है। फुहार जितनी ही बारीक होती है वह उतने ही अधिक क्षेत्र में फैल जाती है और इसी कारण घोल की मात्रा कम लगती है। लो वॉल्यूम फुहारकों द्वारा छिड़काव हेतु 50-150 लिटर घोल प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। परंतु दवा की मात्रा हाई वॉल्यूम व लो वॉल्यूम दोनो प्रकार के फुहारकों से छिड़काव में समान रहती है। हाई वोल्यूम की अपेक्षा लो वॉल्यूम फुहारकों की कार्य क्षमता 5-6 गुना अधिक होती है। इनके द्वारा छिड़काव के लिए विलेय चूर्णों से बने विलयन का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

वायुयान

टिडड्यिों और विस्तृत क्षेत्र में कीटों व रोगों का शीघ्रता से नियंत्रण करने के लिए स्थिर पंख वाले वायुयानों या हेलिकॉप्टर का प्रयोग किया जाता है। आम तौर से वे 5-8 मीटर की ऊंचाई पर लगभग 160 किलोमीटर प्रति घंटा की चाल से उड़ते हैं और उनके द्वारा चूर्ण का भुरकाव व घोल का छिड़काव दोनों किया

जाता है। छोटे वायुयानों की कार्य क्षमता लगभग 80-100 हेक्टेयर प्रति घंटा होती है। वायुयानों के प्रयोग के लिए शांत हवा और विस्तृत क्षेत्र का होना आवश्यक है।

विविध उपकरण

निम्नलिखित उपकरणों का प्रयोग विशेष प्रकार के कार्यों के लिए किया जाता है:

सीड ड्रेसर, चूहा धूमक, मृदा अंत:क्षेपित्र, फॉग जेनरेटर, स्मोक जेनरेटर

धूमन पंप

ये धूमन विषों का प्रयोग करने के काम में लाए जाते हैं। इनके दो उदाहरण यहां दिए जा रहे है:

1) साइनोगैस पंप

ये बनावट में सरल होते हैं। इनका प्रयोग प्राय: साइनोगैस अथवा कैल्सियम साइनाइड चूर्ण को पंप करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके पंप बैरज तथा प्लंजर रॉड दो भाग होते है।

i) पंप बैरल

यह पीतल की बनी चौड़ी नली होती है जो ऊपरी सिरे पर टोपी द्वारा ढकी होती है। इसका निचला भाग चौड़े मुंह वाली ऐलूमिनियम या कांच की बोतल में खुलता है जो चूड़ियों द्वारा बैरल पर कसी रहती है इसमें धूमन के लिए कैल्सियम साइनाइड रहता है। पंप के निचले भाग से ही एक निकास नली निकलती है जो लगभग 250 मि मी लंबी होती है। इसका संबंध बोतल से होता है। इसी से होकर चूर्ण-मिश्रित हवा बाहर निकलती है। निकास नली में प्लास्टिक निकास होज लगा होता है। इसके आगे 30 सेमी. लंबी पीतल की नली लांस (lance) लगी होती है। पंप के निचले भाग में ही एक पिन अर्थात् रेग्युलेटर होता है जिसके नियंत्रण से या तो डस्ट पंप की जाती है अथवा हवा।

बैरल के नीचे एक लोहे का U के आकार का स्टैंड या पायदान लगा होता है।

ii) प्लंजर रॉड

बैरल के अंदर बीच में एक पतली धातु की छड़ (पिस्टल या रॉड) होती है। जिस पर चमड़े का वाशर लगा होता है जो धातु की गोल प्लेट से ढका रहता है। पिस्टन के ऊपरी सिरे पर लकड़ी का हैन्डल लगा होता है। पायदान पर पैर रखकर जब हैन्डल को ऊपर की ओर उठाया जाता है तो बैरल के नीचे वाला छिद्र, स्प्रिंग-कपाट द्वारा बंद हो जाता है क्योंकि बाहर से प्लंजर के सहारे आई हुई वायु दबाव डालती है। दोबारा जब इसी वायु को हैन्डल से नीचे दबाया जाता है तो हवा काफी शक्ति से दबाव डालकर बैरल के निचले स्प्रिंग कपाट को खोलकर डस्ट कन्टेनर में पहुंच जाती है। कई बार की क्रिया के फलस्वरूप काफी वायु डस्ट कन्टेनर में आ जाती है जो डस्ट को मथकर पार्श्व छिद्र से निकास द्वार बाहर नलिका निकाल देती है। डस्ट को रेग्युलेटर द्वारा कम या अधिक किया जा सकता है।

इसका प्रयोग प्राय: घरों में चूहों, चीटियों, दीमक के बिलों में डस्ट भरने के लिए किया जाता है। एक आदमी इस काम को आसानी से कर लेता है। समय-समय पर वाशर को ग्रीज से चिकना करते रहना चाहिए। डस्ट कन्टेनर को 3/4 भाग से अधिक नहीं भरना चाहिए अन्यथा वायु के लिए स्थान नहीं रहता।

2. भूमि धूमन पंप

इस यंत्र के द्वारा भूमि में रहने वाले कीटों, सूत्रकृमि अन्य आर्थोपोड आदि को नियंत्रित किया जाता है। इसकी क्रियाविधि में धूमक विषैला द्रव भूमि के अंदर गन द्वारा अंत:क्षेपित (इन्जेक्ट) कर दिया जाता है।

ज्वाला प्रक्षेपक पंप

इसकी बनावट और कार्य प्रणाली कंप्रेशन स्प्रेयर के समान होती है। इसमें टैंक, पंप, वितरण लाइन, स्टोव आदि भाग पाए जाते हैं। शेष सभी भाग संपीडन

फुहारक (कंप्रेशन स्प्रेयर) के समान होते हैं, परंतु स्टोव में धातु की लिपटा हआ संपीडन फुहारक होता है जिसके सिरे पर नॉजल होता है जो स्प्रे बनाता है। प्रयोग करने से पहले टंकी का 2/3 भाग केरोसिन तेल से भर देते हैं, फिर पंप करते हैं। इसके बाद स्टोव में तेल डाकर स्टोव को गर्म करते हैं। स्टोव के गर्म होने पर फुहारक की टंकी को खोलते हैं। तेल की जो फुहार निकलती हैं वह आग पकड़ती है और ज्वाला की लंबी लपटें उत्पन्न होती हैं। यह टिड्डी को जलाने, खरपतवार को जलाने और बक्सों से रंग छुड़ाने के काम आता है।

सीड-ड्रेसिंग ड्रम

यह यंत्र बीजों को फंगस और दीमक आदि से बचाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। बीजों को बोने से पूर्व ड्रम में डालकर कीटनाशी रसायन के साथ बीजों को उपचारित किया जाता है फिर बोया जाता है।

इनके अतिरिक्त निम्न यंत्र भी इस कार्य के लिए प्रयोग किए जाते हैं

i) एरोसोल डिस्पेन्सर

ii) धूम जनित्र

iii) वाष्प जनित्र

कुछ प्रमुख उपकरणों की कार्य क्षमता

उपकरण का नाम	कार्य	कार्यक्षमता प्रति 8 घंटा
1. हस्त प्रधूलक (डस्टर)	फसलों पर चूर्ण का भुरकाव	2-2-2 एकड़
2. यंत्रचालित प्रधुलक	वृक्षों व फसलों पर चूर्ण भुरकाव	20-20 ,,
3. फुहारक व प्रधूलक	फसलों पर छिड़काव व भुरकाव	5-7 ,,
4. वायु दाब फुहारक	फसलों पर घोल का छिड़काव	$1/2-1^{1/2}$

5. बाल्टी फुहारक	फसलों पर घोल का छिड़काव	$1-1^{1/2}$,,
6. नैपसैक फुहारक	यथोपरि	$1^{1/2}-2$,,
7. बैटरी नैपसैक फुहारक	यथोपरि	यथोपरि
8. रॉकर फुहारक	फसलों व छोटे वृक्षों पर छिड़काव	4-5 (दो नॉजल लगाकर)
9. पाद फुहारक	फसलों व छोटे वृक्षों पर छिड़काव	4-5 (दो नॉजल लगाकर)
10. यंत्रचालित फुहारक	ऊंची फसलों एवं बड़े वृक्षों पर छिड़काव	15-20 एकड़ व 200-250 वृक्ष
11. लो वॉल्यूम फुहारक	फसलों या छोटी झाड़ियों पर छिड़काव	6-8 एकड़
12. बीज शोधन तंत्र	शुष्क बीज	$1-1^{1/2}$ टन
13. चूहा पंप	चूहा-बिलों में चूर्ण धौंकना	100 बिल
14. भूमि शोधन पंप	भूमि में सूत्रकृमिनाशी डालना	$1-1^{1/2}$ एकड़
15. ज्वाला प्रक्षेपक	टिड्डी दलों को जलाना	$1-1^{1/2}$ एकड़

उपकरणों की देखभाल एवं रख-रखाव

उपकरणों को सुरक्षित और ठीक हालत में रखने के लिए निम्नांकित सुझावों को अपनाना चाहिए-

1. छिड़काव के तुंरत बाद स्पेयर के बाहरी व भीतरी भाग, निकास नली, नॉजल आदि को साफ पानी में भली-भांति धोने के बाद सूखे कपड़े से पौंछ कर रखें।

2. भुरकाव के बाद डस्टर के डिब्बे में से बचे हुए चूर्ण को निकाल कर उसे कपड़े से साफ करना चाहिए।

3. उपकरणों के घूमने या चलने वाले सभी भागों में समय-समय पर ग्रीज या तेल लगाना चाहिए।

4. स्प्रेयर की नम्य पाइप (होज) को न तो जमीन पर घसीटना चाहिए और न उसे सीधे मोड़ना चाहिए। रखते समय उसे हमेशा में गोलाई में लपेटना चाहिए।

5. साफ पानी से घोल बनाना चाहिए व छिड़काव के पूर्व छानना चाहिए।

6. नॉजल को जमीन पर नहीं रखना चाहिए और उसे साफ रखना चाहिए।

7. इंजन-चालित उपकरणों में निर्दिष्ट प्रकार के तेल को उचित मात्रा में प्रयोग करना चाहिए।

8. टूटे या घिसे हुए भागों को तुरंत बदल देना चाहिए।

9. वर्ष में एक बार उपकरणों की पूरी ओवरहॉलिंग करनी चाहिए।

10. प्रयोग के बाद उपकरणों को सूखे कमरे में रखना चाहिए।

अध्याय-10

उपसंहार

अधिक पैदावार वाली किस्मों, उर्वरकों व सिंचाई की सुविधाएं जुटाने के बाद भी फलों का एक बहुत बड़ा भाग (30-40%) केवल कीटपतंगों व बीमारियों द्वारा नष्ट हो जाता है। यह सच है कि फसलों तथ फसल-उत्पाद को कीट-पतंगों तथा अन्य शत्रुओं से बचाने के लिए कृषि-रक्षा रसायनों का उपयोग करना हमारी बाध्यता है। किंतु साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि हम इनका अंधाधुंध उपयोग न करें अन्यथा ये हमारे लिए घातक सिद्ध हो जाते हैं।

पादप से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है पर्यावरण संरक्षण। कीटनाशी रसायनों का मूल्यांकन पर्यावरणीय संदर्भ में करना वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अत्यंत आवश्यक है। बात कीटनाशियों के उत्पादन से ही प्रारंभ की जाए। कीटनाशी उत्पादन से संबधित पर्यावरणीय दुर्घटनाओं में भोपाल गैस कांड से बढ़कर कोई उदाहरण नहीं। भारत में ठक्कर आयोग (1957) व उसके बाद भी अन्य स्रोतों द्वारा कीटनाशी संबंधी घटनाओं की चर्चा समय-समय पर होती रही है। भारत में ही नहीं विश्व के लगभग सभी क्षेत्रों में इस प्रकार की दुर्घटनाएं होती हैं। कीटनाशियों की पर्यावरण संबंधी घटनाएं उत्पादन के समय ही नहीं कीटनाशियों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में भी हो सकती हैं अथवा उनके प्रयोग के समय भी हो सकती हैं साथ ही उनके अवशेष संबंधी समस्याएँ हमारे यहाँ अधिक हैं, जबकि भारत में कीटनाशियों की खपत केवल 570 ग्राम/हेक्टेयर है। विश्व के अन्य देशों में यह मात्रा 1400-10,000 ग्राम हेक्टेयर हैं।

भारत में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार कीटनाशी रसायनों के अवशेषों में 91.7 प्रतिशत डी.डी.टी. होता है सर्वेक्षण द्वारा प्रसारित रिपोर्ट के अनुसार इन रसायनों का प्रयोग उपभोक्ताओं के हितों को ध्यान में रखे बिना मनमाने ढंग से

किया जाता है। फलों एवं वनस्पतियों को उगाने वाले प्राय: कीटनाशी रसायनों का उपयोग उनकी बढ़त के समय के साथ-साथ तोड़ने से पूर्व भी करते हैं। तोड़ने से पूर्व किए गए छिड़काव का उद्देश्य मात्र फलों को खूब चमकदार दिखाना होता है जिससे वे उनका अधिकतम दाम प्राप्त कर सकें। पंजाब कृषि विश्वविद्यालय द्वारा किए गए शोध के पश्चात् यह पता चला है कि फूलगोभी को छिड़काव के दस दिन के अंदर बाजार में बेचना घातक हैं। गेहूँ, मक्का, बाजरा आदि नमूनों का विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि इनमें बहुत बड़ी मात्रा में डी.डी.टी. के अंश होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य रसायन भी विद्यमान होते हैं। छिड़कने के पश्चात् कीट रसायन विशेष समय तक सक्रिय रहते हैं। कुछ रसायन एक सप्ताह, कुछ 2 सप्ताह और कुछ 3 या 4 सप्ताह तक कीटों को मारने की क्षमता रखते हैं। फसलों/भोज्य पदार्थों में कीटनाशी की मात्रा सहयता सीमा से नीचे रखने के लिए हर एक कीटनाशी के लिए प्रतीक्षा अवधि निश्चित की जाती है। अंतिम बार कीटनाशी छिड़कने के पश्चात् और फसल काटने के बीच के कम से कम अवकाश को प्रतीक्षा काल कहते हैं।

फसल पर डाली जाने वाली दवा का आधे से अधिक भाग फसल पर नहीं पहुंचता। कुछ भाग अपवाह द्वारा पास की दूसरी फसल पर गिरता है और कुछ भाग खेत में भूमि पर गिरता है और वर्षा के पानी के साथ नदी नालों में पहुंच जाता है जिससे मछलियों पर विषैला प्रभाव पड़ता है। कीटनाशियों से युक्त फल और बीज खाने से पक्षी मर जाते हैं और फसल के फूलों से मधु संचित करते समय तथा परागण के समय मधुमक्खियां नष्ट हो जाती हैं जिसका फसलोत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

यदि खाद्य पदार्थों में सहयता की मात्रा से अधिक विष रह जाए और मनुष्य उन्हें खाए तो उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है यहां तक कि अन्य बीमारियों को ठीक करने वाली औषधियां भी अपना काम नही करती। बहुत से कीटनाशी पानी और भूमि में लंबे समय तक बने रहते हैं।

उल्लेखनीय है कि बहुत से घातक कीटनाशी विकसित देशों में प्रतिबंधित हैं किंतु वे विकासशील देशों में इनका निर्यात कर रहे हैं। उदाहरण के लिए फॉसवेल नामक कीटनाशी सुरक्षा की दृष्टि से अमेरिका में प्रतिबंधित कर दिया

गया है, किंतु यह कई देशों को निर्यात किया जा रहा है। कुल निर्यात का आधा भाग मिस्र (ईजिप्ट) में भेजा जा रहा है। इस कीटनाशी का प्रयोग इंडोनेशिया, नाइजीरिया, पुर्तगाल, मेक्सिको आदि देशों में तेजी से हो रहा है। सस्ता और विषैला होने के कारण विकासशील देश इनके कुप्रभावों पर ध्यान नहीं देते तथा आयात करते जा रहे हैं। जापान, जर्मनी, फ्रांस तथा स्विटजरलैंड इन जहरीले रसायनों को निर्यात तीसरी दुनिया में तेजी से करते चले जा रहे हैं।

सर्वेक्षण द्वारा यह पता चला है कि दूध के 17 नमूनों में से 13 नमूनों में डी.डी.टी. की मात्रा 0.20 पीपीएम तक विद्यमान है। डी.डी.टी. के अवशेष 55% नमूनों में सहयता की सीमा से 0.5 पीपीएम अधिक है। इसी प्रकार मक्खन में भी डी.डी.टी की मात्रा सीमा से अधिक है। भारत में हाल में किए गए एक अध्ययन से माता के दूध में भी डी.डी.टी. आदि रसायनों के खतरनाक स्तरों का पता चला है। एक औसत भारतीय के शरीर के ऊतकों में डी.डी.टी. तथा अन्य रसायनों के जमा होने का स्तर दुनिया में सबसे अधिक है। एक सामान्य अनुमान के अनुसार एक औसत भारतीय भोजन में 0.027 ग्राम तक डी.डी.टी. विद्यमान होता है। एक सर्वे के अनुसार विश्व भर में सभी शहरों की अपेक्षा दिल्ली के मनुष्य वसा के नमूनों में सबसे अधिक डी.डी.टी. की मात्रा पाई गई।

मिट्टी में आर्गेनोक्लोरीन कीटनाशियों के स्थायित्व पर बहुत शोध कार्य हुआ है। इनके दीर्घस्थायी होने के कारण ही आर्गेनोफॉस्फेट, कार्बामेट, संश्लेषित पायरेथ्राइड आदि अति विषाक्त, अल्पस्थायी रसायनों की खोज हुई जो आर्गेनोक्लोरीन रसायनों की अपेक्षा अल्पस्थायी तो हैं, पर इनके तीक्ष्ण विष मृदाजीवियों एवं जीवाणुओं के लिए और भी हानिकारक हैं और पर्यावरण को संदूषित करते हैं।

दीर्घस्थायी रसायन तब तक मृदा जैवमंडल को असंतुलित करते रहते हैं जब तक ये पूर्णरूप से नष्ट नहीं हो जाते। मृदा के कणों तथा कार्बनिक कोलॉइडो द्वारा इन विषाक्त जीवनाशी रसायनों का अधिशोषण भी एक महत्वपूर्ण क्रिया है जो मृदा की उर्वरता को प्रभावित करती है। यह अधिशोषण कीटनाशी रसायन की उपलब्धि, उसकी जैविक क्रिया आदि को तो प्रभावित करता ही है साथ ही मृदा में कार्बनिक पदार्थों का अपक्षय, नाइट्रोजन यौगिकीकरण, फास्फोरस तथा सल्फर के विलयन आदि से संबंधित महत्वपूर्ण क्रियाएं भी इससे प्रभावित होती हैं।

चूंकि किसी खेती की मृदा में प्रयुक्त कीटनाशी ही रसायनों तथा प्रदूषक का मुख्य कारण बनता है, अत: इन रसायनों के अंतरण का अध्ययन, उनके दीर्घ-स्थायित्व की जांच आवश्यक हैं, लेकिन ऐसे परीक्षण अत्यंत खर्चीले एवं जटिल हैं। दीर्घस्थायी रसायन प्रयुक्त की गई भूमि से वर्षा व सिंचाई के द्वारा बहकर नदी, पोखरों जलाशयों में तथा निक्षालन द्वारा भूमि के निचले संस्तरों में जमा होते रहते हैं। मृदा में पड़े अवशेष, मृदा-जीवों के ऊतकों में निरंतर संचित होते रहते हैं तथा खाद्य-शृंखला द्वारा एक जीव से दूसरे जीव के ऊतकों में आसानी से पहुंचकर संचित होते देखे गए हैं।

जल-क्रम में इन कीटनाशी रसायनों के एक बार प्रवेश कर लेने के बाद ये तलहट पर जमे गाद (सिल्ट) में अवशोषित हो जाते हैं। मिट्टी में संचित ये रसायन अवशोषण की प्रक्रिया द्वारा जल में मिलते हैं तथा जल में इनकी सांद्रता निरंतर बनी रहती है। डी.डी.टी., गैमेक्सीन, एल्ड्रिन आदि कुछ ऐसे रसायन हैं जो धीरे-धीरे जीव जंतुओं के शरीर में एकत्रित होकर विभिन्न बीमारियों को उत्पन्न करते हैं।

प्राप्त आंकड़ों के अनुसार कावेरी नदी (कर्नाटक राज्य) के तट पर श्रीरंगपट्टनम् के समीप जल में 1000-1300 भाग प्रति अरब स्तर तक बी.एच.सी. तथा मेथिल पैराथियान के अवशेष पाए गए हैं। इसी प्रकार कर्नाटक के हसन जिले से प्राप्त जल के नमूनों में 20 से 200 भाग प्रति अरब बी.एच.सी. पाया जाता है। दिल्ली में यमुना नदी में डी.डी.टी. का 0.602-3.416 भाग प्रति अरब तथा उसमें पनप रही मछलियों में 450 भाग प्रति अरब डी.डी.टी. पाया गया। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि इन रसायनों की जल में उपस्थिति से भविष्य में मछलियों के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

पारिस्थितिक प्रतिक्रियाओं और उनके निष्कर्षों के कारण बहुत से कीटों में उनके नियंत्रण के लिए प्रयुक्त होने वाले कीटनाशियों के प्रति प्रतिरोध उत्पन्न होने लगा। इसके परिणामस्वरूप कीट-नियंत्रण के उपाय प्रभावहीन होने लगे। साथ ही अत्यंत आविषी, दीर्घस्थायी और विस्तृत प्रभावों वाले कीटनाशियों के अंधाधुंध प्रयोग ने अलक्षीय (non-targeted) तथा लाभदायक कीटों जैसे परजीवियों, परभक्षियों तथा परागणकारी कीटों पर प्रभाव डाला और उनकी संख्या घटने लगी।

इसके परिणामस्वरूप कम हानि पहुंचाने वाले नाशक कीट अधिक हानि पहुंचाने नाशक कीटों में परिवर्तित हो गए। इनका प्रादुर्भाव बार-बार होने लगा, क्योंकि प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या कम हो जाने के कारण प्राकृतिक नियंत्रण में बाधा पड़ी। इन परिस्थितियों ने रासायनिक नियंत्रण विधि को एक ऐसे दोराहे पर लाकर खड़ा कर दिया कि पिछले अनुभवों के आधार पर इस उपागम पर पुनर्विचार एवं गहन परीक्षण आवश्यक हो गया। इसके परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकालने पर बाध्य होना पड़ा कि नाशक कीट नियंत्रण का अंतिम हल ऐसे उपागम में निहित है जिसमें कीट नियंत्रण में होने वाले विभिन्न उपागमों का संगत और संतुलित समाकलन किया जाए। ऐसे उपागम को समाकलित नाशक कीट नियंत्रण अथवा कीट प्रबंधन का नाम दिया गया। कीटनाशी इस व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग हैं। लेकिन उनके उपयोग के लिए यह आवश्यक हो गया है कि उन्हें अधिक तर्कपूर्ण और संतुलित रूप में प्रयुक्त किया जाए जिससे लाभकारी कीटों पर कम से कम प्रभाव पड़े।

कीटनाशियों को बार-बार उपयोग में लाने के स्थान पर उन्हें यदि आवश्यक हो तभी व्यवहार में लाए तो इनकी मात्रा को कम किया जा सकता है। इसी के साथ ही यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि पारिस्थितिक तंत्र में कीटनाशियों के निवेश की मात्रा को भी कम किया जाए। ऐसा आंका गया है कि अधिकतम उपयुक्त परिस्थितियों के अंतर्गत भी प्रयोग की गई कीटनाशी धूल का 10 से 20 प्रतिशत तथा छिड़काव का 20 से 25 प्रतिशत ही पौधों की सतहों पर पहुंचता है, जिसका एक प्रतिशत से भी कम भाग लक्षित नाशक कीट तक पहुंचता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कीटनाशियों के उपयोग के लिए प्रयुक्त की जाने वाली विधियों में पर्याप्त सुधार ही संभावना है, साथ ही उनके संरूपण और उन उपकरणों में भी जिनके द्वारा उन्हें लक्ष्य तक पहुंचाया जाता है। इस सुधार से कीटनाशियों की निवेशित मात्रा में अवश्य कमी आएगी तथा पर्यावरण का प्रदूषण भी कम किया जा सकेगा।

भावी कार्यनीति तय करने से पहले एक बार पुनरावलोकन करना होगा तथा पिछले दशकों में जो भी गलत हुआ है उनको ध्यान में रखकर प्रभावकारी तरीकों से कार्यनीति तैयार करके लागू करना होगा। उदाहरण के तौर पर सामाजिक विचारधारा, परंपरागत कीट नियंत्रण के तरीकों का दुबारा प्रचार, प्रसार एवं प्रयोग

करना, मिली-जुली तकनीक का विकास सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं के समन्वय एवं योगदान से करना, जैविक संपदा एवं विविधता, लाभकारी एवं हितैषी कीटों का संरक्षण, किसानों के परंपरागत ज्ञान का संरक्षण, आर्थिक रूप से आवश्यक फसलों में कीटनाशियों का प्रयोग एवं नई तकनीकों जैविक फसल जातियों का विकास करना, मुक्त व्यापार में नई कीट व्याधियों के भारत में प्रवेश पर नियंत्रण, किसानों के लिए लाभकारी साहित्य का प्रकाशन, कृषि विस्तार में नए आयाम, लिंगभेद को समाप्त करना, प्रतिरोधक क्षमता वाली फसलों के बीज उपलब्ध कराना, पर्यावरण का संतुलन तथा जैविक खेती और अग्रिम चेतावनी, मौसम एवं जीवनाशी संबंधी व्यावहारिक कृषि, शिक्षा आदि।

देखा गया है कि मक्के के खेत में दलहनी उर्द या मूँग, लोबिया, ज्वार के साथ सरसों या अन्य तिलहनी फसलें गेहूँ या चने के साथ सदियों से लगाई जा रही हैं। आजकल इस ज्ञान को गन्ने में और गेहूँ में आलू की फसल, कपास के साथ मक्का या लोबिया की मिली खेती, अरंडी लगाकर माहू, हेलीकोवरपा का प्रकोप कम किया जा रहा है। गोभी की फसल में बीच में सरसों या गेंदा की कतारे लगाकर डायमंड पतंगे के प्रकोप को कम करने में विश्वव्यापी मदद मिल रही है। चावल के बाद गेहूँ का फसल-चक्र अपनाने में महत्वपूर्ण आर्थिक लाभ पूरे उत्तर भारत में दिखाई पड़ रहा है। फसल में पौधे से पौधे की दूरी, खेत में सूर्य का समुचित प्रकाश तथा कम नमी आदि कीट और बीमारियों की रोकथाम में मदद करते हैं। परंतु किसान अधिक लाभ कमाने के लिए पास-पास पौधे लगाकर समस्याओं को बढ़ा रहे हैं। कई किसान फसलों में अधिक खाद और पानी देकर आर्थिक नुकसान ही नहीं व्याधियों की भी बढ़ावा दे रहे हैं। कई इलाकों में गेहूँ, धान में नाइट्रोजन तथा पानी आवश्यकता से ज्यादा दिया जा रहा है। इसको प्रमाणित मात्रा में ही देना चाहिए। अच्छे बीज, समय से बोआई तथा कटाई आदि तथा गर्मियों की जुताई करके खेत की मिट्टी को उच्च ताप पर खुला रखने से उसमें होने वाली कीट व्याधियों के मूल रूप से कम होने में मदद मिलती है। पक्षियों को फसल में आकर्षित करके प्राकृतिक रूप से कीटो, उदाहरणत: हैलीकोवरपा, को कम करने में मदद मिलती है।

प्रकृति में पाए जाने वाले तभी जीव जंतु एवं सूक्ष्म जीव हानिकर नहीं होते हैं। इनमें कई लाभकारी भी होते हैं। इन लाभकारी जीवों के संरक्षण तथा उनकी

संख्या में बढ़ोतरी लगातार बनाए रखने से हानिकर जीव एवं हितैषी जीवों का संतुलन रखना चाहिए। यह संतुलन जब बिगड़ने लगता है तभी समस्याएं खड़ी हो जाती है। खेतों में परागण में सहायता करने वाले कीट जैसे मधुमक्खी, परजीवी कीट जैसे एपन्टैलिस की जातियां इपीपाइराक्स गन्ने में तथा लेडी बर्ड बीटल काईसांपरला आदि ऐसे महत्वपूर्ण कीट हैं जिनका संरक्षण आवश्यक है और यह सभी माहू या कुतरने वाले कीटों की संख्या कम करने में लाभकारी हैं। इसके साथ ही प्राकृतिक तौर पर इन हानिकारक कीटों में लगने वाले रोग जैसे एच.एन. पी.बी. तथा वरटीसीलियम आदि को भी बढ़ाकर उनका घोल बनाकर फसलों में प्रयोग करना एक महत्वपूर्ण कार्य हैं। उनकी उपलब्धता गुणवत्ता तथा पैंकिग एवं सही कीमत को बनाए रखने का कार्यक्रम बढ़ाने की आवश्यकता पर बल दिया जा रहा है। इनके आयात एवं निर्यात को लचीला बनाना भी एक महत्वपूर्ण कार्य के रूप में सामने आ रहा है। इसके साथ फीरोमान ट्रैप तथा नीम का घोल बनाना, ट्राइको कार्ड, क्राइसोपरला आदि की सही उपलब्धता एक चुनौती बनती जा रही है। आजकल पारजीनी पौधों की धान, कपास, तंबाकू, टमाटर, बैंगन एवं आलू में प्रजातियां पैदा करके कई बड़ी कीट-समस्याओं को सुलझाने के प्रयास तेजी से चल रहे हैं। इनके संरक्षण तथा अधिकार के लिए कानून भी बनाए जा रहे हैं।

सारणी 10.1 कीटनाशी की अर्ध आयु घातक मात्रा, सहृयता सीमा एवं प्रतिशत काल

कीटनाशी	अर्ध आयु मात्रा (मि.ग्रा./कि.ग्राम)		सहृयता सीमा	प्रतीक्षा काल (दिन)
	मुखीय	त्वचीय		
एल्ड्रिन	40-60	200	0.01-0.2	10-20
डायआल्ड्रिन	40	100	0.01-0.2	20-30
कार्बेरिल	400	500	0.2-10.0	8-14
क्लोरडेन	335	840	0.05-0.3	14
डीडीटी	300	2500	1.25-3.5	10-20

डायजीनोन	300-600	500-1200	0.05	12-50
डीडीवीपी	25-30	75-900	0.1-0.5	2-7
डायमियोयेट	200-300	700-1150	2.0	7-14
एन्डोसल्फान	35	74-680	0.2-2.0	12-14
हेप्टोक्लोर	100	195	1.0'8	5-7
लिन्डेन	200	500-1000	-	3-7
मैलाथियान	1400	4000	0.2-1.0	10-20
फास्फामिडान	15	125	0.5-1.0	20-30
फोरेट	2-3	7	0.1-2.0	30

सारणी 10.2 कीटनाशियों के अपशिष्टों की समयावधि

यौगिक	मूल यौगिक प्रतिशत (समयावधि)				
	0 समय	1 सप्ताह	2 सप्ताह	4 सप्ताह	8 सप्ताह
क्लोरिनित हाइड्रोकार्बन एवं साइक्लोडाइन					
बी एच सी	100	100	100	100	100
हेप्टाक्लोर	100	25	0	0	0
एल्ड्रिन	100	100	80	40	20
हेप्टाक्लोर एपोक्साइड	100	100	100	100	100
टिलोड्रिन	100	25	10	0	0
एन्डोसल्फान	100	30	5	0	0
डायएल्ड्रिन	100	100	100	100	100
डी डी ई	100	100	100	100	100
डी डी टी	100	100	100	100	100
डी डी डी	100	100	100	100	100

क्लोरडेन (टेकनिकल)	100	90	85	85	85
आर्गेनोफॉस्फोरस					
पेराथियान	100	50	30	5	0
मेथिल पेराथियान	80	25	10	0	0
मैलाथियान	100	25	10	0	0
ईथिऑन	100	90	75	50	50
ट्रीथिऑन	90	25	10	0	0
फेनथीऑन	100	50	10	0	0
डायमिथोयेट	100	100	85	75	50
मरफास	100	50	30	10	5
एजोड्रिन	100	100	100	100	100
कार्बामेट					
कार्बारिल	90	5	0	0	0
जेंकट्रान	100	15	0	0	0
मेटासिल	100	60	10	0	0
मेसुरॉल	90	0	0	0	0
बेगन	100	50	30	10	5
मोनूरान	80	40	30	20	0
पेतुरॉन	80	60	20	0	0

कीटनाशी सांद्रता 10 माइक्रोग्राम प्रति लिटर

प्रतिबंधित तथा नियंत्रित कर दिए गए पीड़कनाशी

(संदर्भ भारत सरकार, कृषि मंत्रालय-डायरेक्टोरेट ऑफ प्लान्ट प्रोटेक्शन क्वारैन्टाइन एंड स्टोरेज की पत्र संख्या 16-22/92-सीआईआरआईआई दिनांक 15.10.92)

सारणी 10.3 प्रतिबंधित पीड़कनाशियों की सूची (30.9.1992 की स्थिति)

क्र.सं.	पीडकनाशी का नाम
1.	डल्ब्रोगो क्लोरोप्रोपेन (डी ई सी पी)
2.	एल्ड्रिन
3.	पेन्टाक्लोरोनाइट्रोबेन्जीन (पी पी एन बी)
4.	पेन्टाक्लोरोफीनोल (पी सी पी)
5.	टोक्साफेन
6.	एथिल पेराथियान
7.	क्लोरडेन
8.	हेप्टाक्लोर
9.	एल्ड्रिन (1-1-1994 से)
10.	पेराक्वाट-डी-मेथिल सल्फेट
11.	नाइट्रोजन
12.	टेट्राडीफोन

सारणी 10.4 : वे पीड़कनाशी जिनका उपयोग नियंत्रित कर दिया गया है।

क्र.	पीड़कनाशी	लगाए गए नियंत्रण के प्रकार
1.	ऐलुमिनियम फॉस्फाइड	इसे केवल सरकार अथवा सरकारी प्रतिष्ठानों/संस्थानों द्वारा ही बेचा जाएगा। इसका उपयोग सरकारी विशेषज्ञ अथवा भारत सरकार के पादप संरक्षण सलाहकार द्वारा स्वीकृत पेस्ट कन्ट्रोल ऑपरेटरों द्वारा ही किया जायेगा।
2.	बी एच सी	बी एच सी का उपयोग सब्जियों, फलों, तिलहनों पर रोक दिया गया है। इसी के साथ इसका उपयोग अनाजों की सुरक्षा के लिए भी रोक दिया गया है।
3.	क्लोरवोनजीलेट	कृषि में इसके उपयोग पर रोक लगा दी गयी है। आवश्यकता के समय इसका सरकार अथवा अर्धसरकारी प्रतिष्ठानों द्वारा आयात किया जा सकता है। विशेषकर मधुमक्खियों की बरूथियों (माइट) के नियंत्रण के लिए।
4.	केप्टाफोल	इसका उपयोग केवल बीजोपचार के लिए ही किया जाएगा। पत्तियों पर इसके छिड़काव पर रोक लगा दी गई है।
5.	डी डी टी	कृषि में डी डी टी के उपयोग पर रोक लगा दी गई है। अति विशिष्ट परिस्थितियों में आवश्यकता के समय डी डी टी का उपयोग पौध संरक्षण के लिए करना हो तो राज्य अथवा केंद्रीय सरकारें इसे केवल मेसर्स हिंदुस्तान इन्सेक्टिसाइड्स लिमिटेड से खरीद कर सरकारी देख रेख में ही इनका उपयोग करेगी।
6.	डाइएल्ड्रिन	इसका उपयोग केवल टिड्डी (लोकस्ट) से बचाव के लिए रेगिस्तानी क्षेत्रों में ही नियंत्रित कर दिया गया है, विशेष कर भारत सरकार के पादप संरक्षण सलाहकार द्वारा।
7.	एथिलिन डाइब्रोमाइड (ई डी बी)	एथिलिन डाइब्रोमाइड का उपयोग अनाज के लिए केंद्रीय सरकार, राज्य सरकार,

	धूमक की भांति ही होगा। सरकारी प्रतिष्ठानों, सरकारी संस्थानों द्वारा जैसे कि फूड कार्पोरेशन ऑफ इंडिया, सेंट्रल वेयर हाउसिंग कार्पोरशन और पेस्ट कंट्रोल ऑपरेटर जिनकी विशेषता पादप संरक्षण सलाहकार द्वारा स्वीकृत होगी।
8. मेथिल ब्रोमाइड	इसका धूमक की भांति उपयोग केवल सरकार अथवा सरकारी माध्यमों द्वारा ही किया जा सकेगा अथवा ऐसे पेस्ट कंट्रोल ऑपरेटरों द्वारा जो भारत सरकार के पादप संरक्षण सलाहकार द्वारा स्वीकृत होंगे।
9. सोडियम सायनाइड	कपास की गांठों तक ही सोडियम सायनाइड का, धूमक की भांति, उपयोग नियंत्रित कर दिया गया है। इसका उपयोग पादप संरक्षण सलाहकार की देख रेख में ही हो सकेगा।
10. फेनिल मरकरी ऐसीटेट (पी एम ए)	भारत में पी एम ए का उपयोग 1.1.1993 से प्रतिबंधित कर दिया है लेकिन इसका उत्पादन निर्यात के लिए किया जाता रहेगा। इसकी 1.1.1993 के बाद बची मात्रा का उपयोग केवल निर्यात के लिए ही किया जायेगा। इसके लिए इसके पंजीकृत प्रमाणपत्र में आवश्यक सुधार करना होगा।
11. लिन्डेन	भारत में चारदीवारी में धुंआ उत्पन्न करने वाले लिन्डेन के प्रयोग पर रोक लगा दी गई है। इसके अतिरिक्त लिन्डेन का उपयोग फसलों के कीटों के नियंत्रण

	में किया जाता रहेगा जब तक कि पंजीकृत प्रमाण-पत्र में आवश्यक परिवर्तन न किए जाएं।
12. मेथिल पेराथियान	इस कीटनाशी का उपयोग केवल उन फसलों पर ही किया जा सकेगा जिन पर मधुमक्खियां परागणकारी की भांति कार्य नहीं करती हैं। इसका उपयोग अन्य फसलों पर इसके पंजीकृत प्रमाणपत्र में परिवर्तन होने तक होता रहेगा।
13. निकोटीन सल्फेट	इसका उपयोग भारत में प्रतिबंधित कर दिया गया है। इसका उत्पादन निर्यात के लिए किया जा सकता है तथा पंजीकृत प्रमाण-पत्र में आवश्यक परिवर्तन अनिवार्य होगा।

सारणी 1 : विभिन्न प्रकार के पीड़क नाशियों द्वारा फसलों में वार्षिक क्षति

पीड़कनाशी का नाम	क्षति (रुपए करोड़ में)	क्षति (प्रतिशत)
खरपतवार	1980	33
पैथोजन (रोगकारक)	1560	26
कीट	1200	20
भंडारणनाशी	420	07
चूहा-गिलहरी	360	06
अन्य	480	08
जोड़	6000	100

सारणी - 2 : भारत, विश्व एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में पीड़कनाशियों के उपयोग की तुलना

पीड़कनाशी	पीड़कनाशी का कुल प्रतिशत		
	भारत	विश्व	सं.रा.अ.
खरपतवारनाशी	12	43	55
कीटनाशी	77	33	32
कवकनाशी	08	17	07
अन्य	03	07	06

सारणी - 3 : कुछ फसलों में विभिन्न कीटों की आर्थिक क्षति सीमा रेखा

फसल	हानिकारक कीट	आर्थिक क्षति सीमा रेखा
धान	गंधी मत्कुण (बग)	5 वयस्क प्रतिमीटर अनुकूल मौसम में
ज्वार	प्ररोह मक्खी तथा तना वेधक मिज मक्खी, बाली का मत्कुण	5% डेढ़ हर्ट अगेती फसल पर 5-7% डेड हर्ट तथा पत्तियों के खाए जाने पर 5 ग्रेड, 1-2 मिज प्रति बाली 1-2 बग प्रति बाली
चना	फली बेधक	1-2 लारवा प्रति मीटर
कपास	जैसिड, हरा फुदका, लाल बग	1-2 निम्फ प्रतिपत्ती 1-2 निम्फ प्रति पौधा
सरसों लाल	माहू	40-50 एफिड पुष्प-विन्यास के 20 सेमी. क्षेत्र में
सोयाबीन	तना मक्खी	26% तने में सुरंगें
भिंडी	जैसिड चितकबरी सुंडी	4-5 हॉपर प्रति पत्ती 5% फलों की क्षति
बैंगन	फल, तना बेधक	2-3% फलों की क्षति

सारणी - 4 कीटविषों का विषाक्तता के आधार पर वर्गीकरण

प्रभाव	LD_{50} मुख द्वारा	मूल्य/मिग्रा./किग्रा. शरीरभार स्पर्श द्वारा	डिब्बे अथवा लेबल पर बने तिकोने का रंग
बहुत अधिक विषैला	1-50	1-20	चमकीला या गहरा लाल
अधिक विषैला	51-500	201-2000	गहरा पीला
मध्यम विषैला	501-5000	2001-20,000	गहरा नीला
कम विषैला	5000	2,00,000	गहरा या चमकदार हरा

सारणी - 5 : उपलब्ध दवा से वांछित सांद्रता का घोल बनाने की तालिका

वांछित घोल का प्रतिशत	उपलब्ध दवाप्रतिशत 100	75	50	40	30	25	20
0.01	10	13.30	20	25.00	34	40	50
0.015	15	19.95	30	37.50	51	60	75
0.02	20	33.25	50	62.50	68	80	100
0.025	25	39.90	60	75.00	85	100	125
0.03	30	39.90	60	75.00	102	120	150
0.035	35	46.55	70	87.50	119	140	175
0.04	40	53.00	80	100.00	136	160	200
0.045	45	59.80	90	112.50	153	180	225
0.05	50	66.40	100	125.00	167	200	250
0.075	75	100.00	150	187.50	250	300	375
0.1	100	133.30	200	250.00	334	400	500
0.2	200	266.60	400	500.00	668	800	1000
0.25	250	333.10	500	625.00	835	1000	1250
0.3	300	399.90	600	750.00	1002	1200	1500

उपर्युक्त तालिका 100 लिटर घोल बनाने हेतु है।

सारणी : 5 डस्टिंग एवं स्प्रेयिंग की तुलना

डस्टिंग	स्प्रेयिंग
1. डस्टिंग के लिए प्रातःकाल का समय उपयुक्त होता है।	1. स्प्रेयिंग के लिए शाम का समय उपयुक्त होता है।
2. डस्टिंग में हवा का विशेष प्रभाव पड़ता है।	2. स्प्रेयिंग में हवा का प्रभाव नहीं पड़ता।
3. डस्टिंग की लागत कम आती है।	3. स्प्रेयिंग की लागत डस्टिंग से अपेक्षाकृत अधिक आती है।
4. डस्टिंग में पानी की आवश्यक्ता नहीं पड़ती।	4. स्प्रेयिंग में पानी या अन्य विलायक आवश्यक होता है।
5. डस्टिंग में कीट विष का सक्रिय प्रभावकारी तत्व (active ingradient) प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक होता है।	5. स्प्रेयिंग में प्रति इकाई क्षेत्र में कीटविष का प्रभावशाली सक्रिय तत्व कम होता है।
6. डस्टिंग में धूल कणों का निक्षेपण (deposition) कहीं अधिक और कहीं पर कम होता है।	6. स्प्रेयिंग में निक्षेपण सभी स्थानों पर लगभग समान होता है।
7. डस्टिंग में विषों का अवशिष्ट प्रभाव कम समय तक रहता है क्योंकि जल-कण पत्तियों आदि पर अधिक समय तक चिपके नहीं रह पाते।	7. स्प्रेयिंग में विषों का अवशिष्ट प्रभाव काफी समय तक रहता है।

8. डस्टिंग के लिए प्रयोग किए गए यंत्र हल्के तथा कम कीमत के होते हैं।	8.	स्प्रेयिंग के यंत्र भारी और अधिक कीमत के होते हैं।

सारणी : 7 छिड़काव के लिए पानी की मात्रा

फसलें	छिड़काव के लिए पानी की मात्रा		
	हाई वॉल्यूम या पाद चालित स्प्रेयर द्वारा प्रति हेक्टर	लो वॉल्यूम या यंत्र चालित स्प्रेयर द्वारा प्रति हेक्टर	भुरकाव के लिए चूर्ण की मात्रा प्रति हेक्टर
1. कम ऊंचाई की फसलें (मूंग, उर्द, सोयाबीन मूंगफली आदि)	690 लिटर	100 लिटर	20 किलो
2. मध्यम ऊंचाई की फसलें (कपास, तिल, धान, गेहूँ आदि)	750 लिटर	45 लिटर	25 किलो
3. अधिक ऊंचाई की फसलें (अरहर, गन्ना आदि)	1000 लिटर	50 लिटर	30 लिटर

सारणी - 8 खरीफ फसलों में उगने वाले प्रमुख खरपतवार

खरपतवारों की श्रेणी	प्रमुख खरपतवार	
	हिंदी नाम	वानस्पतिक नाम
अ) चौड़ी पत्ती वाले	कनकवा	कामेलिना बेन्थालेन्सिस
	पथरचटा	ट्रायेन्थेमा पोरचुलाकैस्ट्रम
	महकुआ	एजीरेटम कोनीज्वाइडिस
	बनमकोय	फाइसैलिस मिनिमा
	कालादाना	आइपोमिया हेडेरेशिया
	सफेद मुर्ग	सिलोशिया अर्जेन्शिया
	हजारदाना	फाइलेन्थम निरूरी
	मकोय	सोलेनम नाइग्राम
	बड़ी दुद्धी	यूफोरबिया जेनी कुलाटा
	जंगली जूट	कोरकोरम एकुटैंगुलस
ख) संकरी पत्ती वाले	सेवा	इकाइनोक्लोआ कोलोनम/इ.कुस्गैली
	दूबघास	साइनोडान डैक्टीलान
	कोदों	इल्यूसिन इंडिका
	बनरा	सिटैरिया ग्लाउका
	मकड़ा	डैक्टीलोक्टेनियम एजिप्शियम
	डिजिटैरिया	डिजिटैरिया सैंगुनालिस
स) मोथा परिवार	मोथा	साइपेरस रोटन्डस/सा. झरिया
द) परजीवी खरपतवार	अमरबेल	कस्कुटा
	अगिया	स्टाइगा

सारणी - 9 : खरीफ की प्रमुख फसलों में खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रांतिक समय

फसलें	क्रांतिक समय (बोआई के बाद दिन)	पैदावार में कमी (प्रतिशत में)
धान (रोपाई)	30-45	15-40
धान (सीधी बोआई)	15-45	50-90
मक्का	15-45	40-60
ज्वार	15-45	15-40
बाजरा	30-45	15-60
मूंगफली	20-60	40-50
मूंग	15-30	30-50
उड़द	15-30	30-50
अरहर	15-60	20-40

सोयाबीन	20-45	40-60
तिल/रामतिल	20-45	30-50
कपास	15-60	40-50

सारणी-10 : जायद फसलों में पाए जाने वाले प्रमुख खरपतवार

1. मोथा (साइपेरस रोटंडस एल)
2. दूब (साइनोडॉन डेकटाइलॉन)
3. केबग्रास (डिजिटेरिया सेंगुइनेलिस)
4. बड़ी दुद्धी (युफोर्बिया हिर्टा)
5. सावां (इकाइनोक्लोआ कोलोनम (एल लिंक)
6. चौलाई (अमेरेन्थस विरिडसलिन)
7. महकुआ (एजीरेटम कोनीजोइडसलिन)

सारणी-11 : भारत में महत्वपूर्ण फसलों की उपज में खरपतवारों के कारण औसत गिरावट

फसल	उपज में गिरावट (प्रतिशत में)
मूंगफली	33.8
गन्ना	34.2
मक्का	39.8
प्याज	68.0

सारणी-12: गेहुँआ (फैलेरिस माइनर) और गेहूँ के पौधे में अंतर

गेहुँआ (फेलेरिस माइनर)	गेहूँ
1. 50 दिन की आयु तक तने की आधारीय गाँठ का रंग हल्का लाल रहता है।	1. गाँठ का रंग हरा एवं पीलापन लिए होता है।
2. इसकी जीभिका गेहूँ की जीभिका से लगभग तीन गुनी बड़ी होती है।	2. जीभिका बहुत ही छोटी होती है। और उसका गहरापन जातियों पर निर्भर होता है।
3. पत्तियों का रंग हल्का हरा होता है।	3. पत्तियों का रंग गहरा हरा होता है और उसका गहरापन जातियों पर निर्भर होता है।
4. कल्ले गुच्छे में निकलते हैं।	4. कल्ले सीधे निकलते हैं।
5. कल्लों में शाखाएं निकलती हैं।	5. शाखाए नहीं निकलती हैं।
6. एक पौधा 2-3 हजार बीज पैदा करता है।	6. एक पौधा लगभग 100-150 दाने पैदा करता है।
7. 1000 बीजों का वजन लगभग 2 ग्राम होता है।	7. 1000 बीज का वजन लगभग 40 ग्राम होता है।

सारणी-13 : खरपतवार नियंत्रण में इस्तेमाल होने वाली युक्तियां

वर्ष	खरपतवार नियंत्रण की युक्ति
6500 ईसा पूर्व	कुदाली की शक्ल के औजार
2000 ईसा पूर्व	खुरपी
300 ईसा पूर्व	हंसिया
200 ईसा पूर्व	फावड़ा
400 ईसवी	देशी हल
1840 ईसवी	चूने का उपयोग, राख का उपयोग

1855 ईसवी	गंधक के अम्ल तथा आयरन सल्फेट का उपयोग
1860 ईसवी	आर्सेनिक रसायन
1890 ईसवी	तेल तथा पेट्रोलियम
1909 ईसवी	तूतिया (कॉपर सल्फेट) का उपयोग
1945 ईसवी	2,4-डी, खरपतवारनाशी/शाकनाशी का विकास

सारणी-14 : विभिन्न तिलहनी फसलों में उगने वाले प्रमुख खरपतवार

खरपतवारों की श्रेणी	खरीफ मौसम के खरपतवार	रबी मौसम के खरपतवार
1. चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार	पथरचटा (ट्राएन्थिमा पोरचुलाकेस्ट्रम)	फ्याजी (एस्फोडिलस टेन्युफोलिस)
	कनकवा (कमेलिया बेथालेन्सिस)	बथुआ (चिनोपोडियम एलबम)
	महकुआ (एलीरेटम कोनी-ज्वाइडस)	सेंजी (मेलीलोटसर जाति)
	बन-मकोय (फाइलेसिस मिनिमा)	कृष्णनील (एनागैलिस आसेन्सिस)
	सफेद मुर्ग (सिलोसिया अर्जेन्थिया)	हिरनखुरी (कानबोलबुलस आरवेन्सिस)
	हजारदाना (फाइलेन्थस निरूरी)	पोहली (कार्थेमस, आवसी कैन्था) सत्यानाशी (आर्जेमोन मैक्सिकाना)
		अंकरी (विसिया सेटाइवा
		जंगली मटर (लेथाइरस सेटाइवा)
2. संकरी पत्ती वाले खरपतवार	सावकं (इकाइनो-क्लोआ कोलोनम)	गेहूँ का मामा (फेलरिस माइनर)

	दूब घास (साइनोडान-डैक्टीलोन)	जंगली जई (अवेना लूडो विसियाना)
	कोदों (इल्यूसिन इंडिका)	दूब घास (साइनोडान डैक्टीलोन)
	बनरा (सिटैरिया ग्लाउका)	
3. मोथा परिवार के खरपतवार	मोथा (साइपेरस रोटन्डस साइपेरस इरिया, आदि	मोथा (साइपेरस रोटन्डस)

सारणी-15 : विभिन्न तिलहनी फसलों में फसल-खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रांतिक समय एवं खरपतवारों द्वारा पैदावार में कमी

तिलहनी फसलें	खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रांतिक समय (बोआई के बाद दिन)	उपज में कमी (प्रतिशत में)
मूंगफली	40-60	40-50
सोयाबीन	15-45	40-50
सूरजमुखी	30-45	33-50
अरंडी	30-60	30-35
कुसुम	15-45	35-60
तिल	15-45	17-41
रामतिल	15-45	35-60
सरसों	15-40	15-30
अलसी	20-40	30-40

सारणी-16 : विभिन्न तिलहनी फसलों में प्रयोग किए जाने वाले खरपतवारनाशी रसायन, मात्रा, समय एवं विधि का विवरण

तिलहनी फसलें	खरपतवारनाशी रसायन	मात्रा (कि.ग्रा. सक्रिय पदार्थ/ हेक्टेयर	प्रयोग का समय	प्रयोग विधि
1.खरीफ मौसम	फ्लूक्लोरालिन	1.0-1.5	बोआई से पहले	खरपतवारनाशी

की तिलहनी फसलें (मूँगफली, सोयाबीन, सूरजमुखी, तिल, रामतिल आदि	(बासालिन)		छिड़ककर भूमि में अच्छी तरह से मिला दें	रसायन की आवश्यक मात्रा को 600-800 लिटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टयर की दर से समान रूप से छिड़कें
	पेन्डीमेथालिन (स्टाम्प)	1.0	बोआई के बाद परंतु अंकुरण से पूर्व	
	एलाक्लोर (लासो)	1.0-1.5	बोआई के बाद परंतु अंकुरण से पूर्व	
2.रबी मौसम की तिलहनी फसलें	पेन्डीमेथालिन (स्टाम्प)	0.75-1.0	बोआई के बाद परंतु अंकुरण से पूर्व।	
कुसुम	ऑक्सीफ्लूरूफेन (गोल)	0.05-0.10	यथोपरि	
	एलाक्लोर (लासो)	1.0-1.5	यथोपरि	
	फ्लूक्लोरालिन (बासालिन)	1.0-1.5	बोआई से पहले छिड़क कर भूमि में अच्छी तरह मिला दें।	
सरसों, तोरिया एवं अलसी	फ्लूक्लोरालिन (बासालिन)	1.0	बोआई से पहले छिड़ककर भूमि में अच्छी तरह से मिला दें।	
	पेन्डीमेथालिन (स्टाम्प)	1.0	बोआई के बाद परंतु अंकुरण से पूर्व।	

सारणी-17 : सब्जियों की खेती में प्रयोग किए जाने वाले कुछ प्रमुख खरपतवारनाशी रसायन

सब्जी	खरपतवारनाशी रसायन का नाम	मात्रा
टमाटर	फ्लूक्लोरेलिन	10 किग्रा. सक्रिय तत्व/हे.+रोपण के 30 दिन बाद हाथ द्वारा निकाई
	मेट्राब्युजीन	0.75 किग्रा. सक्रिय तत्व/हे.

	ऑक्सिफ्लूओरेफेन	0.25 किग्रा. सक्रिय तत्व/हे.+रोपण के 45 दिन बाद हाथ द्वारा निराई
	पेन्डिमेथेलिन	1.0 किग्रा. सक्रिय तत्व/हे.+रोपण के 30 दिन बाद हाथ द्वारा निराई
बैंगन	फ्लूक्लोरेलिन	1.0 किग्रा. सक्रिय तत्व/हे.+रोपण के 30 दिन बाद हाथ द्वारा निराई
	पेन्डिमिथेलिन	1.0 किग्रा. सक्रिय तत्व/हे.+रोपण के 30 दिन बाद हाथ द्वारा निराई
मटर	फ्लूक्लोरेलिन	2.0 किग्रा. सक्रिय तत्व/हे.+बोआई के 45 दिन बाद हाथ द्वारा निराई
	पेन्डिमेथेलिन	1.0 किग्रा. सक्रिय तत्व/हे.+बोआई के 45 दिन बाद हाथ द्वारा निराई
भिंडी	मेटोलैक्टोर	1.0 किग्रा. सक्रिय तत्व/हे.
प्याज	फ्लूक्लोरेलिन	1.5 किग्रा. सक्रिय तत्व/हे.+बोआई के 45 दिन के बाद हाथ द्वारा निराई
मिर्च	पेन्डिमेथेलिन	1.0 किग्रा. सक्रिय तत्व/हे.+रोपाई के 45 दिन बाद हाथ द्वारा निराई
	ऑक्सिफ्लुओरेफेन	0.1 किग्रा. सक्रिय तत्व/हे.+रोपण के 45 दिन बाद हाथ द्वारा निराई
धनिया	पेन्डिमिथेलिन	0.1 किग्रा. सक्रिय तत्व/हे.

सारणी-18 : प्रमुख फसलों में खरपतवार नियंत्रण के लिए शाकनाशियों का उपयोग

फसल का नाम	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार				संकरी पत्ती वाले खरपतवार			
	शाकनाशी	मात्रा (किग्रा.)	समय (दिन)	पानी की मात्रा (लिटर)	शाकनाशी	मात्रा (किग्रा.)	समय (दिन)	पानी की मात्रा (लिटर)
गेहुँ	2, 4 डी तथा विभिन्न नाम	2.5	35	400-500	ट्रिवुलिन	2.0	30	400-500
					बोसोनेक्स	2.5	45	400-500
धान	2, 4 डी	2.0	25	400-500	स्टाम एक-34	8.0	6	400-500
					मचौती (दाने)	20.0	7	--
मक्का	2, 4 डी	2.0	15	400-500	सिमेजीन, एट्रा जीन	2.5	10	400-600
गन्ना	2,4 डी	1.5	45	400-500	टैफाजीन एट्रा	4.00	120	400-600
					जीन, बासलीन	1.00	20	400-500
दाल वाली फसलें	टोपोटैक्स	0.5	40	400-500	वासलीन	1.00	20	400-500
मूँगफली	लासों	5.0	5	400-500	वासलीन	1.5	2	400-500
गाजर	2.4 डी	1.0	15	400-500	एट्राजीन प्रोपेजीन	0.5	30	400-500

सारणी-19 : खरीफ फसलों में रासायनिक रोग नियंत्रण

फसल	रोग	रसायन	मात्रा	प्रयोग विधि
धान	बीज व मिट्टी	एमिसान/कार्बेन्डॉजिम	10 ग्रा.	10 लि. पानी में मिलाकर 10 किलो
	जनित रोग	+स्ट्रेप्टोसाइक्लिन	1 ग्रा.	बीज को 24 घंटे तक भिगोकर बीज उपचार
	आभासी केंडुआ	कॉपर ऑक्सीक्लोराइड	500 ग्रा.	200 लि. पानी में मिलाकर 50% बालियां निकालने पर प्रति एकड़ छिड़काव करें। पावर स्प्रेयर का प्रयोग न करें।
	बदरा/ब्लास्ट	बीम/सिविक	120 ग्रा.	200 ली. पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।
कपास	बीज व मिट्टी	एमिसान	5 ग्राम	10 लि. पानी में मिलाकर रोएंदार
	जनित रोग	+स्ट्रेप्टोसाइक्लिन	1 ग्रा.	बीज (5-6 किलो) को 6-8 घंटे व
		+सक्सीनिक अम्ल	1 ग्रा.	गैर-रोएंदार बीज (6-8 किलो) को 2
	जीवाणु अंगमारी	स्ट्रेप्टोसाइक्लिन	6-8 ग्राम	घंटे तक घोल में भिगोकर उपचारित करें
	व अन्य	+कॉपर ऑक्सीक्लोराइड	600-800 ग्रा.	150 से 200 लि. पानी में मिलाकर बीजाई के 6 सप्ताह बाद 15-20 दिन के अंतर पर प्रति एकड़ 4 बार छिड़कें।

बाजरा	बीज व मिट्टी जनित रोग	एमिसान/थाइरम	2 ग्रा./4ग्रा.	प्रति किलो बीज की दर से सूखा बीज करें
	डाउनी मिल्ड्यू	इन्डोफिल एम-45	400 ग्रा.	200 लि. पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें
	अरगट/स्मट	क्यूमान एम	400 मि.ली.	200 लि. पानी में मिलाकर बालें निकलते समय प्रति एकड़ फसल की बालियों पर छिड़काव करें।
मक्का	बीज व मिट्टी जनित रोग	थाइरम	4 ग्राम	प्रति किलो बीज की दर से बीज उपचार करें
	पत्तों की अंगमारी	इन्डोफिल एम-45	600 ग्रा.	200 लि. पानी में मिलाकर घुटनों तक ऊँची फसल पर प्रति एकड़ छिड़कें
	तना गलन	कैप्टान +स्टेबल ब्लीचिंग चूर्ण	150 ग्रा. 33 ग्रा.	100 लि. पानी के हिसाब से घोल बनाकर पौधों के पास की मिट्टी को गीला करें।

सारणी-20 : विभिन्न खरीफ फसलों में खरपतवार नियंत्रण के लिए प्रयोग होने वाले शाकनाशियों का विवरण

फसल	शाकनाशी का नाम	मात्रा (किग्रा सक्रिय तत्व/हे.)	प्रयोग का समय
धान	प्रेटिलाक्लोर (नर्सरी)	0.5	बोआई के 1-2 दिन बाद 500 लि. पानी में घोल बनाकर समान रूप से छिड़कें
	ब्यूटाक्लोर	1.25	रोपाई/बोआई के 1-2 दिन बाद 500 लि. पानी में घोलकर छिड़कें
	एनिलोफॉस	0.4	यथोपरि
	पैन्डीमेथिलीन	1.0	यथोपरि
	इथोक्सीसल्फ्यूरान	0.020	रोपाई/बोआई के 20-25 दिन बाद 250 लि. पानी में घोल बनाकर छिड़कें
	2,4- डी (सोडियम नमक)	0.50-0.75	यथोपरि
मक्का	एट्राजिन,पैन्डीमेथिलीन	0.50-10.75	बोआई के 1-2 दिन बाद 500 लि. पानी में घोल बनाकर छिड़कें

फसल	रोग	रसायन	मात्रा	प्रयोग
उड़द मूँग	जड़ गलन	थीरम	4 ग्रा.	प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करें।
लोबिया	पत्यों का धब्बा रोग	ब्लाइटोक्स50	600-800ग्राम	200 लि. पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें
मूँगफली	कॉलर व बीज टिक्का रोग	गलनथीरम/कैप्टान इन्डोफिल एम-45	3 ग्रा. 400 ग्रा.	प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करें। 200 लि. पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।
तिल	जड़ व तना गलन झुलसा रोग	थाइरम इन्डोफिल एम-45	3 ग्रा. 800 ग्रा.	प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करें। 200 लि. पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल पर 10-15 दिन, के अंतर पर छिड़काव करें।

फसल	शाकनाशी का नाम	मात्रा (किग्रा सक्रिय तत्व/हे.)	प्रयोग का समय
बाजरा/ज्वार	एट्राजिन	0.50	यथोपरि
सोयाबीन	पेन्डिमिथलीन	1.25	यथोपरि
	इमजेथामायर	0.075	बोआई के 15-20 दिन के अंदर 250 लि. पानी में घोल बनाकर छिड़कें।
	क्लोरीमूरोन	0.009	यथोपरि
अरहर/उड़द/मूँग	पेन्डिमिथलीन	1.00	बोआई के 1-2 दिन के बाद 500 लि. पानी में घोल बनाकर छिड़कें।
कपास	पेन्डिमिथलीन	1.50	यथोपरि
गन्ना	एट्राजिन	2.00	यथोपरि
भिंडी/बैगन	पेन्डिलीन	1.00	बोआई/रोपाई के 1-2 दिन बाद 500 लि. पानी में घोल बनाकर
टमाटर/तोरी/घीया			समान रूप में छिड़कें।

संदर्भ सूची

श्री रामुलु, यू.एस. (1985) केमिस्ट्री ऑफ इन्सेक्टीसाइड्स एंड फंजीसाइड्स (द्वितीय संस्करण) ऑक्सफोर्ड एंड आई बी एच पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली

भानु, विष्णु मोहन (1976), खरपतवार नियंत्रण, अनुवाद एवं प्रकाशन निदेशालय, गोविन्द बल्लभ पन्त, कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर नैनीताल

श्री रामुलु, यू.एस. (1985), केमिस्ट्री ऑफ हर्बीसाइड्स (द्वितीय संस्करण) ऑक्सफोर्ड एण्ड आई.बी.एच. पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली

माथुर, योगेश कुमार एवं उपाध्याय, कृष्ण दत्त (1986), कृषि कीट-विज्ञान (षष्ठ संस्करण), गोयल प्रिंटिंग प्रेस बड़ौत, मेरठ।

सिंह, धर्मराज (1989) फसल सुरक्षा, ग्राम विकास प्रकाशन, 172 कमिश्नर कम्पाउंड कालोनी, इलाहाबाद

मिश्र, शिवगोपाल एवं दिनेश मणि (1990) भंडारित अनाज को चौपट करते नाशीजीव, खेती, जुलाई 1990

सुमन, बनवारी लाल एवं सुमन, मंजु (1992), खरपतवार नियंत्रण की आधुनिक विधियाँ, ग्रामशिल्प, नवम्बर 1992

त्रिवेदी, टी.पी. (2000) समेकित नाशीजीव प्रबंधन खेती, फरवरी 2000

अग्रवाल, नवीन एवं अग्रवाल, दीप्ति (2000) सुरक्षित अन्न भंडारण के तरीके, खादपत्रिका, मई 2000

दिनेश मणि (2000) घातक हैं कीटनाशी रसायनों के अवशेष; पर्यावरण, दिसम्बर 2001 एवं मार्च 2002

दिनेश मणि (2002), समुचित फसलोत्पादन के लिए खरपतवार नियंत्रण जरूरी, विज्ञान गरिमा सिन्धु जनवरी-मार्च 2002

वर्मा, रवीन्द्र कुमार एवं शर्मा, गोपाल कृष्ण (2002) जायद फसलों में खरपतवार नियंत्रण खाद पत्रिका मार्च, 2002

सिंह, रामप्रताप (2002) अनाज भंडारण की आधुनिक तकनीक, खाद पत्रिका, मई 2002

दिनेश मणि (2002) फसल बचे पर जहर न बने विज्ञान प्रगति, अक्टूबर, 2002

शर्मा, एम.सी.एवं सिंह, पी.सी. (2003), कृषि कीट विज्ञान (प्रथम संस्करण) वी.के. प्रकाशन, बडौत, मेरठ।

मिश्र, जे.एस (2004) खरीफ फसलों में खरपतवार नियंत्रण, खाद पत्रिका जून 2007

सिंह, सुरेन्द्र कुमार (2005) दलहनी फसलों में एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन, खाद पत्रिका, जनवरी 2005

चौधरी, सुरेन्द्र सिंह (2007), खाद्यान्नों का वैज्ञानिक तरीके से सुरक्षित भंडारण, खाद पत्रिका, अप्रैल 2007

शर्मा, राजवीर (2007) कैसे पाएं खरीफ फसलों में खरपतवारों से छुटकारा, खाद पत्रिका, जून 2007

राजेश कुमार एवं सांगवान, नरेश (2007), खरीफ फसलों में कीट व रोग नियंत्रण, खाद पत्रिका, जुलाई 2007

अंग्रेजी-हिंदी शब्दावली

absorption	अवशोषण
acaricide	एकेरीसाइड (चिचड़ीनाशी)
active ingredient	सक्रिय घटक
acidity	अम्लीयता
activity	सक्रियता
aerosol	ऐरोसॉल
agricultural	कृषि
agricultural residue	कृषि अवशेष
agronomic practice	संस्यीय क्रिया
agro-ecosystem	कृषि पारितंत्र
allergy	एलर्जी (प्रत्यूर्जता)
alkalinity	क्षारीयता
alternate host	एकांतर परपोषी
antidote	प्रतिविष
attractant	आकर्षी
autotroph	स्वपोषी
avicide	पक्षिनाशी

bacteria	जीवाणु
bait	विलोभक
bioagent	जैवकारक
biodegradable	जैव निम्नकरणीय
biological control	जैविक नियंत्रण
biopesticide	जैव पीड़कनाशी
biosphere	जीवमंडल
borer	वेधक
bodywall	देहभित्ति
cation	धनायन
carbamate	कार्बोमेट
chemical	रसायन
chemical control	रासायनिक नियत्रंण
compound	यौगिक
consumer	उपभोक्ता
crop	सस्य/फसल
cropping system	फसल प्रद्धति
crop rotatation	फसल चक्र, फसल आवर्तन

contact poison	स्पर्श विष
culutre	संवर्ध; संबर्धन
cultural control	सस्य नियंत्रण
degradability	निम्नयिता
defoliater	निष्पत्रक
dermal toxicity	त्वचीय आविषता
dilution	तनूकरण
dispersing agent	परिक्षेपक
dust	धूलि, प्रधूल
duster	धूलित्र, प्रधूलक
economic injury level	आर्थिक क्षति स्तर
economic threshold	आर्थिक देहली
ecosystem	पारितंत्र
element	तत्व
environment	पर्यावरण
fertility	उर्वरता
fertiliser	उर्वरक
fixation	यौगिकीकरण

food chain	खाद्य श्रृंखला
food grain production	खाद्यान्न उत्पादन
folier spray	पर्णित फुहार
formulation	संरूपण
fumigant	धूमक
fumigation	धूमन
foaming agent	फेनकर्मक
fruit fly	फलमक्खी
fungi	कवक
grain protectant	धान्य रक्षक
granule	कणिका, ग्रेन्यूल
granular pesticide	कणिकामय पीड़कनाशी
grain moth	धान्य शलभ
harmful effect	हानिकारक प्रभाव
hazardous	संकटजनक
herb	शाकीय पादप
herbicide	शाकनाशी
honey bee	मधुमक्खी

humidity	आर्द्रता
heterotroph	परपोषी
infection	संक्रमण
inhalation	अंत:श्वसन
inhibitor	संदमक
injury	क्षति
inoculation	निवेशन
insect	कीट
insecticide	कीटनाशी
insect control	कीट नियंत्रण
integrated pest management	एकीकृत पीड़क प्रबंधन
interaction	पारस्परिक क्रिया
irrigation	सिंचाई
larva	लाखा, डिम्भ, डिम्भक
leaching	निक्षालन
leguminous crop	फलीदार फसल
lethal dose	घातक मात्रा
locust	टिड्डी

1559 HRD/10 - 19

locust control	टिड्डी नियंत्रण
limiting factor	सीमाकारी कारक
light trap	प्रकाश प्रपाश
life cycle	जीवन चक्र
manure	खाद
membrane	झिल्ली
metabolism	चयापचय
microbe	सूक्ष्मजीव
microbial	सूक्ष्जैविक
microbial control	सूक्ष्मजैविक नियंत्रण
microscope	सूक्ष्मदर्शी
micro organism	सूक्ष्मजीव
microbial insecticide	सूक्ष्मजैविक कीटनाशी
microbial pesticide	सूक्ष्मजैविक पीड़कनाशी
natural control	प्राकृतिक नियंत्रण
natural enemy	प्राकृतिक शत्रु
nematode	सूत्रकृमि
nematicide	सूत्रकृमिनाशी

nerve	तंत्रिका
nervous system	तंत्रिका तंत्र
neutralisation	उदासीनीकरण
nutrient	पोषक तत्व
nutrition	पोषण
oral toxicity	मुखीय आविषता
organic matter	कार्बनिक पदार्थ
organic acid	कार्बनिक अम्ल
organism	जीव
oxidation	ऑक्सीकरण
ovicide	अंडनाशी
parasite	परजीवी
parasitism	परजीविता
pathogen	रोगाणु
pest	पीड़क
pest management	पीड़क नियंत्रण
pesticide	पीड़कनाशी
pesticide tolerance	पीड़कनाशी सहयता

1559 HRD/10—20A

persistence	दीर्घ स्थायित्व
persistant	दीर्घ, स्थाई
phase	प्रावस्था
pheromone	फीरोमोन
phyto toxicity	पादप आविषता
posion bait	विष विलोभक
pollutant	प्रदूषक
pollution	प्रदूषण
population	समष्टि
power duster	शक्तिचालित प्रधूलक
predator	परभक्षी
pyrethrin	पाइरेथ्रिन
quarantine	संगरोध
quality	गुणवत्ता
qnantity	मात्रा
reduction	अपचयन
repellant	प्रतिकर्षी
reproduction	जनन

1559 HRD/10—20B

residue	अवशेष, अवशिष्ट
residual toxicity	अवशिष्ट आविषटता
resistance	प्रतिरोध
resistant species	प्रतिरोधी प्रजाति
rodent	कृन्तक, रोडेन्ट
rodenticide	कृन्तकनाशी, रोडेन्टनाशी
seed borne	बीजोढ़
seed protectant	बीज रक्षक
seed treatment	बीजोपचार
selective pesticde	चयनित पीड़कनाशी
sensitivity	संवेदनशीलता
soil application	मृदा अनुप्रयोग
soil borne	मृदोढ़
soil fertility	मृदा उर्वरता
soil fumigant	मृदा धूमक
soil pollution	मृदा प्रदूषण
spot treatment	स्थानिक उपचार
spray	फुहार

spraying	फुहारन, छिड़काव
stomach posion	जठर विष
sucking insect	चूषक कीट
surfactant	पृष्ठसक्रियक
susceptibility	सुग्राहिता
susceptible	सुग्राहय
symbiosis	सहजीवन
synergism	योगवाहित
synergist	योगवाही
synthetic insecticide	संश्लिष्ट कीटनाशी
systemic insecticide	सर्वांग कीटनाशी
temperature	ताप
termite	दीमक
termitorium	दीमक गृह
toxic	आविषी
toxicant	आविषाक्त
toxication	आविषीकरण
toxin	आविष

trap crop	पाश सस्य
trap	पाश (ट्रेप)
weed	खरपतवार
weedicide	खरपतवारनाशी
wettable powder	क्लेदनीय चूर्ण
wettbable agent	क्लेदन कारक
zoocide	प्राणि नाशी

हिन्दी-अंग्रेजी शब्दावली

अपचयन	reduction
अधिशोषण	adsorption
अम्लीयता	acidity
अंतश्वसन	inhalation
अंडनाशी	ovcide
अवशेष	residue
अवशिष्ट आविषता	residual toxicity
अवशोषण	absorption
आकर्षी	attractant
आर्द्रता	humidity
आर्थिक देहली	economic threshold
आर्थिक क्षतिस्तर	economc injury level
आविष	toxin
आविषी	toxic
आविषता	toxicity
आविषीकरण	toxication
ऑक्सीकरण	oxidation

इल्ली	caterpiller
उपभोक्ता	consumer
उदासीनीकरण	neutralisation
उर्वरता	fertility
उर्वरक	fertiliser
एकीकृत	integrated
एकीकृत पीड़क प्रबंधन	integrated pest management
एकांतर परपोषी	alternte host
एलर्जी	allergy
कणिका	granular
कणिकामय पीड़कनाशी	granular pesticide
कवक	fungi
कार्बामेट	carbamate
कार्बनिक अम्ल	organic acid
कार्बनिक पदार्थ	organic matter
क्लेदनीय चूर्ण	wettable powder
क्लेदन कारक	wettable agent
कीट	insect

कीट नियंत्रण	insect control
कीटनाशी	insecticide
खरपतवार	weed
खरपतवानाशी	weedicide
खाद	manure
खाद्य श्रृंखला	food chain
खाद्यान्न उत्पादन	food grain production
गुणावत्ता	quality
घातक मात्रा	lethal dose
चयापचय	metabolism
चूषक कीट	sucking insect
छिड़काव	spraying
झिल्ली	membrane
जनन	reproduction
जठर विष	stomach poisc
जीव	organsim
जीवाणु	bacteria
जीवन चक्र	life cycle

जीव मंडल	biosphere
जैव कारक	bioagent
जैव पीड़कनाशी	biopesticide
जैविक नियंत्रण	biological control
डिम्भ	larva
टिड्डी	locust
टिड्डी नियंत्रण	locust control
तत्व	element
तंत्रिका	nerve
तंत्रिका तंत्र	nervous system
तनूकरण	dilution
ताप	temperature
त्वचीय आविषता	dernal toxicity
देहभित्ति	bodywall
दीर्घ स्थायी	persistant
दीर्घ स्थायित्व	persistance
दीमक	termite
दीमक गृह	termatorium

धनायन	cation
धूलि	dust
धूलित्र	duster
धूमक	fumigant
धूमन	fumigation
धान्य शलभ	grain moth
निम्नीकरणीयता	degradability
निष्पत्रक	defoliater
निवेशन	inoculation
निक्षालन	leaching
परजीवी	parasite
परजीविता	parasitism
परभक्षी	predator
पक्षि नाशी	avicide
परपोषी	hetertroph
परिक्षेपक	dispersing age
पर्यावरण	environment
पारस्परिक क्रिया	interaction

पारितंत्र	ecosystem
पाश	trap
पाइरेथ्रिन	pyrethrin
पीड़क	pest
पीड़कनाशी	pesticide
पीड़क नियंत्रण	pest control
पीड़कनाशी सहयता	pesticide tolerance
पोषक तत्व	nutrient
पोषण	nutrition
प्रदूषक	pollutant
प्रदुषण	Pollution
प्रतिकर्षी	repellant
प्रतिरोध	resistance
प्रतिरोधी प्रजाति	resistant
प्रकाश प्रपंच	light species
पृष्ठ सक्रियक	surfactant
प्रकृतिक नियंत्रण	natural control
प्रकृतिक शत्रु	natural enemy

फसल	crop
फसल चक्र	crop rotation
फेनकर्भक	foaming agent
फलभक्खी	fruit fly
फलीदार फसल	leguminous crop
फुहार	spray
फीरामोन	pheromone
बीजोढ	seed borne
बीजोपचार	seed treatment
बीज रक्षक	seed protectant
मधुमक्खी	honey bee
मुखीय आरिषता	oral toxicity
मात्रा	quantity
मृदोढ	soil brone
मृदा धूमक	soil fumigant
मृदा प्रदूषण	soil pollution
मृदा उर्वरता	soil fertility
यौगिक	compound
यौगिकीकरण	fixation

योगवाहिता	synergism
योगवाही	synergist
रसायन	chemical
रासायनिक नियंत्रण	chemical control
रोग	disease
रोग नियंत्रण	disease control
रोगाणु	pathogen
लारवा	larva
वेधक	borer
विलोभक	bait
विष	poison
सस्य	crop
सस्य चक्र	crop rotation
सस्यीय क्रियाएं	agronomic practices
सस्य नियंत्रण	cultural control
शक्ति चालित धूलित्र	power duster
शाकीय पादप	herb
शाकानाशी	herbicide

सक्रियता	activity
सक्रिय घटक	active ingredient
समष्टि	population
सर्वांग कीटनाशी	systemic insecticide
सहजीवन	symbiosis
सुग्राहय	susceptible
सुग्राहिता	suscaptibility
सूक्ष्मदर्शी	micropcope
सूक्ष्म जीव	microorganism
सूक्ष्म जैविक	microbiological
सूक्ष्म जैविक नियंत्रण	microbiological control
सूक्ष्म जैविक कीटनाशी	microbiological insecticide
सूक्ष्म जैविक पीड़कनाशी	microbial pesticide
सिंचाई	irrigation
सीमाकारी कारक	limiting factor
संगरोध	quarantine
संक्रमण	infection
संदमक	inhibitor

संवेदनशीलता	sensitivity
संश्लिष्ट कीटनाशी	synthetic insecticide
स्थानिक उपचार	spot treatment
स्पर्श विष	contact poison
स्वपोषी	autotroph
हानिकारक प्रभाव	hermful effect
क्षति	injury

MGIPRRND—1559 HRD/10—1000 Copies.

© भारत सरकार
नियंत्रक, प्रकाशन विभाग

PED—916
1000—2010 (DSK–II)

Price	: Inland	:	Rs.	360.00
	Foreign	:	$	7.38
			£	4.46

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित तथा
प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली-110064
द्वारा मुद्रित । 2010